ऐसा अल्लाह जो घृणा पालता है

वफा सुल्तान

एक साहसी नारी जिसने इस्लाम की बुराइयों के विरोध में मुखर होकर मुस्लिम जगत में आग लगा दी।

ऐसा अल्लाह जो घृणा पालता है

एक साहसी नारी जिसने इस्लाम की बुराइयों के विरोध में मुखर होकर मुस्लिम जगत में आग लगा दी।

लेखिका : वफा सुल्तान

पुस्तक अभिकल्पन जोनाथन बेनेट द्वारा

लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस कैटेलॉगिंग-इन-पब्लिकेशन डाटा

सुल्तान, वफा।

ऐसा अल्लाह जो घृणा पालता है: एक साहसी नारी जिसने इस्लाम की बुराइयों के विरोध में मुखर होकर मुस्लिम जगत में आग लगा दी/वफा सुल्तान- प्रथम संस्करण।

2009016930
प्रथम संस्करण: अक्टूबर 2009
10987654321

संपादक : विनयकृष्ण चतुर्वेदी "तुफैल"
अनुवादक : अमित श्रीवास्तव

वफा सुल्तान

सर्वाधिकार सुरक्षित

इस पुस्तक का कोई अंश बिना अनुमति के किसी भी रूप अथवा साधन में; इलेक्ट्रॉनिक या यांत्रिक, न तो पुनरोत्पादित किया जा सकता है, न ही संप्रेषित किया जा सकता है, न ही किसी संग्रहण तंत्र में रखा जा सकता है, न ही छायाप्रति की जा सकती है, न अंकित, स्कैन या अन्यथा किया जा सकता है। इस प्रकार के कार्यों के लिए लेखक की पूर्वानुमति आवश्यक है।

ISBN 978-0-312-53835-4

1. इस्लाम में महिला 2. इस्लाम-संबंध 3. पूर्व व पश्चिम। I शीर्षक। बीपी173.4.S848 2009। 297.082-डीसी22।

कॉपीराइट © 2009 द्वारा वफा सुल्तान।

संयुक्त राज्य अमरीका में मुद्रित।

सूचनार्थ, पता सेंट मार्टिन प्रेस, 175 फिफ्थ अवेन्यू, न्यूयार्क, एन.वाई. 10010। www .stmartins .com

प्रशंसा के दो शब्द

“वफा सुल्तान ने सीरियाई मुस्लिम समाज के यथार्थ और विशेष रूप से वहाँ की महिलाओं की अपमाजनक स्थिति के विषय में झकझोरने वाला, अविस्मरणीय सजीव चित्र प्रस्तुत किया है, तथा जिस अमरीका की भूमि को वह 'सपनों की धरा' कहती हैं अपनी उस अंगीकृत अमरीकी मातृभूमि की भूरि-भूरि प्रशंसा भी करती हैं। किंतु वह इस पर चिंतित भी हैं कि मध्य एशिया की प्रथाएं पश्चिम की धरती पर अतिक्रमण कर रही हैं और वो लगभग निर्भय होकर अमरीकी जनता को उन खतरों से आगाह करते हुए जगाने का प्रयास करते हुए लिख रही हैं जिन्हें वे कदाचित ही देख पा रहे हैं।”

- डेनियल पाइप्स, निदेशक, मध्य एशिया मंच

“हजारों लोगों की भाँति मैंने भी वफा सुल्तान को पहली बार यूट्यूब के एक ऐसे वीडियों में देखा, जो हक्का-बक्का कर देने वाला था। उस वीडियो में अलजजीरा टीवी पर एक ऐसी महिला को देखा जो साहसपूर्वक एवं वाकपटुता से पश्चिमी सभ्यता, व्यक्तिवाद का पक्ष में बोल रही थीं और उग्र इस्लाम की बर्बरता एवं रहस्य को उजागर करते हुए इसके विरुद्ध धुंआधार तर्क दे रही थीं। उसकी वाणी मंत्रमुग्ध कर देने वाली थी। वह स्पष्ट, आत्मविश्वास से परिपूर्ण व मुखर थीं। दर्शक और साक्षात्कारकर्ता इस महिला को सम्मोहित होकर सुन रहे थे और उस शो में वह इमाम जो उसका विरोध कर रहा था, उसे वह अपने अकाट्य तर्कों से धो रही थी, और वह इमाम भी अचंभित होकर उन्हें सुनता ही रह गया। अब वफा सुल्तान ने इस प्रभावपूर्ण पुस्तक में अपने जीवन की कथा लिखी

है। वह उस कुरुपता को उजागर करती हैं, जो मध्य एशिया के मुस्लिम समाज में है तथा उन्होंने इस्लाम को अस्वीकार करके जिन पश्चिमी मूल्यों को आत्मसात् किया है उसका मुखर होकर बचाव करती हैं। यह साहसी नारी जो अपने जीवन पर खतरा झेलने के बाद भी अपने विश्वासों के लिए निरंतर संघर्षरत हैं, यदि आप इनको समझना चाहते हैं और इस्लाम व पश्चिम के बीच संघर्ष पर उनके विचारों को समझना चाहते हैं तो यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।"

- यारोन ब्रूक, पीएच.डी., अध्यक्ष व कार्यकारी निदेशक, अयैन रैंड इंस्टीट्यूट

ऐसा अल्लाह जो घृणा पालता है

वफा सुल्तान

वह साहसी नारी
जिसने मुस्लिम जगत में आग लगा दी
इस्लाम की बुराइयों के विरुद्ध मुखर होकर

लेखिका की टिप्पणी

यह एक सत्य कथा है, यद्यपि कुछ नाम परिवर्तित किए गए हैं।

सेंट मार्टिन प्रेस, न्यूयार्क

मेरे प्रिय पति व संतानों का समर्पित

जब संसार का कोई स्थान मेरे लिए सुरक्षित नहीं लगता था, तो इनके निस्वार्थ प्रेम ने मुझे शरण दिया।

अंत में, अपनी उस प्रिय भतीजी मैय्यवा का स्मरण करती हूँ, जिसने इस्लामी शरिया कानून में थोपी गई नारकीय शादी से बचने के लिए आत्महत्या करके अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली थी: उसकी यह दुखभरी घटना उन सभी के लिए सदा प्रेरणा का स्रोत बने, जिन्हें मुक्त समाजों में रहने का सौभाग्य मिला है। उसकी कथा उन सभी में जागरूक रहने और भय व खतरे से संघर्ष करने की भावना भरे, जिन्हें -विशेष रूप से महिलाएं- अत्याचार सहना पड़ रहा है। और एक चुनौती: उनको जिनके भीतर न्याय व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के सिद्धांत जीवित हैं- मैय्यदा की कथा और ऐसे बहुत से लोगों की कथाएं जो कभी सुनाई नहीं गईं, आप सभी में मुस्लिम जगत में महिलाओं के साथ हो रहे अन्याय व अनैतिक व्यवहार के विरुद्ध मुखर होने का साहस भरे।

अनुक्रमाणिका

आभार
1. ऐसा अल्लाह जो घृणा पालता है
2. इस्लाम में महिला
3. इस्लाम के पुरुषों के लिए आशा की किरण
4. किसी अन्य ईश्वर के विषय में जिज्ञासा
5. इस्लामी अल्लाह की प्रकृति
6. मुस्लिम पुरुष और उनकी स्त्रियां
7. स्वतंत्रता की ओर प्रथम पग
8. "अल जजीरा पर आई वह महिला कौन है?"
9. इस्लाम एक बंद फ्लास्क
10. इस्लाम एक संकरा हाट
11. प्रत्येक मुसलमान को ध्यान से बताया जाना चाहिए
12. सभ्यताओं का संघर्ष
13. "नए" अमरीका में रहना: कॉलिन पॉवेल एवं राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा के विषय में सोचना

आभार

अरबी में एक कहावत है: "अकेला पुष्प लहलहाता बाग नहीं रच सकता है। इसी प्रकार, मैं अपने बहुत से समर्पित व सहयोगी मित्रों के बिना इस पुस्तक को साकार रूप दे पाने में समर्थ नहीं हो पाती। मैं सहृदय उन सभी और उनमें से प्रत्येक के प्रति धन्यवाद प्रकट करना चाहती हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरे वो मित्र जानते हैं कि मैं किनके विषय में कह रही हूँ, अत: मेरे लिए उनके नाम का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। जिस प्रकार मेरा जीवन खतरे में है, मैं उनका जीवन खतरे में नहीं डालना चाहती हूँ। अलजजीरा मीडिया नेटवर्क ने मुझे अपनी प्रसिद्ध श्रृंखला 'अल इत्जाह अल माउएक्स' (विपरीत दिशा) के तीन कार्यक्रमों में अतिथि बनाया। तीसरे साक्षात्कार के पश्चात् चैनल ने मेरे साक्षात्कारों को इस्लाम का अपमान करने की अनुमति देने वाला कार्यक्रम बताते हुए इसके लिए अरब जगत से क्षमायाचना की और इस कार्यक्रम के सारे पुनर्प्रसारण को रोक दिया। यद्यपि अलजजीरा पर मेरे तीन साक्षात्कारों ने मुझे व मेरे संदेशों को करोड़ों व्यक्तियों तक पहुंचा दिया और इसके लिए मैं हृदय से अलजजीरा के प्रति कृतज्ञ हूँ।

मध्य एशिया अनुसंधान संस्थान (एमईएमआरआई) ने भी मेरे मिशन के प्रसार में बड़ी भूमिका निभाई। इसके लिए मैं उनकी सराहना करना चाहूँगी। एमईएमआर्आई दल ने उस क्षेत्र से निकलने वाली सूचनाओं को ठीक से प्रस्तुत करने के लिए भाषाई बाधाएं दूर करने में कर्मठता से परिश्रम किया है और ऐसा करने में निष्पक्ष पत्रकारीय मंच दिया है, जिससे कि शेष विश्व मध्य एशिया में खतरनाक स्थिति की सही प्रकृति को समझ सकें। अंतत: मैं अरब जगत के उन प्रिय पाठकों को धन्यवाद देती हूँ, जिनकी सकारात्मक अथवा नकारात्मक प्रतिक्रियाओं ने मुझे घृणा व मजहबी असहिष्णुता से निपटने में आने वाली गंभीर चुनौतियों का सामना करने एवं उन पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया है।

- वफा सुल्तान

अध्याय 1

ऐसा अल्लाह जो घृणा पालता है

इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् यदि सभी नहीं, तो भी उनमें से अधिकांश मुसलमान मुझे कोसते हुए मेरे मरने की कामना करेंगे। हो सकता है कि वो इस पुस्तक को पढ़ें भी ना। इसका शीर्षक ही उन्हें इस दशा में ला सकता है कि मुझे कोसें। वो लोग होते ही ऐसे हैं। वो नहीं पढ़ेंगे अथवा यदि पढ़ भी लें, तो जो पढ़ा है उसे समझना नहीं चाहेंगे। उनकी रुचि किसी बात को समझने की अपेक्षा नकारने में अधिक होती है। उनकी रुचि सर्वाधिक इसमें होती है कि उन सबको भयाक्रांत करें जिससे वो असहमत हों। वो लोग इतनी सी बात पर भी कोस सकते हैं कि आपने यह पुस्तक पढ़ी क्यों। अपनी क्रूरता में उन लोगों ने यही सीखा है कि दूसरों को कैसे दबाएं: इससे अधिक अत्याचार किसी मनुष्य की आत्मा पर और कुछ हो ही नहीं सकता है कि उसे अपने ही भय में जकड़ दिया जाए। यद्यपि, मुझे अब भय नहीं लगता है। क्यों? आइए आपको एक कथा सुनाती हूँ, जिससे आप संभवत: समझ पाएंगे कि मैंने इस्लाम के धर्मांध मुल्लों के विरुद्ध मुखर होने में अपने भय पर कैसे विजय प्राप्त किया।

एक समय की बात है एक उत्साही व जिज्ञासु नवयुवक था। उसे यात्रा करना प्रिय था। ज्ञान पिपासा में वह यहाँ से वहाँ, इस नगर से उस नगर की यात्रा किया करता था, और इस क्रम में उसके साथ जो होता उसे वह लिखता जाता, ज्ञान एकत्र करता जाता। अंतत: वह पहाड़ की घाटी में बसे एक सुंदर गाँव में पहुंचा, ऐसा गाँव जो चारों ओर से हरियालीयुक्त पहाड़ियों के घिरा हुआ था, जहाँ से रह-रह कर ठंडे पवन का झोंका आता और तन-मन को आनंदित व प्रफुल्लित कर देता। वह यह देखकर अचंभित हो गया कि इस मनोहारी स्थान पर भी गाँव के व्यक्ति दुखी हैं। सब गाँव

वासी क्लांत से, थके-हारे से, अपने पांवों को घसीटते हुए जा रहे थे। उस नवयुवक को ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो वो सब बिना आत्मा या शरीर वाले ऐसे भूत हैं जो चलते चले जा रहे हैं। इन भूतों को देखकर वह युवक भयभीत हो गया। उसने यह पता लगाने का निश्चय किया कि गाँव वालों की यह दशा कैसे हुई। उस गाँव में एक जाना-माना व्यक्ति था, जो गाँव और गाँव वालों से संपर्क तोड़कर अकेले एक कुटिया में रह रहा था। युवक इस व्यक्ति से मिलने निकल पड़ा।

जब वह इस बुद्धिमान व्यक्ति से मिला, तो उससे पूछा कि इस माया के पीछे क्या रहस्य है। उसने इस व्यक्ति से प्रश्न किया कि एक ऐसा गाँव जिसे देखकर प्रतीत होता है कि यहाँ निवास करने वाले जन आनंद व समृद्धि से भरे होंगे, वहाँ भी सब दमित व विषादपूर्ण स्थिति में क्यों जी रहे हैं? वह संत अपनी कुटिया से बाहर आया और पहाड़ की चोटी की ओर उंगली दिखाई। "चोटी पर देखो। वहाँ एक विशाल नरभक्षी राक्षस बैठा है, वह चिंघाड़ता है और अट्टहास करता है, धमकी देता है कि यदि गाँव वालों ने घर छोड़ा या कोई काम-धाम किया, तो उन्हें निगल जाएगा। गाँव वालों के मन में उस राक्षस का भय बैठा हुआ है। उसकी चिंघाड़ से आतंकित जन चोरी-चकारी करके ही जी सकते हैं। जीवन के प्रति जिजीविषा ही उनको चला रही है। वे लोग मूस की भाँति चुपके से कुछ इतना चुराकर रख लेते हैं कि उनका शरीर आत्मा को ढोने भर की स्थिति में रहने योग्य बचा रहे। वे अपने जीवन का एक-एक दिन गिन रहे हैं, अधीरता से अपनी मृत्यु के क्षण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस राक्षस के भय ने उनकी बुद्धि हर ली है और उन्हें शारीरिक रूप से अशक्त बना दिया है, हताशा व निराशा के भंवर में झोंक दिया है।"

उस नवयुवक ने कुछ क्षण सोचा और बोला, "मैं उस पहाड़ की चोटी पर जा रहा हूँ। मैं उस राक्षस से बात करूंगा और उससे पूछूंगा कि वह गाँव वालों को क्यों आतंकित करता है, क्यों धमकाता है। मैं उससे पूछूंगा कि वह इन्हें शांतिपूर्ण व सुरक्षित ढंग से क्यों नहीं जीने दे रहा है।"

वह संत बोला, "क्या? तुम पहाड़ी की चोटी पर जाओगे? कोई भी विचारवान् व्यक्ति उस राक्षस से मिलकर अपना प्राण जोखिम में डालने का साहस नहीं करेगा। हे नवयुवक, मैं विनती करता हूँ कि अपने जीवन का सोचो और ऐसा न करो! परंतु वह नवयुवक नहीं माना। यदि उसे कुछ ऐसा लगता था कि यह किया जाना चाहिए, तो वह करने पर अडिग रहता था। इस प्रकार, वह धीमे किंतु दृढ़ पग से चोटी पर चढ़ने लगा।

जब वह नवयुवक चोटी की ओर बढ़ने लगा, तो पहले वह राक्षस वास्तव में विशाल प्रतीत हुआ; किंतु वह आगे बढ़ता गया और उसने जो देखा उससे चकित हो गया। वह जितना निकट पहुँचता, वह राक्षस उतना ही छोटा होता जाता। जब वह नवयुवक चोटी पर पहुंचा, तो पाया कि जिस विशाल राक्षस ने कितनों का आतंकित कर रखा था, वह उसकी सबसे छोटी उंगली से भी छोटा था। उस नवयुवक ने अपना हाथ आगे बढ़ाकर हथेली खोल दी, और वह नन्हा सा राक्षस कूदकर उस पर आ बैठा।

"कौन हो तुम?", नवयुवक ने पूछा।

राक्षस बोला, "मैं भय हूँ।"

उस नवयुवक ने पूछा, "कैसा भय?"

राक्षस बोला, "भय, यह इस पर निर्भर करता है कि तुम कौन हो। कोई व्यक्ति मुझे कैसे देखेगा, यह इस पर निर्भर करता है कि वह मेरी कैसी कल्पना करता है। कुछ को रोग का भय होता है, तो वो मुझे रोग के रूप में देखेंगे। कुछ को निर्धनता का भय सताता है, अत: वो मुझे निर्धनता के रूप में देखेंगे। कुछ सत्ता से सशंकित रहते हैं, तो वो मुझे सत्ता के रूप में देखेंगे। कुछ को अन्याय की आशंका लगी रहती है, जबकि अन्य व्यक्ति जंगली पशुओं या आंधी से भय खाते हैं, तो मैं उनको उस रूप में दिखता हूँ। जिन्हें जल से भय लगता है, वो मुझे भयानक जल प्रवाह के रूप में देखते हैं, और जिन्हें युद्ध से भय लगता है, वो मुझमें सेना, अस्त्र-शस्त्र या ऐसा ही कुछ देखेंगे।"

"किंतु उनको तुम इतना विशाल क्यों दिखते हो, जबकि तुम उतने बड़े हो तो नहीं?", युवक ने पूछा।

राक्षस ने कहा, "किसी व्यक्ति का भय जितना बड़ा होता है, मैं उसे उतना ही बड़ा दिखता हूँ, और जब तक वे मेरे समीप, मेरे सम्मुख नहीं आएंगे, मेरा वास्तविक आकार कभी नहीं जान पाएंगे।"

मुझे कभी-कभी अनुभव होता है कि मेरी दशा उसी नवयुवक के समान है, जो अपने युग के चलन से विद्रोह करता है। मैं भी कभी लगभग तीन दशक तक वैसे ही गाँव में रही, जैसा गाँव उस नवयुवक ने ढूंढ़ा था। उस गाँव के प्रति मेरा अपार प्रेम था, मानो उस गाँव से ऐसी आसक्ति हो कि मुझमें उससे बच पाने की न तो सामर्थ्य थी और न ही इच्छा। उस राक्षस ने एक समय मुझे अपने दासत्व में जकड़ रखा था, परंतु अब नहीं। उस दैत्य के काल्पनिक भय का बंधक बनकर रहना मेरे जीवन का भयानक समय था, पर मुझे उसमें जो अनुभव मिला उस पर कोई खेद नहीं है। क्योंकि मेरा मानना है कि सब कुछ किसी न किसी कारण से होता है, और उस अनुभव ने मुझे सबल ही बनाया। उस गाँव में मेरा जन्म यूं ही नहीं हुआ था, और यदि यूं ही हुआ भी था तो मैं निश्चित ही अपने जन्म को व्यर्थ नहीं जाने देती। मैंने वह गाँव छोड़ा, किंतु इसके पीछे मेरा उद्देश्य तनिक भी वैसा नहीं था, जैसा कि उस नवयुवक का था। प्राय: मेरा मन कहता था कि मुझे उस पहाड़ी पर बार-बार चढ़ना चाहिए, धीमी गति परंतु सधे पग से और उस राक्षस से संघर्ष करना चाहिए। वह राक्षस जो मेरे लिए चरमपंथी इस्लाम के आतंक के रूप में था। मैंने यह किया, और यह उस गाँव के निवासियों को दिखाने के लिए किया कि इस्लाम नामक वह राक्षस वास्तव में कितना बौना व कायर है।

मैंने अपने जीवन में कभी ऐसा नहीं देखा कि मुसलमान बिना विवाद किए कोई बात करे। संभवत: मैं इसका अपवाद हूँ, यद्यपि मैं ऐसा नहीं सोचती हूँ। मुसलमानों की स्थिति यह है कि यदि कोई कहे "सुप्रभात", तो वे कहेंगे, "पर अब तो रात है।" वाद-विवाद की यह प्रवृत्ति

उनको कलह उत्पन्न करने वाला बना देती है और इस काम में उनकी प्रथाएं सबसे अच्छा साधन बन जाती हैं, क्योंकि यही उन्हें चीखने-चिल्लाने व उत्पात करने का अवसर देती हैं। चीखना-चिल्लाना उनकी विशेषता बन गई है, और जब वो किसी ऐसे के साथ वार्तालाप करते हैं जिससे सहमत नहीं होते हैं, तो अपने इसी विशेष लक्षण को दिखाने लगते हैं। इसके बिना उन्हें अपना कोई मोल या अस्तित्व समझ में ही नहीं आता है; बिना इसके उनमें जीवित होने का भाव भी नहीं होता है।

वो नकार के लिए कुतर्क गढ़ते हैं और विभिन्न दृष्टिकोणों में सामंजस्य बिठाने का प्रयास करने की अपेक्षा बहुधा कुतर्क का स्वागत करते हैं। पर ऐसा क्यों है? क्योंकि नकार और भ्रम उस राक्षस के छोटे व दुर्बल होने के सच को छिपाकर उसे बड़ा व भयानक बनाए रखते हैं। संवाद में चीखने-चिल्लाने की प्रवृत्ति के कारण उनका स्वभाव गला फाड़कर बोलने का हो गया है, और वो अपने ही कोलाहल को सुनने में आनंद का अनुभव करते हैं। उन्हें लगता है कि वो जितने तीव्र स्वर में चीखेंगे, दूसरों को उतना ही लगेगा कि वो सही हैं। उनके वार्तालाप में कोलाहल होता है, उनकी बातें कर्कश होती हैं, और उन्हें लगता है कि जो तीव्र स्वर में चीखता है और गला फाड़कर बोलता है, वह शक्तिशाली होता है। इसलिए वो मनगढ़ंत विवाद उत्पन्न करते हैं कि उन्हें चीखने का अवसर मिले। वो प्रत्येक बात में विरोधाभास लाते हैं, जिससे कि उत्पात व कोलाहल कर सकें।

मैं प्राय: यह सोचने लगती हूँ कि यह चीखना-चिल्लाना और गला फाड़ना कब आरंभ हुआ होगा, और तब मुझे इसे समझने के लिए इस्लाम की जड़ों में झांकना पड़ता है। तनिक सोचिए, यदि आप किसी मरुस्थल में भटक जाएँ, कौन उत्तर दिशा है और कौन दक्षिण, यह जान पाने में समर्थ न हों, भूख, प्यास व गर्मी से मर रहे हों, और चारों ओर दूर-दूर तक केवल बालू के टीले ही टीले दिखें, कोई ऐसा मनुष्य या जीव न दिखे जो आपको बचा सके, तो उस क्षण आपके पास एक चीख ही बचती है जो यह ढांढस

दे सके कि आप अभी भी जीवित हैं। आपकी वह चीख इस आशा में निकलती है कि वहाँ से निकलने वाला कोई व्यक्ति सुनेगा।

उस मरुस्थल (रेगिस्तान) के लोगों पर जो आतंक व ध्वंस हुआ है, उसकी कथाएं अनेक अरबी इतिहासकारों ने सुनाई हैं। मेरी दृष्टि में ऐसी स्थिति के चित्रण की जो सर्वोत्तम कथा है वह है उस बद्दू की कथा, जिसका एकमात्र पुत्र अस्वस्थ हो गया था और ज्वर से तपता हुआ बिछौने पर पड़ा था। असहाय स्थिति से घिरा उसका पिता अपने पुत्र की पीड़ा सह नहीं पा रहा था और वह काली अंधेरी रात में ही चिकित्सक ढूंढ़ने निकल पड़ा। वह उस भयानक मरुस्थल में मार्ग भटक गया, उसे समझ नहीं आ रहा था कि उसके चरण किधर ले जा रहे हैं। वह चलता ही रहा और जाने कितना समय बीत गया, और तब उसे दूर प्रकाश की एक धुंधली सी किरण दिखी। वह उस ओर भागा, और जब वहाँ पहुंचा तो देखा कि वह वही शिविरस्थल था, जहाँ से वह गया था। शिविर के भीतर गया तो पाया कि उसका बेटा यह संसार छोड़कर जा चुका है।

यह कथा और अरबी साहित्य में प्रचुरता से उपलब्ध इस प्रकार की अन्य कथाएं उस वातावरण की कठिनाइयों की झलक दिखाती हैं, जिसमें इस्लाम का जन्म व विस्तार हुआ। यह एक ऐसा शुष्क वातावरण था, जिसमें भूख या प्यास के मर जाने का खतरा निरंतर बना रहता था और इस खतरे की चपेट में आना वहाँ के निवासियों की नियति थी। इस खतरे से जूझ रहे व्यक्तियों ने इससे संघर्ष करने की कोई दक्षता नहीं अर्जित की, तब ऐसे में इस भयानक खतरे पर नियंत्रण करने का एकमात्र उपाय चीखना व चीत्कार करना ही बचता था। बद्दुओं अर्थात अरबियों के अवचेतन में चीखने की यह प्रवृत्ति जीवित रहने की सबसे महत्वपूर्ण दक्षता के रूप में गहरे बैठ गई। इस्लाम ने मुसलमानों के असभ्य व्यवहार को मजहबी पवित्रता का रूप दे दिया, और तब से लेकर आज तक वे दूसरों से संप्रेषण का कोई नया ढंग नहीं सीख सके हैं। किंतु मुझे अब भी आश्चर्य होता है कि चीखने और चिल्लाने का यह स्वभाव उनमें अभी तक क्यों है?

जब कोई व्यक्ति विशेष शैली का व्यवहार अपना लेता है, तो वह उस सीमा तक उस व्यवहार का प्रदर्शन करता है कि दूसरे लोग उसके उस व्यवहार को स्वीकार कर लें। यदि दूसरे लोग उसके व्यवहार को प्रोत्साहित करते हैं अथवा उसके व्यवहार पर आपत्ति नहीं प्रकट करते हैं, तो वह वही व्यवहार करता जाता है। जिस प्रकार विश्व मुसलमानों की चीख-चिल्लाहट और उत्पात पर पीछे हट रहा है और निरंतर पीछे हटता ही जा रहा है, उससे मुसलमानों को यह प्रोत्साहन मिल रहा है कि वो अपना उत्पाती व्यवहार निरंतर रखें। जब अन्य लोग चुप रहते हैं, पीछे हट जाते हैं, तो मुसलमानों का लगता है कि वो ही सही हैं। यद्यपि उनकी चिल्लाहट अब मुझ पर कोई प्रभाव नहीं डालती है, और मैं उनको सुनती भी नहीं हूँ।

मेरा मानना है कि जब कोई इस संसार में आता है, तो उसके आने का एक उद्देश्य होता है, और उस उद्देश्य को पूरा किए बिना संसार से भागना नहीं चाहिए। यद्यपि, मैं उस गाँव में बिताए अपने बाल्यकाल और तत्पश्चात् अमरीका प्रस्थान कर जाने की ओर मुड़कर देखती हूँ, और यह समझने का प्रयास करती हूँ कि मैं इस धरती पर किसलिए आई हूँ। यह सच है कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ परिवर्तन ला सकता है और प्रत्येक परिवर्तन का महत्व होता है। संसार एक चित्र है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति रंग भरता है, उसके उस रंग से संसार पर प्रभाव पड़ता है और अंततः वह रंग संसार को नया रूप देने में एक छवि अंकित करता है। जो इस धरती पर रहकर श्रेष्ठ कार्य करते हैं, वो संसार के चित्र को सुंदर बनाते हैं। जिनकी प्रवृत्ति निकृष्ट कार्य करने की होती है, वो इस चित्र को विकृत करते हैं। मेरा विश्वास है कि मुझे इस संसार में श्रेष्ठ कार्य करने और इस चित्र को सुंदर बनाने के लिए भेजा गया है।

जब तक संसार है, सज्जनता व दुष्टता के मध्य संघर्ष चलता रहेगा। मेरा विश्वास है कि अंततः अच्छाई की जीत होती है, और ऐसा ही होता रहेगा। यह धारणा कि बुराई संसार को रौंद डालेगा, 21वीं सदी में नहीं आई। इस तथ्य के होते हुए भी कि सत्य के आगे कोई नहीं टिकता,

बुराई को बड़ा बताने की यह धारणा सभी कालखंडों और सभी स्थानों पर व्याप्त रही है। यद्यपि यह धारणा आधारहीन है कि बुराई जीत रही है, किंतु मैं समझ सकती हूँ कि कुछ लोगों में यह धारणा क्यों है। बुराई चिंघाड़ती है, जबकि अच्छाई संसार को शांति के आवरण में लाती है। अच्छाई की अपेक्षा बुराई को पाना कहीं अधिक सरल है। परंतु मेरा विश्वास है कि जब से यह संसार अस्तित्व में आया है, अच्छाई ही इस संसार को चला रही है। अत: प्रत्येक स्थिति में अच्छाई की रक्षा की जानी चाहिए, क्योंकि यदि बुराई ने अच्छाई को पराजित कर दिया, तो हमारे संसार का अस्तित्व नहीं बचेगा। जिस कालखंड में मैं रह रही हूँ, उसमें यह पुस्तक लिखने पर बार-बार सचेत किया गया और चेतावनी दी गई कि इसके लिए मुझे अपना प्राण तक गंवाना पड़ सकता है, परंतु मैं अडिग हूँ। यह विश्वास ही मुझे मुखर होने का साहस प्रदान करता है कि अच्छाई अंतत: बुराई पर विजय प्राप्त करेगी।

9/11 आतंकवादी आक्रमण के पश्चात् अमरीकियों ने अपने आप से पूछा:

"वो हमसे घृणा क्यों करते हैं?"

मेरा उत्तर है: "क्योंकि मुसलमान अपनी महिलाओं से घृणा करते हैं, और कोई भी समुदाय जो अपनी महिलाओं से घृणा करता है, किसी और से प्रेम नहीं कर सकता है।"

लोग पूछते हैं: "किंतु मुसलमान अपनी महिलाओं से क्यों घृणा करते हैं?"

तब मेरा उत्तर यही होता है: "क्योंकि उनका अल्लाह महिलाओं से घृणा करता है।"

यहाँ तक कि मेरे अपने परिवार में भी मर्दों ने अपनी औरतों के जीवन में दुख घोला है। कितनी बार मेरे मन में यह विचार आता था कि अपने बाबा को कब्र के निकालकर लाऊं, उन्हें न्यायालय में घसीटूं और उस दुख व पीड़ा के लिए दंड दिलाऊं जो उन्होंने मेरी दादी को दिए हैं। ऐसा विचार इतनी बार आता था कि मैं अब उन्हें गिन भी नहीं सकती। परंतु

दुर्भाग्य यह है कि जब तक मैं उस अल्लाह का वास्तविक चरित्र उजागर न कर दूं जो उस पहाड़ी की चोटी पर बैठा हुआ है, मैं उनके लिए, सुहा के लिए, समीरा के लिए, अमाल के लिए, फातिमा के लिए अथवा उन करोड़ों महिलाओं की ओर से प्रतिशोध नहीं ले सकती जिन्हें उस घृणा से भरे हुए हिंसक अल्लाह के बंधन में जीना पड़ रहा है।

जब एक ऐसी महिला, जिसका रोम-रोम सताया हुआ हो, जो अपने गाँव में जीने से आतंकित हो, क्योंकि उस गाँव ने उसे ऐसी कालकोठरी में बंद कर रखा है जिससे बचकर निकलने का मार्ग सूई के छिद्र से भी छोटा है, अंतत: उड़ जाने और उस राक्षस के चंगुल के निकल भागती है तो वह स्वयं और अपने तीन बच्चों को नितांत अकेला पाती है। यह महिला अपने हृदय में सहस्त्रों (हजारों) वर्षों के बराबर वेदना और झोली में मात्र कुछ सौ डालर लिए हुए विश्व के बड़े नगरों में से एक नगर में पहुँच जाती है और वहाँ एक स्थान पर मार्ग में स्वयं को निर्वासित अवस्था में पाती है। यह महिला स्थानीय भाषा नहीं बोल पाती है और स्थानीय प्रथाओं व परंपराओं के विषय में भी कुछ नहीं जानती है। इसके पास यदि कुछ है, तो जीवन का वह अपार कड़वा अनुभव है जिससे साहस के आश्रय से ही पार पाया जा सकता है। किसी समय यह महिला मैं थी।

जब लॉस एंजेल्स के विमान तल पर मैंने धरती को स्पर्श किया, तो मेरे मन में केवल अपने परिजनों के लिए ही चिंता नहीं थी, अपितु उन लोगों के लिए भी मैं उतनी ही दुखी थी जिन्हें मैं अपने गाँव में पीछे छोड़कर आई थी। लॉस एंजेल्स में मेरी पहली सेवा (नौकरी) एक गैस पंप पर लगी। जिस दिन मैंने वह सेवा आरंभ की, उसी दिन मैंने अपना वह लेख लिखा जिसमें चीखने वाले मुल्लाओं से असहमति प्रकट करने और उनसे प्रश्न पूछने का साहस किया, और इस प्रकार मैंने दो पथों पर एक-साथ चलने का श्रीगणेश किया। मेरा पहला पथ अपने उस परिवार का भरण-पोषण करना था जो इस जीवनयात्रा में मेरे साथ चल रहा था, और मैंने अपने लिए और परिवार को अच्छा जीवन देने के लिए पर्याप्त धनार्जन

का प्रयत्न किया। दूसरा पथ जो कि मेरा और केवल मेरा था, उस राक्षस से भिड़ना और उसके अत्याचार से अपने परिवार को मुक्त कराना था। दूसरे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मुझे अकेले उस पहाड़ी पर जाना था और अपने मन में बैठे हुए उस वेदना रूपी राक्षस को सामने से चुनौती देनी थी। किंतु प्रश्न उठता है कि इन दोनों पथों में भेद क्या था? पहला पथ विधि व नैतिकता के अधीन था जो कठिन तो था, परंतु उस पर चलना संभव प्रतीत होता था। दूसरे पथ पर जंगलराज था जो आपको हानि पहुंचा सकता था, यहाँ तक कि अमरीका सदृश सभ्य स्थान पर भी यह पथ खतरनाक था।

मेरे मन का साहस ही था कि जिसने मुझे उस पथरीले मार्ग पर उसी ऊर्जा के साथ आगे बढ़ने को प्रेरित किया, जो ऊर्जा मेरे भीतर तब थी जब मैं एक ऐसे समाज में खड़े होने का प्रयास कर रही थी जिसने मेरी कमियों के होते हुए भी मुझे सम्मान दिया। एक महिला के रूप में मैंने अब तक जो ज्ञान प्राप्त किया था, वह इसलिए प्राप्त कर पाई क्योंकि मैं अमरीका में रह रही हूँ और इस ज्ञान ने मेरी ज्ञान-पिपासा को शांत किया। इस ज्ञान ने मुझे मेरे भय व कमियों से उबारा। जब मैं स्वयं और परिवार की भलाई के लिए कार्य कर रही थी, तो मैं चारों ओर से पुस्तकों से घिरी हुई थी। पुस्तक ही वे साधन थे जिन्होंने मेरा उद्धार किया, किंतु मैं जिस संस्कृति में पली-बढ़ी थी उसमें महिलाओं को प्रायः पुस्तकों से दूर रखा जाता है। एक बार आपने पुस्तकों को अपना मित्र बना लिया तो समझिए कि आपने स्वयं को बुल्डोजर के समान शक्तिशाली बना लिया, और तब आपकी यात्रा कितनी भी लंबी एवं कठिन हो, उसे पूरा करना असंभव नहीं प्रतीत होता है।

अमरीका में 17 वर्ष बिताने के पश्चात् मैंने वह स्थिति अर्जित कर ली, जो मैं अपने इस नए देश में चाहती थी। मेरी पहचान एक ऐसे ईश्वर से भी हुई, जो उस अल्लाह से भिन्न था जिसे मैं अपने गाँव में जानती थी। मेरे स्मृति-पटल पर उस महिला का मुखमंडल उभर आता है जिसने लॉस एंजेल्स वायुपत्तन (हवाईअड्डा) पर मेरा स्वागत किया था। वर्षों पूर्व जब मैंने

पहली बार अमरीका की धरती पर अपने चरण धरे, तब स्मित मुख (मुस्कान भरे मुख) से उस युवती ने मुझसे कहा, "अमरीका में स्वागत है!" उस दृश्य का स्मरण कर आज भी मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। इससे पूर्व कहीं भी किसी ने मेरा स्वागत नहीं किया था। उस राक्षस अर्थात उस पुराने ईश्वर अल्लाह जिसे मैं जानती थी, ने मुझे न केवल इन शब्दों के सुनने के अधिकार से वंचित कर रखा था, अपितु वह मुझे यह समझाने में भी सफल रहा था कि मैं वह अधिकार धारण करने की पात्र ही नहीं हूँ। अमरीका ने मुझे वह अधिकार वापस दिया कि मैं एक ऐसे समाज में रहूँ जो मेरा स्वागत करे और इस देश ने जीवन में प्रथम बार यह अनुभव कराया कि मैं इस अधिकार की पात्र हूँ।

उस दिन लॉस एंजेल्स विमान पत्तन से जब मैं बाहर निकली, तो मन में एक नया भाव था। हो सकता है कि अन्य लोगों के मन में स्वाभाविक रूप से ऐसा भाव रहता हो, परंतु एक ऐसी महिला जिससे मैं जीवन में इससे पूर्व कभी नहीं मिली थी, वह मेरे प्रति ऐसी विनम्रता का व्यवहार कर रही थी, यह देखकर मैंने अभी-अभी पहली बार इस नए भाव का अनुभव किया था। प्रत्येक समाज में व्यक्ति वैसे ही ईश्वर की पूजा करते हैं, जैसे कि वे स्वयं होते हैं। क्या लॉस एंजेल्स में मेरा स्वागत करने वाली वह दयालु महिला अपने उसी ईश्वर के समान नहीं है जिसकी वह पूजा करती है? उसी क्षण मैं अपने राक्षस को मारकर उस महिला के स्वागत करने वाले ईश्वर को अपने मन में स्थापित कर लेना चाहती थी! तभी मुझे यह भी समझ में आ गया था कि जैसा मनुष्य वैसा ही उसका देवता। वैसा ही कि जैसा ताला वैसी कुंजी। यदि किसी समाज में कमी होगी, तो उस ताला व कुंजी दोनों को ठीक कराने की आवश्यकता होगी। केवल ताले को ठीक करा दें अथवा केवल कुंजी को, तो काम नहीं चलेगा। जैसा कि इस अमरीका में है जहाँ आज मैं रहती हूँ, वैसा ही मेरे गाँव में भी है कि व्यक्ति वही ईश्वर होता है जिसकी वह पूजा करता है। वह महिला भी अपने ईश्वर को अपना आदर्श मानती है। वह अवचेतन और सचेत दोनों अवस्थाओं

अपने इस आदर्श के निकट जाने का प्रयास करती है, और तब तक ऐसा करती रहती है जब तक कि वह उससे एकाकार नहीं हो जाती है।

लॉस एंजेल्स के विमान तल पर उस महिला ने मुझमें यह आशा की किरण जगा दी कि मनुष्य परिवर्तित हो सकता है। यद्यपि मनुष्य के परिवर्तित होने के लिए पहले उस ईश्वर को एक नए सांचे में ढालना आवश्यक होता है, जिसकी वह पूजा करता है। जब मैं अपने आसपास व्यर्थ हो रहे मानव जीवन के विषय में चिंतन करती हूँ, तो निराश होने लगती हूँ। यह देखकर मेरी आशा टूटने लगती है कि कोई मुस्लिम युवक किसी विद्यालय में विद्यार्थियों के बीच जाकर स्वयं को बम से उड़ा देता है। वह 28 लोगों को केवल इसलिए मार देता है, क्योंकि वह एक ऐसे मिथ्या (झूठ) प्रभाव में है जो उस पर उसके अल्लाह ने थोपा है। वह मिथ्या धारणा यह है कि इन बालक-बालिकाओं को मार देने से उसे सीधे जन्नत और हूरें मिलेंगी। क्या ऐसा नहीं है कि यह मुस्लिम युवक उसी राक्षस अर्थात अल्लाह से एकाकार होना चाहता है? वही राक्षस जो उस उदास गाँव की पहाड़ी की चोटी पर बैठा हुआ है, वही राक्षस रूपी अल्लाह जो घृणा पालता है। क्या यह सच नहीं है कि वह अल्लाह भय के माध्यम से दूसरों को नियंत्रित व प्रभावित करने की इच्छा रखता है? यदि हम उस अभागे मुस्लिम आत्मघाती युवक जैसे लोगों को विवेकशील मनुष्य बनाना चाहते हैं, तो सबसे पहले हमें उनकी यह सहायता करनी होगी कि वो उस राक्षस को ठीक से पहचान सकें, और उनको यह बताना होगा कि घृणा करने वाले उनके अल्लाह के स्थान पर प्रेम करने वाला दूसरा ईश्वर कैसे लाया जाए।

अध्याय 2

इस्लाम में महिला

अनेक लोग मुझसे प्राय: यह प्रश्न पूछते हैं कि ऐसा क्या नाटकीय परिवर्तन हुआ कि जिसने मेरे जीवन की धारा ही परिवर्तित कर दी। मुझे लगता है कि मेरे जीवन में प्रथम परिवर्तन तब आया जब मैंने तीसरी कक्षा में पढ़ना सीखा। तभी से पुस्तकों को लेकर मेरे मन में ऐसी रुचि उत्पन्न हुई कि जो भी पुस्तक मुझे मिलती, मैं पढ़ डालती थी। चौथी कक्षा में पहुँचते-पहुँचते तो मैं 'द हंचबुक ऑफ नोट्रे डेम', 'गॉन विद द विंड' और अगाथा क्रिस्टी की रहस्यमयी कथाओं में खोने लगी थी। मेरे अध्यापकगण, परिजन और परिवार के मित्रगणों ने बड़ी उदारता से मेरी इस रुचि को प्रोत्साहन दिया और मेरे बालपन की इस पढ़ाकू प्रवृत्ति को देखकर वो मेरे साथ ऐसा व्यवहार करने लगे, मानो मैं विलक्षण प्रतिभा वाली हूँ।

तब भी मैं मुझे एक ही काम सबसे प्रिय था, और वह था बातें करना, करते ही जाना। मुझे लगता है कि मेरे लेखन व संभाषण प्रतिभा को निखारने में जिस बात ने सबसे पहले प्रोत्साहित किया, वह थी मेरे अरबी साहित्य के अध्यापक द्वारा की गई एक टिप्पणी। एक दिन मेरी अभ्यास पुस्तिका पर उन्होंने लिखा, "मुझे तुम्हारी बुद्धिमत्ता और चिंतनशीलता अच्छी लगती है। तुम्हारे भीतर प्रतिभा है, जिसे तुम पढ़-पढ़कर निखारते जाना, और तब तक पढ़ती जाना जब तक कि यह प्रतिभा पूर्णत: निखर न उठे। लक्ष्य-पथ लंबा है, किंतु ध्यान रहे कि नागफनी का फल कांटों के शूल से ही होकर निकलता है, और वह फल अत्यंत मीठा होता है।" सो, जैसा वह प्रोत्साहन था, वैसा ही मुझे बनना था, "नागफनी के मीठे फल के समान", ऐसा फल जो कांटों भरे पौधे का उपहार होता है। उनकी पंक्तियों ने मुझे लेखन करने को प्रोत्साहित किया। मेरे परिवार ने जिस प्रकार मेरा

उत्साहवर्द्धन किया, उससे मुझे उस ओर जाने की प्रेरणा मिली जिधर मेरे ज्ञानार्जन की क्षुधा शांत हो सके। एक दिन साँझ को मेरे पिता अपने मित्रों के साथ बैठे थे और मेरे विषय में बात कर कर रहे थे। उनकी बातों से ऐसा लग रहा था कि मानो वो किसी ऐसे व्यक्ति के विषय में बतिया रहे हों जिसमें असाधारण प्रतिभा भरी हुई है। मैं उनको अपने विषय में इस प्रकार बात करते सुनकर असहज हो गई। उनकी मुक्त-कंठ प्रशंसा ने मुझ पर बड़ा उत्तरदायित्व डाल दिया था, उसी क्षण मैंने मन ही मन ठान लिया कि उन्हें कभी निराश नहीं करूंगी।

मेरी नानी मेरी आदर्श थीं और उन्होंने मेरे जीवन में बड़ी भूमिका निभाई। स्मृति पटल पर अंकित उनकी छवि मेरे मन में उभरती है, तो वह दृश्य नेत्रों के समक्ष चित्रित होने लगता है कि कैसे जब हम अपने बाल्यकाल में एकत्र होकर उनके पास जाते थे तो वह सुंदर-सुंदर कथाएं सुनाती थीं और हम उन कथालोकों में विचरण करने लगते थे। उन्होंने हमें बताया कि नारी का मोल क्या है, और यह भी बताया कि कैसे मुस्लिम संसार में औरत अपने शौहर के पांव की जूती होती है। वह एक सबल नारी थीं और यदि उन्हें वैसे ही अवसर दिए गए होते जो मुझे मिले हैं, तो वो अरबी संस्करण की मार्गेट थ्रैचर होतीं। परंतु वो भी एक ऐसी महिला के समान ही थीं जो दुख सहते-सहते कठोर हो जाए, परंतु मैं कभी जान नहीं पाई कि उनके नेत्रों में दिखने वाले उस गहरे दुख के पीछे क्या बात थी। जीवन के दूसरे दशक के आरंभ होने तक उनके तीन बेटे और दो बेटियां हो चुकी थीं। उनके गाँव में चेचक की भयानक महामारी आई थी और बड़ी संख्या में ग्रामीणों का जीवन लील गई थी। महामारी उनके द्वार पर भी आई और उनके तीनों बेटों को छीन लिया, अब उनके पास केवल दो बेटियां रह गई थीं। मेरे नाना रात में उठते और बौखला जाते, दुख के कारण नहीं अपितु अपमान के कारण। वह अब "बेटियों के पिता" बन गए थे, और यह बात उन्हें अपमानजनक लगती थी। मेरी नानी को इस अपमान

का उत्तरदायी ठहराया जाता, क्योंकि उन्होंने ही उन बेटियों को जन्म दिया था।

मेरे नाना स्थानीय मुख्तार अर्थात गाँव के मुखिया थे और उनका पद इस बात की अनुमति नहीं देता था कि वह पुत्रहीन जीवन बिताएं। वो अपने अपमान के लिए मेरी नानी को उत्तरदायी ठहराते थे, इसलिए बेटों की मृत्यु के सप्ताह भर के भीतर ही उन्होंने मेरी नानी को विवश किया कि वो गाँव के एक प्रतिष्ठित परिवार में जाएँ और उनकी सुंदर बेटी का हाथ अपने शौहर के लिए मांगें। नानी स्वयं बताती थीं कि उन्होंने कैसे उस लड़की के सामने मेरे नाना का बखान किया था, समझाया था कि वह कितने सम्मानित और विशिष्ट हैं। वह उस शादी के लिए उस परिवार की सहमति लेकर ही लौटी थीं।

मेरे गाँव में रीति थी कि दुल्हन अपने परिवार के किसी सदस्य की अगुवाई में घोड़े पर दूल्हे के घर लाई जाती है। द्वार पर दूल्हे के परिवार की कोई महिला अपने सिर पर सुगंध भरा कटोरा रखकर उसकी अगवानी करती है। दुल्हन उस महिला पर कुछ सिक्के फेंककर उसे पुरस्कार देती है। मेरे नाना ने तनिक भी नहीं सोचा कि अपने सामने ही सौतन आती देखकर नानी पर क्या बीत रही होगी, और उन्होंने आदेश सुना दिया कि नानी अपने सिर पर सुगंध भरा कटोरा लेकर दुल्हन की वधू-यात्रा के सामने नृत्य करेंगी। जिस महिला ने उनके लिए पांच बच्चों को जना, उसको उन्होंने विवश किया कि वह गाँव में दूसरों के समक्ष अपने को अपमानित करे। उन्होंने छोटे और तुच्छ कारण से ऐसा किया, क्योंकि वो नहीं चाहते थे कि उनकी नई दुल्हन जब कटोरे में सिक्का फेंके, तो वह सिक्का परिवार के बाहर का कोई व्यक्ति ले जाए।

मेरी नानी अपना आत्मसम्मान निगल गईं और अपनी पीड़ा को छिपाते हुए नाचने गईं। जब शादी समारोह सम्पन्न हो गया, तो उनको समझ में आया कि उन्होंने शौहर तो खो दिया, पर उन्होंने अपन मन को यह कहकर संतोष देने का प्रयास किया कि उन्हें कम से कम स्वर्ण का

उस्मानिया पाउंड तो मिला। यद्यपि, उनकी यह छोटी सी प्रसन्नता भी देर तक नहीं रही। अगले दिन भोर में उनके कक्ष के किवाड़ पर खट-खट की ध्वनि हुई और उनकी नींद खुल गई। जब नानी ने किवाड़ के छिद्र से देखा तो चौंक गईं कि वहाँ मेरे नाना खड़े थे। वो भीतर आए और अत्यंत धीमे स्वर में नानी के कान में फुसफुसाते हुए बोले, "मेरी दुल्हन अभी सो रही है, तो मैं तुमसे वह स्वर्ण पाउंड उधार मांगने आया हूँ। मैं वचन दे रहा हूँ कि जब इस मौसम की नई उपज आएगी तो तुम्हें वह वापस कर दूंगा।"

मेरी नानी ने वह सिक्का उनको दे दिया और खाली हाथ लेकर बिछौने पर चली गईं। उनके पास अब दुख व पीड़ा के अतिरिक्त कुछ नहीं था। उस शादी के पश्चात् मेरी नानी की दशा घर के नौकर सी बना दी गई। वो मेरे नाना, उनकी बीवी और उससे जन्मे दस बेटों की सेवा करते हुए जीवन काटने लगीं। मेरी नानी ने इस तिरस्कार को स्वीकार कर लिया, अपमान का घूंट पी लिया, और वो मात्र इसलिए भोर होने से लेकर रात तक खेत में, घर में खटती रहतीं कि उनकी बेटियां जी सकें। इसके लगभग पचास वर्ष पश्चात् मेरी नानी की मृत्यु हुई, परंतु नाना ने उन्हें कभी वह स्वर्ण पाउंड वापस नहीं लौटाया। जिस प्रकार उन्होंने उस युवती को अपने शौहर की बीवी बनाने के लिए मनाते समय उनका बखान करने के लिए अपने आप को विवश किया था, वैसे ही मरते समय तक वो यही रटती रहीं कि उनके शौहर अत्यंत सम्मानित व्यक्ति हैं, और वो ऐसा करती भी क्यों न, एक निष्ठावान मुस्लिम बीवी को तो ऐसा करना ही पड़ता है।

एक मुस्लिम बीवी को सामान्यत: अपने जीवन के लिए कुछ भी चुनने का अधिकार नहीं होता है और यदि किसी विरले परिस्थितियों में वह कुछ चुनती भी है, तो वह उसे चुनने में क्षण भर का भी विलंब नहीं करती है जो उसके अनुकूल हो, भले ही उस चयन के लिए उसे भारी मूल्य चुकाना पड़े। जब मेरी मां की शादी हो गई, तो नानी ने मेरे नाना के उस नर्क से बाहर निकल जाने का निर्णय किया और अपने भाई के परिवार के साथ रहने चली गईं। वैसे तो अपने भाई के साथ उनका जीवन तनिक

अच्छे से कट रहा था, किंतु तब भी उन्हें यही लगता रहा कि वह घर छोड़कर अपने शौहर के विरुद्ध चली गई हैं। मेरी मां की शादी के पश्चात् वह अपने बच्चों पर ऐसी ममता लुटाने लगीं कि मानो कोई मुर्गी अपना अंडा से रही हो। मेरे पिता की पहली पत्नी के पांच संतान भी हमारे साथ ही रहते थे। मैं अपनी मां की आठ संतानों में से चौथी थी। जब मैं इस संसार में आई तो मुझे एक ऐसे घर में रहना था जहाँ इतने बच्चे थे कि पांव रखने तक का स्थान पाने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता था। मेरी मां की शादी के वर्षों पश्चात् मेरे पिता ने मेरी नानी को हमारे घर आकर रहने को कहा जिससे कि वो घर के कामों और बच्चों की देखभाल करने में मां की सहायता करें। अरब जगत में सास का अपने जमाई के यहाँ रहना असामान्य नहीं माना जाता है। जब उन्होंने अपने शौहर का घर छोड़कर भाइयों के पास जाने का निर्णय लिया था, तो उस परिस्थिति में पहले वह निश्चित ही नहीं कर पा रही थी कि किसको छोड़ें और किसके साथ जाएँ, वैसी ही परिस्थिति उनके समक्ष पुनः आ खड़ी हुई। यद्यपि नानी ने मेरे पिता के अनुरोध स्वीकार कर लिया। अब वह उस स्थिति में थीं कि अपना निर्णय चुन सकती थीं। मेरे पिता नानी के साथ सम्मान के साथ व्यवहार करते और उनकी प्रशंसा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे। वो उनके कठिन परिश्रम की सराहना किया करते थे और सदैव कहा करते थे कि उन्होंने अपनी संतानों का लालन-पालन बहुत अच्छे से किया है। मेरे पिता के घर में नानी ने स्वतंत्रता की नई अनुभूति की और हम पर स्नेह व ममता लुटाई।

मां का स्वभाव मेरी नानी से भिन्न था। उनमें मेरी नानी का वह गुण नहीं था कि अतीत की कड़वी स्मृतियों को भुलाकर नया जीवन जिएं। वह सदा दुखी, क्रोधित और अड़ियल बनी रहीं। मेरे पिता उनकी सुंदरता पर ऐसे मोहित थे, जैसे कोई शिशु खिलौने में खोया हो। मेरी मां की आयु मेरे पिता की सबसे बड़ी बेटी से भी कम थी। मेरे पिता मेरी मां के साथ अच्छा व्यवहार करते थे, परंतु यह भी मां के मुख पर स्मिता (मुस्कान) न

ला सका। दोनों की आयु में बड़ा अंतर था, मेरी मां को अपनी इच्छा के विपरीत उनसे शादी करनी पड़ी थी।

मेरे पिता व्यापारी थे और जिस नगर में हम रहते थे, वहाँ उनका बड़ा मान-सम्मान था। वो अनाज के व्यापारी थे और पूर्वी सीरिया में उत्पन्न अनाजों को तटीय क्षेत्रों के क्रेताओं को बिक्री किया करते थे। उन्होंने हमें ऐसा रहन-सहन व जीवनस्तर दिया था कि हमारे क्षेत्र के कितने परिवार तो उसकी कल्पना तक नहीं कर सकते थे। उनका दिन भोर में चार बजे प्रारंभ हो जाता था, जब वो उठते थे और कॉफी बनाते थे। कुछ ही क्षण में पूरे घर के कोने-कोने में तुर्की कॉफी की सुगंध फैल जाती थी। मैं अर्द्ध-निद्रा में ही होती थी कि मुझे पापा मम्मी के पास जाते हुए दिख जाते और बिछौने के पास जाकर उनके कान में धीरे से कहते, "ओ प्रिये, कॉफी तैयार है।" परंतु वो पापा को धकिया कर दूर कर देतीं और पापा ओसारे में अपने आसन (कुर्सी) पर जाकर बैठ जाते, वहाँ से समुद्र को देखा करते। प्राय: वो वहाँ अकेले ही कॉफी पिया करते थे।

उनको लेकर मेरी सबसे मधुर स्मृतियों में से एक वह है जब वो अपनी नियमित लंबी यात्रा के पश्चात् भोर में घर आते थे और परिजनों के पास दौड़ते हुए जाते और जगाते, ऊंची ध्वनि में कहते, "उठो-उठो, अपने-अपने झोले लेकर बाहर चलो!" हम सब एक-दूसरे को धकियाते हुए बाहर की ओर भागते और गली के मुहाने पर खड़े अनाज के ट्रक तक पहले पहुँचने की होड़ में दौड़ पड़ते। चालक हमें मिठाइयों, फल और तरकारी से भरे बोरे पकड़ा देता। तरभूज और खरभूज के समय में हममें होड़ लगी रहती कि कौन सबसे अधिक ला सकता है।

मेरे पिता घर पर बहुत कम समय व्यतीत करते थे। वह सूर्योदय से पूर्व ही घर छोड़ देते थे और देर रात तक लौटकर आते थे। उनकी अनुपस्थिति में मेरी नानी घर की मुखिया होती थीं। हमारे नगर में विद्यालयों की कमी थी। इस समस्या के समाधान के लिए विद्यालय दो पाली में चलते थे। शनिवार, रविवार और सोमवार को बालिकाएं प्रात: सात बजे से मध्याह्न

तक की पाली में विद्यालय जाती थीं, जबकि बालकों की पाली साढ़े बारह बजे से सायं पांच बजे तक चलती थी। सप्ताह के शेष तीन दिनों में यह व्यवस्था उलट जाती थी। जब मेरा विद्यालय दूसरी पाली में होता था, तो घर के आवश्यक वस्तुओं को लाने के लिए प्रात: नानी के साथ स्थानीय हाट जाती थी।

अपने भाई का घर छोड़कर मेरे घर आने से पूर्व नानी जहाँ रहती थीं, वह गाँव मेरे नगर से सात मील दूर है। नानी को वह गाँव छोड़े हुए बीस वर्ष से अधिक समय हो चुका है, और दोबारा उन्होंने वहाँ पांव नहीं रखा। मुझे स्मरण होता है कि 20 वर्ष के पश्चात् वो वहाँ अपनी बहन के अंतिम संस्कार में गई थीं। मेरी नानी को निश्चित ही अपना वह गाँव प्रिय था जहाँ वह बड़ी हुई थीं, किंतु उनमें अपनी भावनाओं को छिपा लेने की अद्भुत क्षमता थी। यद्यपि जब मैं प्रात: काल उनके साथ अपने नगर में हाट करने जाती थी, तो कभी-कभार उनकी भावनाओं में जन्मस्थान के गाँव के प्रति लगाव उभर ही आता था।

हाट के निकट बस स्टेशन और टैक्सी स्टैंड था, जहाँ लोग आसपास के गांवों के लिए बस पकड़ने हेतु आते थे। वहाँ एक कोने में एक कियोस्क था, जहाँ फलाफेल सैंडविच, हुमस और बाकला बिकता था। वह कियोस्क मेरी नानी के गाँव के एक संबंधी का था और यह व्यक्ति नानी के गाँव का ही था। नानी को फलाफेल अत्यंत प्रिय था, तो प्रति दिन सीधे उस कियोस्क पर पहुँच जाती थीं। वहाँ वो उस कियोस्क पर फलाफेल विक्रेता व अपने संबंधी मुहम्मद से देर तक बतियाती रहती थीं। मुहम्मद उन्हें गाँव में हुई छोटी-बड़ी, एक-एक घटना बताता। जब नानी उससे बतिया रही होतीं, तो मेरे लिए यह बहुमूल्य क्षण होता।

मेरी पहली पाठशाला तो मुहम्मद के कियोस्क के पीछे रखा कचरे का डब्बा था। मुहम्मद फलाफेल के सैंडविच को पत्रिकाओं, पुस्तकों और समाचार पत्रों के पुराने पृष्ठों में लपेटकर देता था। जो लोग उन पत्रिकाओं व पुस्तकों को पढ़ चुके होते थे, उनसे वह नाममात्र का पैसा देकर क्रय कर

लिया करता था। उस कियोस्क के पीछे एक बड़ा बम्बा रखा था जिसका उपयोग कचरा फेंकने में होता था। ग्राहक सैंडविच खाने के पश्चात् उसके रैपर को उसी में फेंक देते थे।

जब नानी मुहम्मद से बतियाने में व्यस्त होती थीं, तो मैं धीरे से सरक कर उस बम्बे के निकट पहुँच जाती थी और उससे सटी हुई पत्थर की भीत (दीवार) पर चढ़ जाती थी। भीत पर लेटकर अपने शरीर को नीचे की ओर झुकाते हुए अपना धड़ उस बम्बे में डाल देती और उन पृष्ठों को निकाल लेती। उन पृष्ठों पर लगी चटनी व फलाफेल को हटाती, पृष्ठों को सीधा करती, और तत्पश्चात् ध्यान से उन्हें लपेटकर अपनी जैकेट की जेब में छिपाकर रख लेती कि शांति से बैठकर पढ़ूंगी। मैं तब तक उन पृष्ठों को निकालकर एकत्र करती रहती, जब तक कि नानी का यह स्वर न सुनाई न दे जाता, "रे छोटी बंदरिया, कहाँ है तू। कूड़े में खेल रही है? बहुत गंदी है तू!" वो अपनी बची हुई सैंडविच मुझे दे देतीं और मैं अपनी जेब में रखे उन पृष्ठों में खोयी-खोयी सैंडविच चट कर जाती थी। मुहम्मद के फलाफेल कियोस्क पर जाने से मुझे पहली बार स्वतंत्र लेबनानी प्रेस की सामग्रियों तक पहुँचने का अवसर मिला, और इसके पश्चात् तो इसमें प्रकाशित होने वाली यूरोपीय व फ्रेंच पाठ्य सामग्री भी मुझे मिलने लगी। 1960 के दशक में जब मैं बड़ी हो रही थी, तो अरबी समाचार पत्र जगत में लेबनानी प्रेस का दबदबा था। सीरिया में तो विशेष रूप से ऐसा ही था। उस प्रेस व्यवस्था में मैंने जिस स्वतंत्रता को देखा, उसने मुझे अत्यंत प्रभावित किया। मुहम्मद के कचरे के डब्बे से समाचार पत्रों के जिन पृष्ठों को मैंने जुटाया था उसमें विचार व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की झलक मिलती थी, ऐसी स्वतंत्रता जो अरब संसार में अधिकांश लोगों के लिए दूर की कौड़ी थी। इन सामग्रियों को पढ़कर मुझमें साहस और सत्य के अन्वेषण की प्रवृत्ति आई।

शुक्रवार को हमारा अवकाश होता था, तो पूरे दिन मैं कचरे के डब्बे से लाए गए उन पृष्ठों की सामग्री को एक अभ्यास पुस्तिका में उतारती रहती और इसके पश्चात् उन पृष्ठों को कचरा-टोकरी में डाल देती थी। कोई

ऐसा सप्ताह नहीं जाता कि मैं किसी न किसी समाचारपत्र के पुराने पृष्ठों को ढूंढ़कर न जुटाऊं। उन पुराने पृष्ठों को ढूंढ़ने के पीछे मेरी एक ही ललक होती थी कि कहीं से रीडर्स डाइजेस्ट पत्रिका के अरबी संस्करण अल-मुख्तार के पृष्ठ मिल जाएँ, परंतु मुहम्मद के उस बम्बे में मुझे यह कभी नहीं मिला। बात यह थी कि रीडर्स डाइजेस्ट के पृष्ठों का आकार छोटा होता था, इसलिए उसमें सैंडविच नहीं लपेटा जा सकता था। परंतु मेरे भीतर पढ़ने की आग इतनी थी कि दो सप्ताह का पॉकेट मनी व्यय कर भी मैं रीडर्स डाइजेस्ट क्रय करती थी। इसमें मुझे जो मिलता था, उसका सुख मेरे उस साप्ताहिक भत्ते के उड़ जाने के दुख से कहीं बढ़कर था।

रीडर्स डाइजेस्ट से ही मैंने अंकल सैम के देश, संयुक्त राज्य अमरीका के विषय में जाना। इससे पहले मुझे यही लगता था कि अमरीका धरती से दूर कोई ऐसा ग्रह है, जिसका स्वरूप उस स्थान से नितांत भिन्न है जहाँ मैं रहती हूँ। मैंने अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में इस पत्रिका में ही पहली बार अमरीका की "स्वतंत्रता की मूर्ति" अर्थात स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी को देखा, और मैं कल्पना करने लगी कि स्वतंत्रता की यह देवी कैसी होगी। मैं इस देवी में अपने को ढूंढ़ने का प्रयास करने लगी। मैं सोचने लगी, यदि यह नारी मैं होती, तो पहला काम यह करती कि अपनी नानी के मुख पर प्रसन्नता के भाव लाती और अपने नाना को पत्र लिखकर रोष प्रकट करती कि किस प्रकार उन्होंने नानी के साथ दुर्व्यवहार किया, सताया।

सच तो यह है कि स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी को देखकर मेरी पहली प्रतिक्रिया ईर्ष्या भाव के रूप में आई और मैं सोचने लगी कि यह नारी बिना किसी भय या समस्या के इतने गर्वित भाव से एक हाथ में पुस्तक और दूसरे हाथ में ज्योति-पुंज लेकर खड़ी है जबकि मुझे ऐसा करने की कल्पना करने तक का अधिकार नहीं है? मेरा पूरा जीवन, तब भी और अब भी, इसी प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ने के प्रयास में बीत रहा है।

मैंने इस मूर्ति की महिला को अपने प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखा और मुझे लगा कि पुस्तकों के प्रति इस महिला का उत्साह मेरे समान ही है। जब

मैं पैन अमरीका के विमान में सवार होकर आकाश को चीरते हुए जा रही थी, तो मेरे मन में पहली बार जैसा उत्साह आया था, कुछ वैसा ही उत्साह इस महिला में भी है। इसी विमान से मैं 25 दिसम्बर 1988 को फ्रैंकफर्ट से न्यूयार्क पहुंची। विमान के काँच से बाहर न्यूयार्क के आकाश को निहारते हुए मेरी दृष्टि ज्यों ही उस मूर्ति पर पड़ी, मेरी ईर्ष्या छू-मंतर हो गई और मेरा हृदय प्रसन्नता से भर गया। मुझे नहीं पता कि यह कैसे और क्यों हुआ, परंतु सच यही है कि अब मेरे मन में ईर्ष्या के स्थान पर सुरक्षा व विजय का भाव भर गया था। मेरे पति लॉस एंजेल्स में मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। लॉस एंजेल्स के लिए विमान पकड़ने के पूर्व मुझे न्यूयार्क विमान पत्तन पर छह घंटे की प्रतीक्षा करनी थी। न्यूयार्क से लॉस एंजेल्स की विमान यात्रा में मैंने अपने नाना को पत्र लिखा। यद्यपि, नाना तब इस संसार से चले गए थे और अपनी कब्र में थे, परंतु मैंने उस पत्र में उनके प्रति अपना क्रोध उड़ेल दिया, और अब जब मैंने लॉस एंजेल्स की धरती पर चरण रखे तो मैंने अनुभव किया कि मेरा मन हल्का हो गया था, तथापि अभी भी मैं अपनी नानी के मुख पर प्रसन्नता लाने में समर्थ नहीं थी।

जिस देश में मैं रहती थी, वहाँ सताए गए लोगों को लगता है कि उनका भाग्य ही उनके विरुद्ध है। ऐसा नहीं था कि केवल पुरुष ही मेरी मां, मेरी नानी एवं अन्य महिलाओं के शत्रु थे। महिलाएं स्वयं भी इसकी उत्तरदायी थीं, क्योंकि वो अपनी दुर्दशा के लिए सामान्यत: अपने भाग्य को दोष देकर इसे अपनी नियति मान लेती थीं। ऐसा ही अभाग सीरिया-इजराइल सीमा पर छह दिवसीय युद्ध के युद्ध विराम के दसवें दिन 14 जून 1967 को मेरे द्वार पर भी आ पहुंचा। उस दिन मेरे पिता अनाज की खेप लाने पूर्वी सीरिया गए थे और कभी नहीं लौटे। वह रात भयावह थी, मार्ग पर कोई आवागमन नहीं था। 600 मील की यात्रा में तटीय व मध्य सीरिया के बीच पहाड़ियों में उनका ट्रक पलट कर गहरी खाई में जा गिरा। कई घंटे तक मेरे पिता वहाँ पड़े रहे, उनका रक्त बहता रहा। सेना का एक ट्रक सीरियाई सैनिकों के शव को उनके गाँव पहुँचाने के लिए वहाँ पहुंचा।

सेना के उस ट्रक के चालक ने खाई में मेरे पिता का पलटा हुआ ट्रक देखा और तुरंत रुका। वह मेरे पिता व उनके ट्रक के चालक को समीप के चिकित्सालय ले गया। ट्रक चालक बच गया, किंतु आंतरिक रक्तस्राव के कारण मेरे पिता की मृत्यु हो गई।

मेरे पिता की मृत्यु से हमारा जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। उस समय मेरी मां की अवस्था लगभग 30-32 बरस की रही होगी। मां के पास जो अल्प संवेदना थी, वह भी दुख के इस पहाड़ से मर गई। मेरे सौतेले भाई आगे आए और मेरे पिता का स्थान लेकर घर के उत्तरदायित्वों को संभाल लिया। वह मेरे पिता की पहली पत्नी के एकमात्र बेटे थे। वह मेरे पिता की भाँति ही स्नेह करने वाले एवं उदार हृदय वाले थे और उन्होंने हम पर कृपा बरसाई। उन्होंने मेरे पिता के व्यापार को संभाल लिया और अपने व हमारे दोनों परिवारों को अच्छा जीवन देने के लिए परिश्रम किया। उस समय तक वह स्वयं छह बच्चों के पिता थे।

उनके घर में मुझे जीवन का जो अनुभव मिला, उससे मेरी राजनीतिक मान्यताएं आकार लेने लगीं। मेरे भाई सीरिया राष्ट्रीय दल के सदस्य थे और यही कारण था कि वह इस्लाम के प्रति उदासीन थे। वह इस्लाम के विरुद्ध नहीं थे, किंतु इस्लाम के पक्ष में तो नहीं ही थे! इस दल के एजेंडे में एक बिंदु यह भी था कि उन्हें अरब एकता के लिए काम करना है और धार्मिक निष्ठा से परे होकर सम्पूर्ण अरब को मिलाकर एक देश बनाने के लिए संघर्ष करना है। इस्लामी इस दल को इस्लाम के लिए खतरा मानते थे, क्योंकि यह अरब के सभी देशों को मिलाकर एक ऐसे देश के निर्माण का समर्थन करता था, जो सभी मुस्लिमों, अरबियों और अ-मुस्लिमों को समायोजित करने वाली धार्मिक नीति के अनुपालन पर स्थापित हो। इन दो विपरीत ध्रुव वाले खेमों में अदृश्य संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय दल के समर्थकों में मन ही मन सामान्यत: धर्म के प्रति विरोध और विशेषत: इस्लाम के प्रति विरोध उत्पन्न हो गया था, और इस प्रकार वे लोग मुस्लिम शिक्षाओं की लाचारी व बाध्यताओं से मुक्त हो रहे थे।

मेरे भाई ने कभी खुलकर इस्लामियों के प्रति अरुचि तो नहीं प्रदर्शित की, किंतु जैसा मैंने कहा कि वो उनकी चिंता भी नहीं करते थे। वो इस बात को भली-भाँति जानते थे कि इस्लाम वह कब्रिस्तान है जो अरबी बोलने वाले किसी भी देश को प्रगति की दिशा में ले जाने के किसी प्रयास को सफल नहीं होने देगा। उनके राजनीतिक पद ने उन्हें अपनी चिंतन प्रक्रिया एवं दृष्टिकोण के विस्तार में सहायता की और इससे धीरे-धीरे मेरे प्रति उनके व्यवहार में परिवर्तन आया। अब मेरे और उनके मध्य भाई व बहन का व्यवहार तो था ही, साथ ही वो मेरी मानवीय व नारी गरिमा का भी ध्यान रखने लगे। वो आरंभ से ही मेरे विचारों को महत्व देते थे और बहुत सीमा तक स्वतंत्रता भी दिए हुए थे। उस संसार में अधिकांश महिलाओं के पास स्वतंत्रता होना तो दूर, वे यह तक नहीं जानती थी कि स्वतंत्रता किस चिड़िया का नाम है।

विचित्र बात यह थी कि मैं जिस नानी को अपना आदर्श मानती थी, वही मुझे यह समझाने का प्रयास करती रहती थीं कि महिला की पारंपरिक छवि ही सही है, ऐसी पारंपरिक महिला की छवि जो अपनी देखभाल करने में अनुपयुक्त है। उनकी बातों से प्रोत्साहित होकर सब के सब छोटे भाई मेरे जीवन पर नियंत्रण करने का प्रयास करने लगे और ऐसा सोचने लगे कि उन्हें मेरी पहरेदारी करने का अधिकार है। परंतु उनकी यह इच्छा अधूरी रह जाती, क्योंकि मेरे सौतेले भाई प्राय: उनसे भिड़ जाते थे। मेरे सौतेले भाई चाहते थे कि मैं अधिक स्वतंत्रता से जीवन व्यतीत करूं। क्योंकि मेरे सौतेले भाई सबसे बड़े थे, तो छोटे भाइयों की उन पर नहीं चलती थी और मुझ पर मनमानी करने की उनकी इच्छा पूरी नहीं हो पाती थी। उ मुझे उन छोटे भाइयों के आक्रामक व्यवहार और मनमानी से बचाने के लिए प्राय: सौतेले भाई आगे आ जाते थे।

मेरे पिता की मृत्यु और हाईस्कूल पास करने के मध्य जो अवधि बीती, उसमें मैं तुलनात्मक रूप से मुक्त हो चुकी थी। मुझे सिनेमाघर जाने, इजिप्ट (मिस्र) की मूवी देखने की अनुमति थी, तथा अधिकांश पुस्तकों,

पत्रिकाओं व समाचारपत्रों को पढ़ने की अनुमति थी। उन दिनों अरबी फिल्म उद्योग में इजिप्टियन फिल्मों का बोलबाला था। मुझे ऐसी अनेक घटनाएं स्मरण हैं कि किसी न किसी कारण से मैं अपने किसी छोटे भाई के साथ भागती हुई भीतर आई और तभी उस भाई ने मुझ पर थप्पड़ों की बौछार कर दी। उन बद्दूओं की भाँति मेरे पास भी चीखने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं होता था, क्योंकि अपने को उन थप्पड़ों से बचाने का एकमात्र उपाय चीखना था। वैसे भी मेरे छोटे से शरीर से कहीं अधिक शक्तिशाली मेरा ऊंचा स्वर था।

नानी तुरंत अपनी उंगलियां कानों में डालकर अपने को उस कोलाहल से बचाने का प्रयास करती हुई कहतीं, "हे अल्लाह, छीन ले इस निगोड़ी के स्वर को! ऐसा चीखती है कि सीधा माथा फूट जाता है। निर्लज्ज लड़की! भाई ने चांटा मार दिया तो कौन सा पहाड़ टूट पड़ा? वह तुझे ठीक ही तो कर रहा है। क्यों ऐसे गला फाड़ रही है, काबा ढह गया क्या?"

"काबा ढह गया क्या?" यह प्रश्न आज भी मेरे मन-मस्तिष्क में कौंधता रहता है। मैं भले ही नानी की पूजा करती थी, किंतु जैसे-जैसे समय बीत रहा था, मैं नानी के सम्मुख जाकर कहना चाहती थी, "शांत रहो, मूर्ख महिला! तुम नाना से मार खाने में सहज थी, पर मैं किसी को यह अधिकार नहीं दूंगी कि वह मुझ पर हाथ उठाए। काबा ध्वस्त होता है तो हो जाए, पर कोई मुझ पर शारीरिक प्रहार करे, मेरे लिए यह काबा के ध्वस्त होने से अधिक गंभीर विषय है!" किंतु मैं रुक जाती, क्योंकि एक तो मैं नानी का मन से आदर व सम्मान करती थी और दूसरे हमारी परंपराएं ऐसी थीं कि अपने से बड़ों की बातों की अवहेलना करना मना था।

मैंने हाईस्कूल परीक्षा प्रतिष्ठा (डिस्टिंक्शन) से उत्तीर्ण किया था, तो चिकित्सा की पढ़ाई के लिए मैं अर्ह (पात्र) हो गई थी। किंतु मेरे मन में चिकित्सक बनने की इच्छा कभी नहीं नहीं रही, मैंने कभी कल्पना तक नहीं की थी कि मैं चिकित्सक के व्यवसाय में जाऊंगी। मेरा सपना यह था कि अरबी साहित्य पढ़ूं और एक दिन उच्च स्तर की अरबी रचनाएं लिख सकूं।

वैसे मैं गणित, जीव विज्ञान, भौतिक विज्ञान एवं विज्ञान के अन्य विषयों में बहुत अच्छी थी। ऐसे में यदि चिकित्सा की पढ़ाई का विचार त्यागती, तो परिवार को बड़ी निराशा होती। मेरे सौतेले भाई मेरी उपलब्धियों पर आनंदित रहते थे, और उनकी इच्छा थी कि मैं चिकित्सक बनूं। क्योंकि मैं उनका बहुत आदर करती थी, इसलिए मैंने अपना मन मार लिया और बिना प्रतिरोध किए चिकित्सा की पढ़ाई करने चली गई।

मैं अलेप्पो विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने के लिए बानियास से अलेप्पो चली आई। अलेप्पो राजधानी दमाकस के पश्चात् सीरिया का दूसरा सबसे बड़ा नगर था। जहाँ बानियास भूमध्य सागर के तट पर स्थित एक छोटा सा नगर था, वहीं अलेप्पो कोलाहल भरा गतिशील नगर था। अलेप्पो में मैं स्वयं को समाज से कटा-कटा, अकेला अनुभव कर रही थी, क्योंकि जिस नगर में मेरा जन्म हुआ था, जहाँ मैं पली-बढ़ी थी वह इससे सर्वथा भिन्न था।

समुद्र के निकट होने से बानियास की पहुँच यूरोपीय पर्यटन तक थी और इस कारण यह नगर तुलनात्मक रूप से इस्लामी बेड़ियों से तनिक मुक्त था, किंतु अलेप्पो में स्थिति भिन्न थी और यहाँ का जनजीवन इस्लामी जकड़न में घुंट रहा था।

अलेप्पो में मैं एक स्थानीय मुस्लिम परिवार में अतिथि बनकर रह रही थी। कामकाज के संबंध में मेरे भाई की भेंट उस परिवार के मुखिया अहमद से हुई थी और वो दोनों मित्र बन गए थे। अहमद ने आग्रह किया कि पढ़ाई की अवधि में मैं उनके परिवार के साथ ही रहूँ, क्योंकि उसे लगता था कि अभी मेरी अवस्था अकेले रहने की नहीं हुई है। मेरे भाई ने अहमद के सुझाव को मान लिया। अहमद की युवा बीवी अपने जीवन के दूसरे दशक के मध्य में थी। वह मेरा ध्यान ऐसे रखती थी, मेरी देखभाल ऐसे करती थी कि मानो मैं स्वर्ग से आई कोई अप्सरा हूँ। वह ऐसा सोचती भी क्यों न, मुझसे पूर्व उसने ऐसी कोई मुस्लिम महिला नहीं देखी थी जो खुले बालों में रहती हो और जिसके परिवार ने घर से दूर किसी अपरिचित नगर में

रहने की अनुमति दी हो। उस दम्पत्ति के दो बच्चे भी थे, पर दोनों मियां-बीवी मेरा पूरा ध्यान रखते थे।

उनके साथ रहकर एक ऐसी जीवनशैली से मेरा साक्षात्कार हुआ जो मैंने पहले कभी नहीं देखा था। उनके घर में सब कुछ इस्लामी शिक्षाओं की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। मुझे आभास हुआ कि भले ही मेरी नानी नाना के अत्याचार व अमानवीय व्यवहार को सहते हुए इतनी भयानक स्थिति में थी, परंतु इस युवा महिला की अपेक्षा वो अत्यंत सौभाग्यशाली कही जाएँगी, क्योंकि जब मैं नानी के जीवन से इस महिला के जीवन और शौहर के साथ इसके संबंध की तुलना करती हूँ, तो ऐसा ही पाती हूँ। कहाँ वह अत्यंत रूपसी, भूरी आँखों वाली, गोरी-गुलाबी चमड़ी और लंबे सुनहरे केश वाली महिला, और कहाँ लटकती तोंद वाले नाटे कद का गंजा, दुबला-पतला व भद्दे रूप-रंग वाला उसका शौहर!

एक बार मैंने इस महिला से पूछा, "आपने उन्हें क्यों चुना?"

वह हँसने लगी और बोली, "क्या, मैंने चुना उन्हें? मैंने? तुम तो ऐसे पूछ रही कि मानो स्विट्जरलैंड से पकड़कर आई हो और यहाँ की रीति जानती ही नहीं?"

पर सच तो यही है कि वो मुझे दूसरे ग्रह से आई प्राणी ही समझती थीं। उनका नाम हुदा था। वो अभी 16 वर्ष की हुई थीं कि एक दिन एक महिला घर आई। वह महिला शादी के योग्य लड़की ढूंढ़ रही थी। ज्यों ही उस महिला ने हुदा को देखा, उनकी सुंदरता पर मुग्ध हो गई। उसने तुरंत हुदा की मां से अपने बेटे के लिए उसकी बेटी का हाथ मांग लिया। भावी दूल्हे के परिवार से मिलने के पश्चात् हुदा के पिता ने मन बना लिया कि वह इस धनी परिवार में ही अपनी बेटी देंगे, जबकि वह लड़का उनकी बेटी से आयु में 14 वर्ष बड़ा था।

शादी के दिन तक हुदा ने अपने होने वाले शौहर को नहीं देखा था। शादी के समय ही उसने पहली बार उसे देखा। जब वह उसके कक्ष में आया, तो हुदा का रोम-रोम भय से कांपने लगा। शादी में आए अतिथि

लोग कक्ष के किवाड़ के बाहर एकत्र होकर यह जानने के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे कि सुहागरात में दुल्हन के कुंवारी होने का प्रमाण मिला या नहीं। दूल्हा पशुओं की भाँति दुल्हन पर टूट पड़ा, और कुछ मिनट पश्चात् उसके रक्त के धब्बे वाला कपड़े का टुकड़ा हाथ में लिए हुए बाहर आया। परिवार की महिला सदस्य आनंदित होकर कोलाहल करने लगीं, नृत्य करने लगीं।

हुदा ने एक बार नहीं, अनेक बार मुझसे स्वीकार किया कि वह अपने शौहर से प्यार नहीं करती, और सच तो यह है कि वह उनसे भयाक्रांत रहती है, पर उसके पास और कोई विकल्प नहीं है। वह कभी भी अकेले घर से बाहर नहीं जा सकती है, उसका शौहर पहरेदारी करते हुए साथ ही जाता था। वो लोग एक परंपरागत घर में रहते थे, जहाँ सब लोग बंद किवाड़ों के पीछे रहते थे। जब तक मैं उनके साथ रही, उनके पूरे मुहल्ले में एक भी घर में कोई वातायन (खिड़की) नहीं देखा।

हुदा का शौहर उससे छोटी-छोटी बात पर या कहें कि अकारण ही कलह करने लगता। जब वह क्रोधित होता था, तो हुदा को अच्छे से ध्यान रहता था कि उसे एक शब्द नहीं बोलना है, क्योंकि यदि उसने कुछ अच्छा भी कहा तो उस बात को भी उसके विरुद्ध ही प्रयोग किया जाएगा। प्राय: ऐसा होता कि मैं अपने कक्ष से बाहर निकल आती और हुदा का पक्ष लेकर उसके शौहर से तर्क-वितर्क करती। जब हम दोनों तर्क-वितर्क कर रहे होते तो वह अपने दुर्व्यवहार को सही ठहराता और बीवी के साथ दुर्व्यवहार करने के अपने अधिकार को सिद्ध करने के लिए कुरआन की आयतों और रसूल मुहम्मद की सुन्नत (हदीसें) सुनाने लगता। परंतु मैं अपने तर्कों से उसे विवश कर देती कि वह मेरा सम्मान करे, वैसे भी वह मेरी तीखी बोली से भयभीत रहता था। उसके तर्क भी इतने खोखले होते थे कि वह टिक नहीं पाता था और जब मुझसे तर्क-वितर्क करता, तो जिस प्रकार मैं अपने तर्कों से दूसरों का कचूमर बना देती थी, उसे भी नहीं छोड़ती थी, और तब वह भीगी बिल्ली बनकर व्यंग्यात्मक स्वर में यह कहकर बात संभालने लगता

कि "छोड़ो जाने दो...। तुम इस्लाम की शिक्षाओं को नहीं मानती हो न, जहन्नुम में जाओगी।"

उसकी दो संतानों में से बड़ा पांच वर्ष का था और छोटा मात्र एक वर्ष का था, किंतु वह अपनी संतानों से ही बीवी की गुप्तचरी करवाता था। बड़ा बेटा अच्छे से समझता था कि उसके अब्बा और अम्मी के संबंध कैसे हैं और वह उन दोनों को मूर्ख बनाता था। मैं अपने कक्ष में होती और प्राय: मुझे बुलाते हुए उसकी अम्मी का स्वर सुनाई देता, "वफा, तुम्हारी सहायता चाहिए, यहाँ आओ और मेरी गवाह (साक्षी) बनो" और तभी उसका बड़ा बेटा धमकी भरे स्वर में कहता सुनाई देता कि मैं जो कह रहा हूँ वह कर दो अम्मी, नहीं तो अब्बा से कहूँगा कि तुम फोन पर किसी पराए पुरुष से बात कर रही थी, किसी पराए पुरुष को भीतर लाने के लिए किवाड़ खोली थी, तुम घर से बाहर गई थी।

मैं उनके साथ पूरे एक वर्ष रही। दूसरा वर्ष आते-आते मेरे लिए असहनीय हो गया कि उनकी पारिवारिक कलह, अशांति अब और देख पाऊं और मैं विश्वविद्यालय छात्रावास में रहने चली गई। चिकित्सा पाठ्यक्रम पूरा करने तक मैं वहीं रही। मुझे हुदा की स्थिति देखकर अत्यंत दुख होता था, इसलिए उससे और उस परिवार के संपर्क में बनी रही। सप्ताह में दो बार मैं उनके घर भी जाती थी। उन दिनों मैं मानवता के विरुद्ध अपराध- महिलाओं व पुरुषों दोनों के विरुद्ध अपराध- का प्रत्यक्ष अनुभव करने लगी थी, क्योंकि अहमद व हुदा के घर में जो अपराध हो रहा था, वह मानवता के विरुद्ध अपराध ही था और उस घर की दशा देखकर समझा सकता था कि अलेप्पो में लोग कैसे रहते थे। वहाँ इस्लाम की शिक्षाओं ने महिला व पुरुष दोनों का जीवन नष्ट कर दिया था और उन्हें ऐसी दशा में ला दिया था कि उनमें मानवीय व्यवहार का अंश तिनके के बराबर भी नहीं बचा था।

अहमद अपनी बीवी के साथ जिस प्रकार का क्रूर व हिंसक व्यवहार करता था, वह वैसा ही था जैसा कि मेरे नाना मेरी नानी के साथ

करते थे। मुझे अहमद से घृणा हो गई थी। मैं सही और गलत को लेकर प्रश्न करने लगी। मैंने बानियास में रहते हुए जो संसार देखा था, उसकी चमक घटने लगी थी, क्योंकि इस्लाम व इसकी शिक्षाओं को लेकर मेरा संदेह और गहरा होता जा रहा था। मैंने अलेप्पो में अहमद के घर में जो समय बिताया और वहाँ अहमद के परिवार के साथ जो मेरा अनुभव रहा, उससे मेरे जीवन में एक नया मोड़ आया, और आज इस्लाम को लेकर मेरी धारणा व सोच जो भी है, उसका अधिकांश भाग इसी से निर्मित हुआ।

*-काबा: मक्का स्थित मुस्लिम धर्मस्थान जिसकी ओर मुख करके विश्व के मुसलमान नमाज पढ़ते हैं।

अध्याय 3

इस्लाम के पुरुषों के लिए आशा की किरण

सन् 1977 की गर्मियों में मैं अहमद के माध्यम से एक स्त्री रोग विशेषज्ञ चिकित्सक से मिली। जब उन चिकित्सक को ज्ञात हुआ कि मैं चिकित्सा के चौथे वर्ष की छात्रा हूँ, तो उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं उनके साथ कार्य करना चाहूँगी। उपनगरीय क्षेत्र के एक भीड़ भरे टोले (मुहल्ले) में उनका क्लीनिक था। वो चाहते थे कि मैं क्लीनिक में दिन के कुछ घंटे दिया करूं। मुझे उनका प्रस्ताव अच्छा लगा, अत: तुरंत ही स्वीकार लिया। उनकी क्लीनिक में मेरा उन बातों से सीधा-सीधा पाला पड़ने लगा, जो अहमद और उसके पड़ोसियों के वातायन व किवाड़ों के पीछे छिपी थीं। इस क्लीनिक में मेरा काम केवल महिलाओं के गर्भ का निर्धारण करना और किशोरियों व नवयुवतियों के कौमार्य का परीक्षण करना था। वहाँ आने वाली अधिकांश युवतियां अविवाहित होती थीं और उन्हें उनकी अम्मियां या नानियां यह जानने के लिए लाती थीं कि कहीं उनकी बेटी या नतिनी ने किसी के साथ यौन-संबंध बनाकर अपना कौमार्य नष्ट तो नहीं कर दिया है, और कुछ यह पता लगाने भी आती थीं कि कहीं उनको गर्भ तो नहीं ठहर गया है। ऐसी लड़कियों का गर्भपात करके उनकी कौमार्य झिल्ली को सिलकर पुन: कुंवारी बनाने का कार्य उन पुरुष चिकित्सक का था।

क्लीनिक में आने वाली ऐसी बालिकाएं, और उनके साथ के लोग, अपने को सिर के पांव तक इस प्रकार ढंके होते थे कि केवल उनकी हथेलियां भर दिखती थीं। कोई व्यक्ति यह जोखिम नहीं लेना चाहता था कि कोई उसे पहचान ले। वो महिलाएं और उनकी बेटी या नतिनी जिस परीक्षण कक्ष में होती थी, वहाँ चिकित्सक से वार्तालाप में वो सब लगभग

एक समान बहाना कर रही होतीं: "डॉक्टर जी, बचपन में मेरी बच्ची गिर गई थी, जिससे उसे ऐसी चोट लग गई थी कि रक्तस्राव बहुत हुआ था। हम यहाँ इसलिए आए हैं, क्योंकि उसकी शादी होने वाली है, आप कुछ कीजिए जिससे कि उसका कुंवारापन लौट आए।"

परीक्षण के पश्चात्, जब चिकित्सक बताता कि उनकी लड़की ने कौमार्य ही नहीं खोया है, अपितु वह गर्भवती भी है, तो वो मां-बेटी रोने लगतीं और चिकित्सक से इस समस्या के समाधान की भीख मांगतीं।

उन युवा लड़कियों से जब चिकित्सक पूछताछ करता, तो अधिकांश प्रकरणों में, वो किशोरवय लड़कियां बता देती थीं कि बचपन से ही अब्बा, भाई, चचा या घर का कोई अन्य मर्द सदस्य उनका यौनशोषण करता आ रहा है। अनेक बार तो वो लड़कियां जीवन का पहला मासिक धर्म (माहवारी) आने के कुछ ही समय में गर्भवती हो जाती थीं। आप सोच रहे होंगे कि ऐसी दुखद स्थिति में उन नवयुवतियों के साथ चिकित्सक का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण व ध्यान रखने वाला होता होगा। किंतु ऐसा नहीं है, क्योंकि उस रुग्ण समाज में औरत व मर्द के मध्य सताने वाला और शोषण करने वाला संबंध ही हो सकता है, यहाँ तक कि मर्द चिकित्सक हो और औरत उपचार के लिए आई हुई रोगी हो तो भी उनके मध्य सामान्य व मानवीय संबंध नहीं हो सकता है, वह मर्द चिकित्सक भी अपने रोगी का शोषक ही होता है। वो चिकित्सक इस स्थिति की गंभीरता का पूरा लाभ उठाते और मोटा धन मांगते। अगले दिन वो मां-बेटी उतना धन लेकर आतीं और हो सकता है कि उन्होंने अपने कुछ आभूषण बेचकर वह धन जुटाया होगा।

मैं उन औरतों पर मर्द संबंधियों द्वारा किए जा रहे अत्याचार व शोषण को सुनकर जितना व्यथित होती, उतना ही दुख व क्षोभ मुझे ये सब अनैतिक नाटक और उस चिकित्सक के व्यवहार को देखकर भी होता।

उन चिकित्सक के क्लीनिक के बाहर भी स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी। मुझे स्वयं महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ।

मेरा विश्वविद्यालय नगर के बाहर स्थित था। किसी महिला विद्यार्थी के लिए विश्वविद्यालय परिसर से मुख्य नगर तक जाना किसी समस्या से कम नहीं था, परंतु सप्ताह में दो बार खाद्य पदार्थ व अन्य आवश्यक वस्तुएं क्रय करने वहाँ जाना ही पड़ता था।

वहाँ जाने में बस से पूरा घंटा भर लगता था, और यह एक घंटा काटना भयानक होता था। बस अनेक टोलों (मुहल्लों) से होते हुए जाती थी। विश्वविद्यालय परिसर से निकलने के 10 मिनट के भीतर ही बस ऐसी ठसाठस भर जाती थी कि लगता था मछली हाट हो। बस में महिलाओं की संख्या चौथाई भी नहीं होती थी, और उन महिलाओं में से अधिकांश छात्राएं ही होती थीं। बस में उन छात्राओं के हाव-भाव व गतिविधियां ऐसी होती थीं कि मानो वो चुहिया हों और अपने को भूखी बिल्ली से बचाने का प्रयास कर रही हों। जैसे ही किसी पुरुष यात्री को किसी महिला यात्री से सटने का अवसर मिलता, वह अपने गुप्तांग को उसके पीछे ऐसे गड़ाता कि मानो कोई लोहे की छड़ कोंच रहा हो। महिला चीख पड़ती, परंतु दुख इस बात का था कि उसकी चीख अनसुनी कर दी जाती, क्योंकि उस नगर के निवासी छात्राओं को वेश्या, अपनी इच्छा से शोषण के लिए उपलब्ध करवाने वाली एवं मूर्ख समझते थे।

बस से बाहर आकर खुले मार्ग पर आ जाने के पश्चात् भी, कठिनाइयां कम होने का नाम नहीं लेती थीं। हम पर हेय दृष्टि कम न होती। यदि आप महिला हैं, तो सप्ताह के किसी भी दिन सार्वजनिक स्थान पर होना कष्टकारी व दुखी करने वाला होता था। किंतु यदि वह दिन शुक्रवार हो, तो समझिए कि सबसे कठिन दिन होगा। इसीलिए, हम लोग शुक्रवार को सार्वजनिक स्थानों पर जाने से बचते थे। बसें और मार्ग दोनों मस्जिद जाने वाले आदमियों से भरी रहती थीं। उनमें से किसी को भी किसी अनजान युवती से सटने का क्षणिक अवसर भी मिल जाता, तो वह उतने में ही उत्तेजना में अपनी पैंट में ही वीर्य स्खलन कर देता, यह सोचकर

कि इससे वह संतुष्ट हो जाएगा और मस्जिद में अपने अल्लाह के सम्मुख शांत भाव से नमाज पढ़ सकेगा।

शुक्रवार को मैं सामान्यत: दिन का भोजन अहमद और हुदा के परिवार के साथ करती थी और दिनभर उनके साथ घर में ही रहती थी। स्थानीय निवासियों की पिछड़ी मानसिकता पर प्राय: मेरा उनसे तर्क-वितर्क होने लगता था। हुदा सामान्यत: शांत ही रहती थी, जबकि अहमद अपनी मान्यताओं को सही ठहराने के लिए एक-एक करके कुरआन की आयतें सुनाता, बीच-बीच में वह यह भी सुनाता रहता कि घर से दूर रहने वाली मेरे जैसी महिलाओं के लिए क्या नैतिक है और क्या अनैतिक है। यद्यपि मैं अपनी बातों से पीछे नहीं हटती, और तभी से मैंने यह गुण सीखा कि कैसे अपने को दृढ़ता से सिद्ध करें। तभी मैंने यह भी जाना कि मेरे समाज के पुरुष कितने ढीठ व निर्लज्ज हैं और कितनी सरलता से उन्हें परास्त किया जा सकता है।

मैंने उस नगर में अहमद व उसके परिवार के साथ अनेक शादी समारोहों में भाग लिया था। किंतु उन समारोहों में आनंद तो क्या ही मिलता, हां उस सड़े-गले समाज को और गहराई से समझने का अवसर अवश्य मिलता। शादी समारोहों में लोग दो समूहों में बंट जाते थे, एक हाल में औरतें होतीं तो दूसरे में मर्द होते। दोनों समूह अपने-अपने ढंग से समारोह का आनंद लेते। औरतें इन शादियों में चमक-दमक वाले वस्त्र व भड़कीले आभूषण पहन कर एवं ऐसे श्रृंगार करके आती थीं कि वो दूसरी औरतों के आकर्षण का केंद्र बन सकें। उनके वस्त्र भर ही चौंकाने वाले नहीं होते थे, अपितु वह भुक्खड़ों के समान व्यवहार करती थीं। मैंने अपने जीवन में ऐसा कुछ नहीं देखा था। व्यंजन देखते ही वो ऐसे टूट पड़ती थीं कि एक-दूसरे पर चढ़ जाती थीं, एक-दूसरे को असभ्य ढंग से ऐसे स्पर्श करती थीं कि नितम्बों और छातियों में चिकोटी काट लेती थीं, जांघों में हाथ डाल देती थीं। इस व्यवहार से कोई भी अचंभित नहीं होता था और न ही कोई उस असभ्य व्यवहार का विरोध करता था। समारोह के अंत में घोषणा

होती कि दूल्हा अपनी दुल्हन को लाने के लिए औरतों के कक्ष में जा रहा है। यह सुनते ही औरतें मिनटों में तत्परता से अपने आवरणों में लिपट कर ऐसे हो जाती थीं कि मानो मनुष्य न होकर कोई वस्तु हो, सिर से पांव तक ढंकी हुई वो ऐसे दिखने लगती थीं, जैसे कि राजमार्ग पर रखे गए कचरे के डब्बे; वो ऐसी ढंकी-छिपी वस्तु के समान दिखने लगती थीं कि बगल में खड़ा व्यक्ति भी न पहचान सके। क्षण भर में, वे एक सुंदरी से ऐसे कुरूप मनुष्य में परिवर्तित हो जाती थीं कि उन्हें मानव कचरा ही कहा जा सकता है, कचरा बन गए ऐसे मनुष्य जिनके रुग्ण समाज ने यह सिखाया है कि उन्हें अपना अंग-प्रत्यंग पूरा का पूरा ढंककर रखना चाहिए, क्योंकि खुले अंग से मर्द संयम खो देते हैं।

मैं एक बार दमाकस गई, तो मुझे इस्लाम के पुरुषों के लिए कुछ आशा दिखी। जब मैं द्वितीय वर्ष में थी, तो ईसाई त्यौहार गुड फ्राइडे के दिन मेरी कक्ष में साथ रहने वाली सीहम ने मुझसे दमाकस भ्रमण पर चलने को कहा। उस भ्रमण यात्रा में हमारे साथ कृषि संघ की छात्राओं का एक समूह भी जा रहा था। मेरी एक सौतेली बहन की शादी सीरिया की सेना के एक उच्च अधिकारी के साथ हुई थी और वो दमाकस में रहती थीं, तो मैंने उन्हीं के यहाँ ठहरने का निर्णय किया। हम वहाँ रात्रि में पहुंचे। हम दोनों सुरक्षित अपनी बहन के यहाँ पहुँच जाएँ, यह सोचकर यात्रा के आयोजक ने एक युवक को हमारे साथ भेजा। मेरी बहन, जीजा और उनके बालक-बालिका भोजन पर मेरी और सीहम की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब मैं उनके घर पहुंची, तो जीजा ने किवाड़ खोलते हुए हमारा स्वागत किया। जीजा ने हमारे साथ आए युवक को भीतर बुलाया और साथ भोजन करने का आग्रह किया।

वह युवक मेरे जीजा के साथ बात करने में व्यस्त हो गया, और दोनों राजनीति पर बात करने लगे। जब वह चला गया, तो जीजा मेरी ओर मुड़े और बोले, "वह युवक सुशिक्षित जान पड़ता है। राजनीति के विषय में उसे अच्छा ज्ञान है। इतनी कम आयु में राजनीति की ऐसी समझ कम ही

लोगों में दिखती है।" मैंने न तो जीजा जी की इस बात पर, और न ही उस युवक पर ध्यान दिया।

दमाकस एक सुंदर व प्राचीन नगर है और इस नगर की नैसर्गिकता देखकर मैं सदा सम्मोहित हो जाती थी। बस में जाते समय मैं इसके सम्मोहन में ऐसा खो गई थी कि बस के काँच से बाहर दोनों ओर देखे जा रही थी, और मुझे यह तक ध्यान न रहा कि आसपास छात्राएं आपस में बतियाने में व्यस्त हैं। वह अपरिचित युवक जिसने मेरी बहन के घर पर हमारे साथ भोजन किया था, मेरे आसपास ही मंडरा रहा था। मुस्लिम पुरुषों के विषय मैं जितना जानती थी, उसको देखते हुए मुझे उससे दूरी बनाकर चलना चाहिए थी, पर मार्ग में चलते समय मैं हम दोनों के बीच पर्याप्त दूरी नहीं रख सकी।

सप्ताहांत समाप्त होने के पश्चात्, हम अलेप्पो वापस लौट आए, और सीहम अपने परिजनों से मिलने घर चली गई। मैं छात्रावास कक्ष में अकेले बैठी थी कि तभी द्वार की घंटी बजी। मैं नीचे द्वार पर गई तो देखा वहाँ वही युवक खड़ा था, जो दमाकस में मेरे पीछे-पीछे लगा था। मैं चौंक गई, "कहीं वह चोरी-चोरी मेरा पीछा तो नहीं कर रहा है?" मैंने उसका अभिवादन किया। वह हमारे उन चित्रों को मुझे देने के लिए आगे बढ़ा, जो उसने दमाकस में खींचे थे। मैं मन ही मन भयभीत हो रही थी, समझ नहीं पा रही थी कि वह चाहता क्या है, और मैं अटकती जिह्वा से बोली, "सीहम यहाँ नहीं है, पर जैसे ही वह आएगी उसे ये चित्र दे दूंगी।" उसने उत्तर दिया, "मैं सीहम से नहीं, आपसे मिलने आया हूँ, और ये चित्र आपके लिए उपहार स्वरूप लाया हूँ। कुछ चित्रों में मैं और आप दोनों हैं।"

अकस्मात् प्रतीत हुआ कि मुझे कुछ विचित्र अनुभव हो रहा है, मुझे समझ ही नहीं आया कि हो क्या रहा है। वह अभी बोल ही रहा था कि मुझे ऐसा लगा कि मानो मेरे शरीर में विद्युत प्रवाहित हो गया हो। एक मुस्लिम महिला होते हुए यह मेरे जीवन की पहली घटना थी कि मैंने अकेले

किसी युवक के बात की। मैं व्यग्र व उद्विग्न हो गई थी। मैंने उससे कहा कि चलिए आपको छात्र-कैफेटेरिया में चाय पिलाएं, आइए मेरे साथ।

जीवन भर मैं वह भेंट नहीं भूल सकती। उसका नाम मुराद था और वह मेरा पति व मेरी संतानों की पिता बनने वाले थे। हम इस्लामी परंपराओं की बेड़ियां तोड़कर मिले, क्योंकि यह परंपरा किसी युवती को किसी अपरिचित युवक के साथ सार्वजनिक स्थान पर बैठने की अनुमति नहीं देती थी। उस समय कुछ क्षण तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं ही परंपराएं तोड़ रही हूँ, वह युवक नियम तोड़ने का उतना उत्तरदायी नहीं है जितनी कि मैं हूँ और मुझे लगा कि मैं पाप कर रही हूँ। परंतु वह भेंट और चाय के साथ उसके साथ बातें करना, उन चित्रों को देखना निराला था, और इसके पश्चात् हम दोनों साथ में अधिक से अधिक समय व्यतीत करने लगे। हम लोग सदैव सार्वजनिक स्थान पर मिलते थे, जैसे कि हम दोनों विश्वविद्यालय कैफेटेरिया में साथ समय व्यतीत करते, उस बस में साथ-साथ यात्रा करने निकल पड़ते, जो हमें विश्वविद्यालय से मुख्य नगर तक लाता और वापस ले जाता था। अलेप्पो में मुराद के साथ संबंध ने मेरा जीवन रूपांतरित कर दिया। इस प्रेम ने मेरे जीवन पर ऐसी छाप छोड़ी कि अहमद, हुदा व उसके परिवार से इसे छिपाना कठिन लगने लगा, और यहीं से हमारे प्रेम पर पहरा लगने लगा। मुराद के साथ मेरे प्रेम संबंध का पता लगने के पश्चात्, अहमद व उसका परिवार मेरे जीवन के प्रत्येक विषय में हस्तक्षेप करने लगा। उन्होंने मुझे धमकी भी दी कि मेरे भाई व परिवार को सब बता देंगे, और मैंने भी अपने स्वभाव के अनुसार उनको कह दिया कि जो चाहें करें, पर मैं उससे संबंध नहीं तोड़ूंगी।

यद्यपि, मुराद अलेप्पो के निवासी थे, और जीवन भर वहीं रहे थे, पर वो ऐसे व्यक्ति थे कि उस भीड़ भरे नगर में भी उनका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व था। सीरिया पर फ्रांस के अधिकार के समय उनके पिता फ्रांसीसी सेना में सैनिक थे। 1947 में जब फ्रांस की सेना ने सीरिया छोड़ा तो नव स्थापित सीरियाई राष्ट्रीय सेना में फ्रेंच-प्रशिक्षित सैनिकों को ले लिया गया,

पर उनके पिता सहित ऐसे अन्य सैनिकों को हटा दिया गया जिनकी आयु अधिक थी। जब 1953 में मुराद का जन्म हुआ, तो उस समय उनके पिता की आयु 40 वर्ष के ऊपर थी। दो बेटियों के पश्चात्, बेटे का जन्म होने पर उनके पिता अत्यंत प्रसन्न थे। जार्ज नामक एक व्यक्ति उनके पिता के मित्र थे और उसके घर के कुछ दूर ही रहते थे। जार्ज ईसाई थे। उन्होंने अपना व्यापार आरंभ किया और मेरे पति के पिता को अपने यहाँ सेल्समैन का काम दे दिया। दोनों व्यक्तियों के बीच पारस्परिक विश्वास व आदर से बना मित्रता का संबंध दिनोंदिन प्रगाढ़ होता गया। इसी बीच, मुराद के पिता को जाने क्यों लगने लगा कि उनके जीवन का अंत निकट है, तब उन्होंने अपने मित्र जार्ज से अनुरोध किया कि उनका एक ही पुत्र है और यदि उन्हें कुछ हो जाए तो उसका ध्यान रखें। मुराद आज तक नहीं समझ पाए कि उनके पिता को अपनी मृत्यु का आभास कैसे और क्यों हुआ था।

मेरे पति के पिता के मन की आशंका सच सिद्ध हुई। 1956 में जब वो मात्र तीन वर्ष के थे, तो उनके पिता हृदयाघात से संसार छोड़कर चल दिए। पिता की मृत्यु के कुछ मास पूर्व ही, 13 वर्ष की अवस्था में उनकी बड़ी बहन का विवाह हुआ था, जबकि छोटी बहन का विवाह पिता के जाने के एक वर्ष पश्चात् हुआ। विवाह के समय छोटी बहन की आयु मात्र ग्यारह वर्ष थी। इस प्रकार, मात्र तीन वर्ष की अवस्था में मेरे पति अपनी मां के साथ अकेले रह गए थे।

जैसा कि मेरे पति बताते थे कि उनकी अम्मी विचित्र स्वभाव और असंतुलित व्यक्तित्व वाली महिला थीं और उनकी बोली भी उतनी ही बुरी थी। वो जार्ज अंकल से लड़ती रहती थीं और उन पर कपटी व लालची होने का आरोप मढ़ती थीं। मुराद की अम्मी के साथ निभा पाना कठिन होते हुए भी जार्ज ने उनके पिता को जो वचन दिया था, उसे निभाते रहे, और एक अभिभावक की भाँति उन सबकी देखभाल करते रहे। वो सप्ताह में, कम से कम दो बार, उनके घर आते, उनके लिए कुछ न कुछ उपहार लेकर आते। वो सूट, टाई और छोटा ऊनी कैप लगाकर जब आते, तो मेरे पति के टोले

के पुरुषों में वो दूर से ही ईसाई दिखाई पड़ते। उस टोले में लगभग सभी व्यक्ति मुस्लिम थे। जार्ज को देखकर मुराद प्रसन्न हो जाते, और एक निष्कपट बालक की भाँति स्वागत में उनकी ओर दौड़ पड़ते, यद्यपि ऐसा करते देखकर टोले के लोग उन्हें लज्जित भी करते। वहाँ के सभी बच्चे मुस्लिम थे और उनमें तनिक भी दया भाव नहीं था, वो मुस्लिम बच्चे अपने घरों में गैर-मुस्लिमों को लेकर जो उल्टी-सीधी बातें सुनते थे, वही सब मुराद के आगे दोहराते थे। तब, मुराद छोटे से बालक थे, और वो अपने सम आयु बालकों के तानों को सहन नहीं कर पाते थे: "कौन है वह ईसाई?", "तुम उसे अपने घर के भीतर क्यों आने देते हो?", "क्या तुम्हें तनिक भी भय नहीं लगता कि वह तुम्हें भी ईसाई बना देगा?"

एक ओर जार्ज के प्रति लगाव था, तो दूसरी ओर मुस्लिम समुदाय द्वारा ईसाइयों के प्रति घृणा का प्रदर्शन था। इन सब से मुराद के बाल मन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, और उनकी अम्मी बेटे को इस मानसिक आघात से उबारती तो नहीं थीं, किंतु अपने कटु व्यवहार से उसके अबोध मन को और आहत अवश्य कर देतीं। वो अपनी संतान के साथ जो व्यवहार करती थीं, वह कोई क्रूर व्यक्ति ही कर सकता है। वो युवावस्था में ही विधवा हो गई थीं और उनकी क्षमताएं भी अत्यंत सीमित थीं। ऐसी युवा विधवा एक ऐसे समाज में रहती थी, जो महिलाओं को आखेट समझकर वस्तु की भाँति उनका उपयोग करता है। ऐसे क्रूर व निष्ठुर समाज में रहकर, उस विधवा के भीतर से लज्जा, शिष्टता, संवेदना सब मर गई थी। जब मुराद के पिता की मृत्यु हुई, तो उनका परिवार फ्रेंच सेना द्वारा छोड़े गए धातु-काष्ठ के एक छोटे से आवास में रहता था। जहाँ यह आवास था, वह मुख्य नगर से दूर था। फ्रांस की सेना के चले जाने के पश्चात् जब सीरियाई राष्ट्रीय सेना ने बैरकों को अपने नियंत्रण में लिया, तो इन बैरकों में रहने वाले यहाँ से चले गए, और निर्जन पड़े-पड़े ये बैरक खंडहरों में परिवर्तित हो गए, परंतु किसी आवासीय क्षेत्र से दो मील दूर स्थित इस निर्जन सैन्य क्षेत्र में धातु-काष्ठ के उनके छोटे आवास पूर्ववत् खड़े थे। मुराद के पिता की मृत्यु के पश्चात्,

उनकी अम्मी को तम्बाकू कारखाने में काम करने के लिए बाहर जाना पड़ा, वो प्रात: ही निकल जाती थीं और साँझ ढलने के पश्चात् आती थीं। किंतु जब वो लौटतीं, तो पुत्र को दुलारने को कौन कहे, उनके कटु वचन के बाण उस पुत्र को बेधने लगते, उसे बुरा-भला कहतीं, कोई काम न हुआ होता तो उसे चांटा मार देतीं। वो देख ही नहीं पाती थीं कि उनके पुत्र की मानसिक स्थिति पहले से ही कितनी दयनीय है, वो तो उसे केवल बलि का बकरा समझती थीं कि जब मन में आए, उसके गले पर छुरी रख दें।

अन्य नगरों में उच्च-कुलीन दिखने की होड़ में धनी व्यक्ति कोलाहल से दूर शांत वातावरण में आवास ढूंढ़ते हैं, इसी प्रकार अलेप्पो में भी समृद्ध परिवारों में यही होड़ था। उन धनिकों के भवनों के निकट स्थित विद्यालय धनी परिवारों के बालकों से भरा होता था, और मुराद का उस विद्यालय में पढ़ना उन बालकों को खटकता था। कक्षा में होने वाले भेदभाव से वो टूटते जा रहे थे। उन्हें अपनी मां की बात रह-रहकर स्मरण हो उठती थी, कि उन धनिकों के भवन हमारी ओर तब तक बढ़ते रहेंगे, जब तक कि हमारी स्थिति ऐसी न हो जाए कि हम बिना छत के सड़क पर आ जाएँ। यह बात मुराद के मन में ऐसी बैठ गई थी कि जब कभी वो किसी निराश्रय व्यक्ति को देखते, तो भय से अपना मुख छिपा लेते कि कहीं उन्हें भी यही दिन न देखना पड़े।

जिस दिन उनकी अम्मी का अवकाश होता, वो उनके साथ स्थानीय हाट करने जाते, परंतु वहाँ जब देखते कि विक्रेता उनकी अम्मी के साथ कितना बुरा व्यवहार कर रहे हैं, तो इतने दुखी होते कि अपने साथ अम्मी की क्रूरता भूल जाते। वे सब उनकी अम्मी की अकुशलता और इस बात का लाभ उठाते कि वह पुरुषों द्वारा नियंत्रित वातावरण में रहने को विवश एक अबला नारी थी। वे उनसे अधिक मूल्य मांगते, और जब वो कम कराने का प्रयास करतीं तो वे ठगी का आरोप लगाते, अपशब्द कहते, और उनके लिए ऐसी भाषा का प्रयोग करते जो मुराद को सहन नहीं होता। ऐसा लगता था कि मानो वे चीख रहे हों: "चली जाओ यहाँ से और घर में

मुंह छिपाकर बैठो, निर्लज्ज कहीं की! तुम्हारे शौहर कहाँ हैं? वो तुम्हें इस प्रकार पुरुषों के बीच में घूमने के लिए छोड़ कैसे देते हैं?" मुराद को अत्यल्प आयु में समझ में आ गया था कि वह कैसे संसार में रहते हैं, और सच तो यह है कि वो कभी उस संसार का अंग नहीं बन सके। उन्हें अपनी अम्मी से सहानुभूति रहती थी, उस अम्मी से जो एक ऐसी क्रूर महिला थी जिसने अपने ही मन को मैला कर लिया था। परंतु, वो स्पष्ट रूप से यही मानते थे कि उनकी अम्मी मुस्लिम समाज से पीड़ित हैं।

जब वो माध्यमिक (हाई स्कूल) में थे, तो बाथ पार्टी माध्यमिक के छात्रों को अपने दल का सदस्य बनाने का अभियान चला रही थी। उन्होंने भी बाथ पार्टी की सदस्यता ले ली। निर्धन परिवारों के बालक इस दल की सदस्यता के लिए अधिक लालायित रहते थे। मुराद इस दल के प्रति इसलिए आकर्षित थे, क्योंकि यह एक धर्मनिरपेक्ष संगठन था- दिखावे के लिए ही रहा हो, पर यह दल धर्मनिरपेक्ष प्रतीत तो होता था- और यह दल मजहब को महत्व नहीं देता था। इस दल के नारे एक अच्छे जीवन और समान अवसर की आशा देते थे। किशोरावस्था में ही वो उस समूह के साथ राजनीतिक सक्रियता से जुड़ गए और दल के अन्य सदस्यों के साथ कार्य करते हुए स्वयं को ढूंढ़ने लगे। विद्यालय के पश्चात्, वो सीधे दल के सदस्यों के साथ बैठक में चले जाते थे। अब उन्हें समझ में आया कि इतने लंबे समय तक अपनी अम्मी के साथ रहकर क्या खोया। अब उनके पास जीने का एक लक्ष्य था। उस दल के नारों व कार्यों से उनके मन में यहूदी विरोधी भाव भर गया। विकृत मुस्लिम संस्कृति ने उनके मन-मस्तिष्क को ऐसा जकड़ा था कि वो यहूदियों की हत्या करना और उन्हें समुद्र में फेंक देना ही जीवन का लक्ष्य मानने लगे।

वो कहने को तो अभी भी अपनी अम्मी के साथ ही रहते थे, परंतु वास्तव में वो एक भिन्न प्रकार के निजी संसार में रहते थे, एक ऐसे संसार में जीते थे, जहाँ वो स्वप्न देखते थे कि शीघ्र ही उन्हें कोई नौकरी मिल जाए जिससे कि वो अपने पांव पर खड़े हो सकें, और इससे मुक्ति मिल जाए कि

ब्रेड और अंडा तक के लिए उन्हें साँझ तक अपनी अम्मी के घर लौटकर आने की प्रतीक्षा करनी पड़े। वो उस विद्यालय से उत्तीर्ण होकर कृषि अभियंत्रण के अध्ययन हेतु विश्वविद्यालय पहुंचे। इसी बीच, उन्हें प्राथमिक विद्यालय में सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति मिल गई, किंतु यह जानकर उनकी प्रसन्नता पर काली घटा छा गई कि उन्हें दिन का, न्यूनतम, एक घंटा मुस्लिम धर्म पढ़ाने के लिए देना होगा।

जब उनकी कक्षा चल रही होती और मुस्लिम शिक्षा का समय आता, तो उन्हें ईसाई विद्यार्थियों को कक्षा से बाहर जाने को कहना पड़ता, तब उन्हें ऐसा लगता कि मानो वो मानवता पर प्रहार कर रहे हों। अनेक अभिभावकों ने विद्यालय प्रशासन से परिवाद किया कि मुराद को मजहबी शिक्षा का अध्यापन करना ढंग से नहीं आता, परंतु वो उनकी बातों को अनसुना कर देते, क्योंकि उन्हें पता था कि बाथ पार्टी की सदस्यता के कारण वो सुदृढ़ स्थिति में हैं, और इन परिवादों से उनको धेला भर भी क्षति नहीं हो सकती है। उन दिनों बाथ पार्टी में इस्लाम महत्वहीन हो चला था। 1960 के दशक के लेकर 1970 के दशक के मध्य तक सीरिया ऐसी अवस्था में रहा कि इस्लाम का प्रभाव लगभग समाप्त ही हो चला था, विशेष रूप से विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों और विश्वविद्यालयी छात्र-छात्राओं का इस्लाम से मोहभंग हो चुका था। 1970 के दशक के मध्य में सऊदी चौकड़ी ने धीरे-धीरे सीरिया के जन-जीवन को अपनी जकड़न में लेना आरंभ किया था, और उसके दंश आज भी प्रभावित कर रहे हैं।

मुराद का जीवन कष्टमय रहा था, और मुझे उनके मन की पीड़ा को शांत करने का यही उपाय दिखता था कि जब वो अपनी दुखदायी स्मृतियां बताने लगें, तो मैं ध्यान से उनकी बातों को सुनती रहूँ। एक बार उन्होंने कहा, "सुनो वफा! एक औरत-मेरी अम्मी- ने मुझे नष्ट किया, और अब मैं दूसरी महिला-पत्नी- ढूंढ़ रहा हूँ जो मुझे सहेजकर मेरे खंडित व आहत जीवन में पुनः उत्साह भर सके! अम्मी में मुझे मिटाने की जितनी क्षमता थीं, मुझे लगता है कि मेरे आहत मन, दुखी आत्मा और टूटे हुए

सपनों को जोड़कर मुझमें जीवन की ऊर्जा भरने की उतनी ही सामर्थ्य तुममें है।" मैं, आज भी, उन्हें जीवन के प्रति आशावान् एवं जीवंत बनाने की प्रक्रिया में हूँ। मैं जानती हूँ कि मुझसे डाह रखने वाली अनेक महिलाएं उपहास करती हैं कि मैंने एक ऐसे टूटे-बिखरे व्यक्ति से विवाह किया, जिसे उसकी अम्मी ने ही नष्ट कर दिया था। मैं आज भी उनके मन के घावों पर प्रेम व अपनत्व का लेप करके पीड़ा व वेदना को दूर करने का प्रयास करती हूँ। मेरे मन में मुराद की अम्मी के लिए कोई द्वेष या क्षोभ भी नहीं है, क्योंकि उन्होंने अपने पुत्र के साथ जो किया, उसका उत्तरदायी मैं उन्हें नहीं मानती हूँ। वो तो मुस्लिम समाज और उसकी मजहबी प्रथाओं से पीड़ित एक महिला भर हैं, और मेरे पति ऐसी पीड़ित महिला से पीड़ित हैं।

अध्याय 4

किसी अन्य ईश्वर के विषय में जिज्ञासा

जब 1979 में मैं विश्वविद्यालय के पांचवें वर्ष में थी, तो कुछ ऐसा हुआ कि मेरे जीवन की दिशा ही परिवर्तित हो गई। उस वर्ष सीरिया में सत्ता का हिंसक व रक्तिम संघर्ष आरंभ हो गया। वहाँ के सत्ताधारी परिवार और सीरिया मुस्लिम ब्रदरहुड के आतंकवादियों के मध्य झड़प होने लगी। सीरिया के राष्ट्रपति अलवैत मुस्लिम समुदाय से थे। यह समुदाय अल्पसंख्यक है और स्वयं को रसूल मुहम्मद के चचेरे भाई अली से जोड़ता है। मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात्, अली इस्लाम का चौथा खलीफा हुआ था। सीरिया की जनसंख्या में अलवैत की संख्या 15 से 20 प्रतिशत के मध्य थी और सुन्नी मुस्लिम बहुसंख्यकों के पश्चात्, ये देश का सबसे बड़ा समुदाय है। सैन्य विद्रोह के फलस्वरूप अलवैत हाफिज अल-असद सत्ता में आए। विद्रोह के समय वो रक्षा मंत्री थे।

मुस्लिमों का पूरा इतिहास खंगाल डालें, तो पाएंगे कि अलवैत मुसलमान सीरिया का सबसे निर्धन समाज था। सीरिया पर तुर्की के नियंत्रण से पूर्व अलवैतों की बहुत बड़ी जनसंख्या अलेप्पो में निवास करती थी। अलेप्पो देश के उत्तरी भाग में तुर्की की सीमा पर स्थित सीरिया का वही नगर है, जहाँ मैं चिकित्सा छात्रा के रूप में रहा करती थी। जब तुर्की की सेना ने उत्तरी सीरिया की ओर से प्रवेश किया, तो अलवैतों को मारते-काटते हुए इस समुदाय के अधिकांश जनों की हत्या कर दी। जो बच गए, वो तटीय क्षेत्रों की ओर भागे और अंततः मध्य सीरिया व समुद्र के मध्य बस गए। उस शुष्क पहाड़ियों की गहरी खाई और विषम वक्री क्षेत्र ने बचकर भाग रहे अलवैतों के अस्त-व्यस्त हो चुके जीवन को शरण दिया और वो वहाँ की खोहों में छिप गए।

अपने इस नए रहवास में अलवैत घोर निर्धनता व उपेक्षा में जीने को विवश थे, और उन्हें तुर्की आक्रांताओं की सत्ता एवं बहुसंख्यक सुन्नी मुसलमान दोनों के हाथों भयानक अत्याचार सहना पड़ा। सीरिया के फ्रांसीसी शासन में वो अधिक सुंदर जीवन जीते थे, क्योंकि इस शासन ने उन्हें स्वायत्ता प्रदान की थी।

जब 1946 में फ्रांसीसी सेना का अंतिम प्लाटून भी सीरिया से बाहर निकल गया, तो फ्रांसीसी शासन से पूर्व तुर्की शासन में अलवैतों की जो दुर्दशा हुई थी, उससे भी भयानक स्थिति हो गई। 1946 में स्वतंत्रता मिलने और 1963 में बाथ पार्टी के सत्ता में आने के मध्य की अवधि में अलवैतों ने क्रूरता, यातनाएं व दुर्व्यवहार सहा। पहाड़ियों की खोहों में बंद होने के कारण उनका जीवन लगभग वैसा हो गया, जैसा कि पाषाण काल में लोग रहते थे। उनके यहाँ से कोई मार्ग सीरिया के तटीय नगरों से नहीं जुड़ा था। वो लोग इस भय में जी रहे थे कि उनकी हत्या कर दी जाएगी, उनकी महिलाओं के साथ बलात्कार होगा और उनके पशु व उपज लूट लिए जाएँगे, और इस संत्रास में उन्होंने अपने को पहाड़ियों के भीतर गढ़ियों में बंद कर लिया था।

बाथ पार्टी मुख्यत: सीरिया के ईसाइयों एवं अलवैतों के समूह ने स्थापित की थी। ईसाई और अलवैत देश के शिक्षित व प्रबुद्ध वर्ग से आते थे। वास्तव में इस राजनीतिक दल का उदय ही सुन्नी बहुसंख्यक मुसलमानों द्वारा इन मुस्लिम व अ-मुस्लिम अल्पसंख्यकों के धार्मिक व सामाजिक उत्पीड़न के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। 1963 में सत्ता में आने के पश्चात्, बाथ पार्टी लंबे समय तक सीरिया को सामाजिक भेदभाव व वर्ग-संघर्ष से मुक्त करने का ठोस प्रयास करती रही और बिना भेदभाव के सबको समान अवसर प्रदान किया। इस राजनीतिक दल का मूल लक्ष्य सीरिया को एक धर्मनिरपेक्ष देश बनाना था, और इसका नारा था कि "ईश्वर धर्म का है, यह धरती सबकी है।" युवा अलवैतियों को शीघ्र ही अपने दुर्दिन व निर्धनता को दूर करने का मार्ग मिल गया और वे बड़ी संख्या में दल में सम्मिलित हुए।

इनमें से कुछ भाग्यशाली रहे, और इन्हें उच्च पद भी मिले। प्रमुख बाथवादी हाफिज अल-असद इन्हीं भाग्यशालियों में से एक थे, जिन्हें रक्षा मंत्री बनाया गया।

1963 में सत्ता में आने के पश्चात् और 1070 के दशक के मध्य तक, अलवैत फले-फूले और उनके क्षेत्रों में पाठशालाएं व सार्वजनिक सुविधाएं भी स्थापित हुईं। विश्वविद्यालयों में अलवैत समुदाय के सदस्य भर गए और देश के सर्वाधिक शिक्षित समूह बन गए। किंतु हाफिज अल-असद के सत्ता शीर्ष पर आते ही ये स्थितियां लुप्त होने लगीं। जिस अल्पसंख्यक समूह से हाफिज अल-असद आते थे उस पर जो अत्याचार हुए थे, उसे देखकर उनके भीतर आशंकाएं बैठ गई थीं, और इसीलिए वो अपने समुदाय से बाहर के किसी भी व्यक्ति पर विश्वास नहीं कर पाते थे। इसी समुदाय को संरक्षित करने के लिए उन्होंने अपनी सत्ता को सुरक्षित करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने समुदाय अलवैत के युवाओं को सेना में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित किया और उन्हें ऐसा जीवन स्तर प्राप्त करने का अवसर दिया, जो उन लोगों ने सपने में भी नहीं सोचा था।

हाफिज अल-असद की सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए उनके भाई रिफत ने रक्षा कंपनी नामक विशेष सैन्य इकाई का गठन किया। इसी समय, अली हैदर नामक सैन्य अधिकारी ने विशेष बल नाम से एक अतिरिक्त सैन्य इकाई बनाई। इन दोनों व्यक्तियों ने अलवैत समुदाय की उभर रही युवा पीढ़ी को अपनी ओर आकर्षित करने पर ध्यान केंद्रित रखा, और इसके लिए इन दोनों ने अलवैती युवाओं को पुरस्कार स्वरूप उच्च पद देने का वचन दिया। इस युवा पीढ़ी को सैन्य सेवा शिक्षा से प्राप्त होने वाले लाभों से कहीं अधिक आकर्षक लगने लगी और बड़ी संख्या में अलवैत युवा हाफिज अल-असद के शासन व सत्ता को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से गठित इन दोनों सैन्य इकाईयों में सम्मिलित हुए।

सीरियाई जनसंख्या का सबसे सुशिक्षित एवं सामाजिक रूप से जागरूक वर्ग बनने की ओर अग्रसर अलवैत समुदाय हाफिज अल-असद के

शासन में सैन्यकरण की प्रक्रिया की ओर बढ़ गया। एक ओर अलवैतों की यह युवा पीढ़ी सैन्यीकृत हुई, तो दूसरी ओर विश्वविद्यालय से शिक्षित वर्ग भी सुस्थापित हुआ, परिणामस्वरूप कम शिक्षित सैन्यीकृत वर्ग एवं सुस्थापित शिक्षित वर्ग के मध्य दूरी बढ़ गई। इन दोनों वर्गों के मध्य संघर्ष आरंभ हो गया। हाफिज अल-असद शिक्षित वर्ग को क्षति पहुँचाने लगे और बड़ी संख्या में उन्हें कारागार में डाल दिया।

अब, यह वर्ग पुन: अपने को उपेक्षित व सताया हुआ अनुभव करने लगा, और इस वर्ग के जो लोग जेल से बाहर थे उन्होंने या तो देश छोड़ दिया अथवा राजनीति से दूरी बना ली। असद अपने समुदाय के लोगों से भी यही अपेक्षा करते थे कि वे उन पर अंधा विश्वास करते हुए उनके आदेशों का अक्षरश: पालन करें। उनके अपने ही समुदाय से जिसने भी अवज्ञा करने का दुस्साहस किया, उस पर उन्होंने सबसे तीक्ष्ण अस्त्र चलाया। वो ऐसे लोगों से भी उतनी ही कठोरता से निपटते थे, जितना कि वो उस मुस्लिम ब्रदरहुड के आतंकवादियों के विरुद्ध कार्रवाई करने में कठोर होते थे जो उनके राष्ट्रपति बनने के प्रथम दिन से उन्हें मारने की घात में बैठा था।

असद जब पहली बार सत्ता में आए, तो उन्होंने सुन्नी बहुसंख्यकों को संतुष्ट करने का प्रयास किया जिससे कि ये समुदाय उनका बहिष्कार न करे। उन्होंने सुन्नी मुल्ला-मौलवियों व मजहबी नेताओं एवं समाज में प्रभाव रखने वाले इस समुदाय के लोगों का समर्थन जुटाने का प्रयास किया। सीरिया के मुफ्ती व सुन्नी मौलाना समूह के सदस्य लोग असद के निकट सहयोगी थे और उनके शासन के सर्वाधिक मुखर समर्थक थे। मुस्लिम ब्रदरहुड एक आतंकवादी आंदोलन था और अधिकांश सुन्नी मुसलमानों ने इस संगठन को अस्वीकार कर दिया था। यद्यपि, मुस्लिम ब्रदरहुड ने असद के शासन में सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश कर चुके भयानक भ्रष्टाचार की स्थिति का लाभ उठाया। भ्रष्टाचार चरम पर पहुँच रहा था और असद इसे अलवैतों का साथ पाने के लिए बड़े साधन के रूप में प्रयोग कर

रहे थे। सरकारी मंत्रालयों में भ्रष्टाचार, उत्कोच (रिश्वत) का लेन-देन व्याप्त हो चुका था। अधिकांश सीरियाई लोगों का जीवन स्तर गिर गया था। धन-संपत्ति सत्ताधारी परिवार के सदस्यों एवं उनके निकट सहयोगियों के हाथों में सिमट गया था। विशिष्ट वर्ग के इस समूह में विभिन्न धार्मिक समुदायों के सदस्य तो थे, किंतु अधिकांश सदस्य अलवैत समुदाय से ही थे।

बाथ पार्टी के लोगों के इन्हीं अवगुणों के कारण मुस्लिम ब्रदरहुड के आतंकवाद की आग में घी पड़ता रहा, और 1970 के दशक में जब इस आतंकवादी संगठन पर सऊदी धन की बरसात होने लगी, तो एक बार पुनः यह आग भड़क उठी। मुझे बाथ पार्टी द्वारा 1968 में लिया गया वह निर्णय ध्यान आता है कि प्राथमिक विद्यालयों में मजहबी शिक्षा विषय में प्रदर्शन के आधार पर बच्चों के भविष्य का निर्धारण नहीं होगा, वरन् विज्ञान व गणित आदि विषयों में बच्चों की योग्यता से इसका निर्धारण होगा। जब यह निर्णय हुआ, तो मैं प्राथमिक स्तर की छात्रा थी। बाथ पार्टी विद्यालयों में मजहबी शिक्षा पर पूर्णतः रोक तो नहीं लगा सकी, परंतु उसका यह निर्णय मजहबी शिक्षा का महत्व कम करने में सफल अवश्य रहा, और विद्यालयी पाठ्यक्रमों से मजहबी शिक्षा को हटाने की दिशा में यह कार्य महत्वपूर्ण था। हाफिज अल-असद के सत्ता में आने के पश्चात् बाथ पार्टी ने तुरंत इस्लामी विस्तार को रोकने की कार्यवाही नहीं की, क्योंकि अल्पसंख्यक समुदाय का सदस्य होने के कारण असद में ऐसा कोई कार्य करने का उतना साहस नहीं था; अपितु वो तो सुन्नी बहुसंख्यकों से भयभीत रहते थे। ये वही सुन्नी बहुसंख्यक थे, जिनके गर्भ से मुस्लिम ब्रदरहुड का जन्म हुआ था, और इसीलिए असद ने इस नए सऊदी-समर्थित इस्लामी विस्तार पर अपनी आंखें मूंद लीं। दोनों में सांठगांठ हो गईः तुम हम पर आंखें बंद कर लो, और हम तुम्हारी ओर नहीं देखेंगे।

शासन कर रहे विशिष्ट वर्ग में भ्रष्टाचार का व्यसन चढ़ गया, जबकि सुन्नी जनसंख्या में सऊदी के वहाबी आतंकवाद का रंग चढ़ गया। इन दोनों प्रकरणों में स्थितियां हाथ से निकल चुकी थीं, क्योंकि कोई पक्ष

अपने स्वार्थ से ऊपर कुछ देख ही नहीं रहा था। जहाँ एक ओर सीरिया के राष्ट्रपति और उनकी चौकड़ी लाखों-करोड़ों डालर देश से बाहर भेज रही थी और निर्लज्जतापूर्वक भोग-विलास का जीवन जी रही थी, वहीं सभी वर्गों के अधिकांश सीरियाई घोर निर्धनता का दंश झेल रहे थे।

सुन्नियों को लगा कि वो ठगे गए हैं और उन्होंने मुस्लिम ब्रदरहुड का स्वागत किया। मुस्लिम ब्रदरहुड के मुंह में सऊदी धन भर दिया गया था और उनके मन-मस्तिष्क में इस्लामी शिक्षाएं ठूंस दी गई थीं। सुन्नियों ने मुस्लिम ब्रदरहुड का स्वागत इस आशा से नहीं किया था कि उनका जीवन सुधरेगा, अपितु वो मुस्लिम ब्रदरहुड को इसलिए लाना चाहते थे क्योंकि उनमें अपनी इस स्थिति के लिए उत्तरदायी लोगों से प्रतिशोध लेने की आग धधक रही थी। पूरा अलवैत समुदाय बलि का बकरा बन गया, और वह शिक्षित वर्ग, जिसके अधिकांश सदस्यों को असद ने इस कारण कारागार में डाल दिया था कि उन्होंने असद की आज्ञा का उल्लंघन करने का दुस्साहस किया था, सरलता से इस्लामी आतंकवादियों के हाथों का आखेट बन गया। इस वर्ग के पास अपनी रक्षा का कोई उपाय नहीं था, और मुस्लिम ब्रदरहुड का गुप्त सशस्त्र दल चिकित्सकों, अभियंताओं, व्याख्याताओं एवं न्यायाधीशों आदि के विश्वविद्यालयी शिक्षित वर्ग के सदस्यों पर निर्ममता से टूट पड़ा तथा एक-एक कर उनकी हत्याएं करने लगा, परंतु असद शासन मूकदर्शक बनकर खड़ा रहा और जो चल रहा था उस पर आंखें बंद कर लीं।

मुझे स्मरण होता है कि अराजकता की उस अवधि में यह प्रवाद फैला था कि असद परिवार ने मुस्लिम ब्रदरहुड के प्रतिनिधित्व वाले सऊदियों से गुप्त समझौता कर लिया था कि असद मुस्लिम ब्रदरहुड पर आंखें मूंद लेंगे और ब्रदरहुड असद व उनके सत्ताधारी परिवार के अन्य सदस्यों पर व्यक्तिगत प्रहार नहीं करेंगे। वास्तव में यही हुआ भी था, और सीरिया की जनता असहाय बनकर ये सब ऐसे देखती रही कि मानो टॉम एंड जेरी कार्टून देख रही हो। इन्हीं परिस्थितियों में, एक दिन मुस्लिम ब्रदरहुड के सदस्यों की एक सशस्त्र टुकड़ी ने वाहनों के उस रक्षा दल पर

आक्रमण कर दिया जिसमें असद स्वयं यात्रा कर रहे थे। इससे शासन और मुस्लिम ब्रदरहुड के मध्य संघर्ष भड़क गया। मुस्लिम ब्रदरहुड ने उन वाहनों पर बम फेंका, किंतु असद तो चामत्कारिक रूप से बच गए, परंतु असद का एक साथी मारा गया।

1979 की इस घटना ने विस्फोटक स्थिति उत्पन्न कर दी, और सीरिया की सरकार आतंकवादियों को चुन-चुन कर मारने लगी। सीरिया का हमा नगर पारंपरिक मुस्लिम ब्रदरहुड का गढ़ था, इसलिए सेना ने इस पर धावा बोल दिया और टैंक लगाकर इस गढ़ को धूल-धूसरित कर दिया। परास्त मुस्लिम ब्रदरहुड के आतंकवादी सीरिया के दूसरे नगरों में भागे तो सेना ने उनका पीछा कर उन्हें ठिकाने लगाक दिया। मुस्लिम ब्रदरहुड द्वारा राष्ट्रपति पर प्राणघातक आक्रमण के असफल प्रयास के पश्चात्, शासन ने भले ही उन्हें कुचल दिया था, किंतु उसने यह काम किसी धार्मिक समुदाय की रक्षा के लिए नहीं किया था।

1979 में जब में चिकित्सा पाठ्यक्रम के पांचवें वर्ष में थी, तो मैंने अपने नेत्रविज्ञान के व्याख्याता डॉ. युसुफ अल-युसुफ को अपनी आँखों के सामने मरते देखा। पहले तो, मैं समझ ही नहीं पाई कि कौन मारा गया। हत्यारे ध्वनि विस्तारक (लाउड स्पीकर) पर "अल्लाहू-अकबर... अल्लाहू-अकबर...!"* का नारा लगा रहे थे, और चारों ओर से गोलियों के तड़तड़ाहट की ध्वनि हो रही थी, यह देखकर आसपास के हम सब लोग सन्निपात की स्थिति में भयाक्रांत हो गए।

जब गोलियों की ध्वनि मंद पड़ी, तो हमारी चेतना कुछ-कुछ लौटी, और मैंने उन गोलियों से प्राण गंवाने वाले व्यक्ति की ओर देखा तो कुछ क्षण के लिए चेतना-शून्य हो गई। नीचे रक्त से सना हुआ जो व्यक्ति निर्जीव पड़ा था, वह वही था जिसे मैं नैतिकता व मानवता के आदर्श के रूप में देखती थी, एक ऐसे आदर्श व्यक्ति जो निर्धन परिवार से उठकर न्यायप्रिय, उदार व सुसंस्कृत व्यक्तित्व के स्वामी बने थे और यूरोप में चिकित्सा शिक्षा लेने के लिए अपना सबकुछ न्यौछावर कर दिया था। शिक्षा

पूरी करने के तुरंत पश्चात्, वो सीरिया लौट आए और चिकित्सा महाविद्यालय में व्याख्याता के रूप में सेवा देने लगे। हत्यारे द्वारा अपराध करते हुए अल्लाह का गुणगान करने का स्वर और गोलियों की तड़तड़ाहट ध्वनि एक-दूसरे में मिल गई थी। उसी क्षण से, मुझे अल्लाह और गोलियों की ध्वनि दोनों एक समान लगने लगे, और अल्लाह एक ऐसा ईश्वर प्रतीत होने लगा जिसके लिए मानव जीवन का कोई मोल नहीं है। तभी से, मैं किसी ऐसे ईश्वर को ढूंढ़ने की यात्रा पर निकल पड़ी, जो मानव जीवन का ध्यान रखता हो और जिसके लिए प्रत्येक मनुष्य मूल्यवान हो।

मेरे मन में यह प्रश्न बारंबार उठने लगा कि क्या कोई ईश्वर है भी? पर क्योंकि मैं उसके प्रभाव को देख पा रही हूँ, तो मुझे उसके अस्तित्व को स्वीकार करना पड़ेगा। जैसा कि मैंने एक नहीं, अनेक बार स्वयं को एक ऐसा नास्तिक कहा है, जो ऐसी किसी भी ऐसी बात या अस्तित्व में विश्वास नहीं करती है जिसका अनुभव न किया जा सके, तो यह स्वाभाविक है कि कुछ लोगों को मेरा यह हठ एक अबूझ विरोधाभास लगता हो। ऐसे व्यक्तियों को मेरा उत्तर होता है: यद्यपि, जीवन भर जब तक मैं इस्लाम के कारागार में रही, ईश्वर को नहीं देखा, किंतु अब उसके प्रभाव को मैं देख सकती हूँ, और उसके प्रभाव को नष्ट करने के लिए मुझे यह मानकर उससे भिड़ना होगा कि उसका अस्तित्व है। जब एक छोटा बालक अपने बिछौने के नीचे दैत्य के छिपे होने की कल्पना से भयभीत होता है, तो उसके मन-मस्तिष्क पर उस दैत्य का प्रभाव नहीं, अपितु उसके भय का प्रभाव होता है, एक ऐसे भय का प्रभाव जो तब होता जब वह दैत्य वास्तव में होता। जिन बातों को हम सच मान बैठते हैं, वो भले ही हमारा भ्रम ही क्यों न हों, परंतु उनका प्रभाव वैसा ही होता है जैसा कि तब होता जब उनका अस्तित्व वास्तव में होता।

ईश्वर को जो मैं समझ पाती हूँ, वह यही है कि ईश्वर और कुछ नहीं, केवल हमारी इस भावना से जन्मी एक धारणा है कि हमें ईश्वर की आवश्यकता है, और वह हमारी ऐसी आवश्यकता है जिसे पूरा करने का

कोई दूसरा उपाय नहीं है। मेरी दृष्टि में ईश्वर वही भावना है, जो हमारी आवश्यकता की इसी भावना को संतुष्ट करता है। जो बौद्धिक अथवा मानसिक रिक्तता किसी यथार्थवादी पद्धति से नहीं भरी जा सकती है, उसी को भरने के प्रयास में लोग ईश्वर में विश्वास करने लगते हैं। वह एक ऐसी कुंजी के समान होता है जिसे हम आवश्यकतानुसार किसी भी ताले में लगा सकें।

जो मैं कह रही हूँ, आइए उसको उदाहरण सहित समझते हैं। मैं अपनी बेटी एंजेला को दंत चिकित्सक के यहाँ से घर लाने के लिए रूट 91 पर जा रही थी। सामान्यत:, वहाँ से घर पहुँचने में आधा घंटा लगता है, परंतु उस दिन दोपहर में मार्ग वाहनों से ऐसे ठसाठस थे कि मुझे आने में घंटा भर लग गया। एंजेला को अपने एक मित्र के जन्मदिन उत्सव में जाना था। घर पहुँचने में विलंब होता देखकर, वह क्षुब्ध व उत्तेजित हो रही थी, और उसकी खीझ मुझपर निकाल रही थी। मैं अपनी जिह्वा पर ताला लगाकर शांति से उसकी किशोरवय आलोचना सुन रही थी। उस 15 वर्षीय किशोरी के क्षोभ को दूर करने का यह मेरा अपना ढंग है कि जब वह अपने मन का क्रोध उड़ेल रही हो, तो मैं चुपचाप उसकी बात सुनती हूँ। जब उसका मन तनिक शांत हुआ, तो मैं उससे पुन: बात करने लगी, और बात बहुत शांतिपूर्वक की, जिससे कि अब उसमें भावनात्मक विस्फोट न हो।

जब, एंजेला का क्रोध उफान पर था, तो अचानक उसने कार का काँच खोला और बालसुलभ भोलेपन में बोली: "यदि कुछ ऐसा हो जाए कि मैं अभी के अभी ईश्वर बन जाऊं!" शांति रखते हुए मैंने उससे पूछा, "अच्छा, तुम ईश्वर बन जाती, तो क्या करती?" बिना किसी संकोच के वह बोल पड़ी, "मैं अपने लिए एक मार्ग सीधा घर तक बनाती और हमें यह यातायात अवरोध न मिलता, और मैं शीघ्र ही घर पहुँच जाती, मित्र की जन्मदिन पार्टी में भी समय से पहुँच जाती।" ईश्वर, एंजेला की आवश्यकता की पूर्ति के प्रयास में, मार्ग निर्माण करने वाला व्यक्ति बन गया!

निश्चित ही, कभी-कभी, हम ईश्वर के विषय में कुछ अधिक ही सोच लेते हैं। एक वृद्ध महिला समुद्र तट पर खड़ी थी, और अपने किशोरवय पोते को सर्फबोर्ड पर जल-क्रीड़ा नृत्य करते हुए देख रही थी। कुछ ही क्षण में, एक शक्तिशाली लहर आई और उस किशोर को गहरे सागर में बहा ले गई। वह महिला बचाने की गुहार लगाते हुए इधर से उधर भागती रही, उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे। थककर उसे कुछ नहीं सूझा, तो घुटनों के बल बैठ गई और आकाश की ओर हाथ उठाकर चीखने लगी: "भगवान, हे भगवान, मेरे पोते को बचा लीजिए आज इतनी दया कर दीजिए, दुबारा कुछ नहीं मागूंगी।"

वह दादी अभी भगवान से गुहार कर ही रही थी कि वही लहर लौट कर आई और उसके पोते को सुरक्षित उसके चरणों में पटक दिया। दादी उठी, और पुन: करबद्ध हाथों को ऊपर करके कृतज्ञ भाव से बोली: "आपका लाख-लाख धन्यवाद भगवान! आपने मेरे पोते को सुरक्षित मुझे वापस लौटा दिया। मैं वचन देती हूँ कि अब कुछ और नहीं मागूंगी", किंतु अगले ही क्षण, वह अपना वचन भंग करते हुए व्याकुलता में बोल पड़ी: "भगवान, क्या आप भूल गए कि वह टोपी भी पहने हुआ था?"

ईश्वर ऐसी ही आवश्यकता को पूरा करने की हमारी भावना है, ऐसी आवश्यकता जो हमारे सबसे महत्वपूर्ण अनुनय से लेकर तुच्छ इच्छाओं तक के लिए बनती है (भगवान, मेरे पोते को सुरक्षित वापस ला दो)! : और हे सर्वशक्तिमान, न भूलिए कि वह टोपी भी पहना हुआ था!

हमने अल्लाह को गढ़ा और इसके पश्चात्, हमने उसे स्वयं को रचने की अनुमति दी। हमने अपनी आवश्यकताओं में ढालने के लिए अल्लाह की उत्पत्ति की, और इसके पश्चात् उसे हमने यह अवसर दिया कि वह हमें अपनी आवश्यकतानुसार गढ़े। हमने उस पर अपना चोला डाला, और उसने हमें अपने चोले में लपेट दिया। समय के साथ यह पहेली और अबूझ होती गई, और हम आज तक नहीं जानते हैं कि किसने किसको रचा,

अल्लाह ने हमें रचा था अथवा हमने उसे रचा था? प्रश्न वही है कि कौन पहले आया, मुर्गी या अंडा?

यह प्रश्न तब तक महत्वपूर्ण नहीं होता है, जब तक कि यह दोषपूर्ण चक्र विकृत मुर्गी अथवा अंडा न देने लगे। इस दोष के कारणों का पता लगाने के लिए यह जानना आवश्यक नहीं है कि कौन पहले आया, अर्थात सड़े हुए अंडे से वह विकृत मुर्गी निकली अथवा उस विकृत मुर्गी ने पहले सड़ा हुआ अंडा दिया। जहाँ तक मेरा मानना है, तो हमें सच दोनों स्तरों पर ढूंढना चाहिए, और इसी प्रकार हमें स्वयं को एवं ईश्वर को, दोनों को, एक-साथ पुन: रचना चाहिए। जब हम अल्लाह को गढ़ते हैं और उस अल्लाह को हमें गढ़ने का अधिकार दे देते हैं, तो हम दोनों का उत्तरदायित्व है कि एक-दूसरे का कल्याण करें, तथा जब तक दोनों पक्ष अपने इस उत्तरदायित्व को निभाते हैं तो एक-दूसरे को रचने का उद्देश्य ठीक रहता है। किंतु हम दोनों में से यदि एक भी पक्ष दोषपूर्ण हुआ, तो दूसरे में भी कमियां आएंगी, और तब समय के साथ यह पकड़ पाना कठिन होता जाएगा कि यह विकृति कब पनपी। यदि हम इस उत्पत्ति दोष को सुधारने के प्रति गंभीर हैं, तो हमें प्रश्नों के उत्तर देने में समय व्यर्थ नहीं करना चाहिए, अपितु हमें दोनों पक्षों, मुर्गी और अंडा: अर्थात ईश्वर व मनुष्य, के साथ एक-साथ निपटना चाहिए।

पिछले अध्याय में मैं जिस युवक के गाँव की बात कर रही थी, वहाँ के लोगों ने स्वयं ही एक राक्षस गढ़ा था जो कि आकार में उतना ही बड़ा हो जाता था जितना कि उनके भय का परिमाण होता था, और तब उन लोगों ने ही अपनी कल्पना में स्वीकार कर लिया कि वह राक्षस उन ग्रामीणों पर नियंत्रण करे। बहुत लंबा समय बीत चुका था, तो सही तथ्य लुप्त हो गए थे, और कोई नहीं जानता था कि उनमें से किसने किसको उत्पन्न किया, कि दोनों में से कौन दूसरे की अपूर्णता का उत्तरदायी है। क्या उस गाँव के लोगों के मन में जो भय बैठा था, उसने उस राक्षस को गढ़ने

में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, अथवा उस राक्षस ने उन लोगों के मन में वह आतंक भरा था?

वह युवक साहसी था। उसकी घुमंतू प्रवृत्ति एवं सतत् भ्रमण ने उसमें साहस का ऐसा दुर्लभ गुण डाला कि वह अपने समय की मान्यताओं, वातावरण व घटनाओं को लेकर चैतन्य व जिज्ञासु बन गया, यद्यपि उसके सामयिक ज्ञान ने उसे चेतावनी भी दी कि वह अपना जीवन जोखिम में डाल रहा है। साहस दुर्लभ मानवीय सद्गुणों में से एक होता है। परिवर्तन लाने और त्रुटि को सुधारने के लिए सर्वप्रथम साहस अर्जित करना पड़ता है। अकेले बुद्धिमत्ता परिवर्तन नहीं ला सकती, इसके विपरीत कभी-कभी तो साहसहीन बुद्धिमत्ता परिवर्तन को रोकने का काम करती है। केवल साहस ही परिवर्तन ला सकता है। अपने गाँव में मुझे जो ज्ञान मिला, उसने मुझे बताया कि नेत्रों और अंधा बनाने वाली सूई के मध्य कोई तालमेल नहीं हो सकता है, परंतु प्रस्थान व प्रवासन के आतंक को झेलने के पश्चात् मुझमें जो साहस उत्पन्न हुआ, उसने यह सिखाया कि जब मेरे पास एकमात्र अस्त्र नेत्र ही हों, तो वो उस सूई से भी भिड़ सकते हैं।

*- मुफ्ती: मुस्लिम विद्वान जो शरिया की व्याख्या करता है।

*- जब मुसलमान हत्या करते हैं तो वो नारा लगाते हैं "अल्लाहू अकबर! अर्थात अल्लाह सबसे बड़ा है।"

अध्याय 5

इस्लाम के अल्लाह की प्रकृति

इससे पूर्व कि मैं उस राक्षस की सही प्रकृति को उजागर करूं, हमें उस आवश्यकता का परीक्षण करना है, जिसने इस राक्षस को जन्म दिया। भले ही, संक्षिप्त रूप से जानने का प्रयास करें कि इस राक्षस की उत्पत्ति में किन पर्यावरणीय परिस्थितियों का योगदान रहा, पर यह प्रयास करना चाहिए। यदि हम इस्लाम के जन्म के पूर्व अरब की उस सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थिति को समझें जिसने इस्लाम के उदय का मार्ग प्रशस्त किया, तो हम सरलता से इस्लाम के अल्लाह की प्रकृति को समझ सकते हैं।

उस कालखंड के लोग भय के घिरे हुए थे, किसी अज्ञात के भय में जी रहे थे। शुष्क मरुस्थलीय जीवन की प्रकृति ऐसी थी कि अगले क्षण क्या होगा, इसका अनुमान लगाना लगभग असंभव था, और इससे वहाँ के लोग इस अज्ञात भय में जीने लगे कि आगे जाने क्या होगा। मानवीय भावनाओं में किसी अज्ञात का भय होना सर्वाधिक विनाशकारी भावनाओं में से एक होता है, और यह व्यक्ति की बौद्धिक व मानसिक क्षमताओं को नष्ट करने लगता है। जिन्हें इस क्षतिकर भावना का अनुभव हो जाता है, उनमें अपनी अविलंब सुरक्षा का भाव जग जाता है, और क्योंकि उन्हें अपने अज्ञात भय का सामना करनने से भी भय लगता है, तो वे उस क्षण जीने में असमर्थ हो जाते हैं।

अरबी मरुस्थल में लोग एक दिन भी सुरक्षित भाव का अनुभव नहीं करते थे। जीवित रहने का एक ही उपाय था कि एक-दूसरे पर चढ़ाई की जाए, और बल ही वह नियम था जो बचने के इस साधन को चलाता

था। परिणामस्वरूप, बलशाली जनजातियां अपने दुर्बल पड़ोसियों पर आक्रमण करती थीं, और उन्हें लूट लेती थीं।

अरबी अपने भाषाई ज्ञान और अपनी अभिव्यक्ति की क्षमता के लिए प्रसिद्ध हुए। कोई जब उस भययुक्त वातावरण में रची गई कविताओं, कथाओं व साहित्य को पढ़ेगा, तो समझ पाएगा कि उनके सृजन व रचनात्मकता में उस भय व विध्वंस का प्रभाव किस सीमा तक है। अपने साहस व वीरता की डींगें हांकने में ही उनकी दक्षता थी। उनकी वो डींगें कुछ और नहीं, अपितु यह उनके अवचेतन में बैठे उस भय से निपटने के लिए एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक रक्षा तंत्र था, वह भय जिसने उनकी चेतना को जकड़ लिया था। जिस प्रकार जब कोई व्यक्ति भयभीत होता है तो वह तलवार पैना करने लगता है, उसी प्रकार अरब के तलवार भी नुकीले, पैने और पर्याप्त थे, जो उनके जीवन के प्रत्येक पक्ष पर, वास्तविकता और कल्पनाशीलता दोनों में, प्रभाव डाल रहे थे।

भय भरे ऐसे वातावरण में इस्लाम का जन्म हुआ। इस्लाम अरब के मरुस्थल के लोगों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में उभरा- वह आवश्यकता जो उनके उस भय की अपेक्षा अधिक शक्ति चाहती थी, जिस भय के वो लोग बंधक बन चुके थे। इसलिए उन्होंने अपनी भयग्रस्त कल्पना के वशीभूत एक राक्षस की रचना की, एक ऐसा राक्षस जो उनके भय से बड़ा था, और जो उनको भयभीत करने वाले सब कुछ का सामना करने में समर्थ था।

उन लोगों ने इस राक्षस को पूरा अधिकार दिया, और उनके भय के सभी स्रोतों को नष्ट करने के लिए इस अधिकार के प्रयोग की अनुमति दी। उन्होंने इस राक्षस के उत्पन्न किया, और इसके पश्चात् उसे अधिकार दे दिया कि वह उन लोगों को गढ़े। वो लोग उस राक्षस के समान बनने का प्रयास करते हुए बड़े हुए, और तत्पश्चात् जब तक कि उसके साथ अपनी आत्मा का विलय न कर लिया, उसे अपने भीतर पोसते रहे। अपने राक्षस की रक्षा के लिए उन्होंने उसके चारों ओर लोहे की भित्ति लगा दी, और

उसके निकट पहुँचने का प्रयास करने वाले किसी भी व्यक्ति का टेंटुआ दबा देने की धमकी देने लगे। तबसे लेकर आज तक, कोई व्यक्ति उस राक्षस के निकट नहीं पहुँच सका है, और जिसने वहाँ जाने का प्रयास किया उसे मृत्यु की पीड़ा का स्वाद चखना पड़ा है। बचपन से बड़े होने तक जितनी कहानियां मैंने सुनी हैं, उन सब में राक्षस किसी न किसी रूप में रहे हैं। मुझे स्मरण होता है कि जब हम छोटे थे, तो नित्य सायंकाल अपनी नानी के पास एकत्र होते थे, और वह हमें उस सुंदर युवा कन्या की कथा सुनाती जो एक निर्जन कंदरा में रहती थी। उस सुंदरी के पास प्रतिदिन सायं एक विशाल राक्षस आता था और उसकी कंदरा के बाहर चिंघाड़ता था: "लड़की, अपना हाथ मुझे दे, जिससे कि मैं तेरा रक्त पी सकूं। तूने ऐसा न किया, तो तेरा हाथ दो टुकड़ों में कर दूंगा!" वह कन्या कंदरा के द्वार से अपना हाथ आगे बढ़ा देती, और वह तब तक उसका रक्त पीता रहता जब तक कि उसका पेट न भर जाए। कन्या का रक्त पीने के पश्चात्, वह राक्षस चला जाता और अगले दिन पुनः आ धमकता।

जिस दिन मैंने अपना गाँव छोड़ा, उसी दिन से मैं अपने से प्रश्न करती रहती हूँ कि मेरी नानी को उस अंतहीन कथा से इतना लगाव क्यों था, जिसमें वह राक्षस उस कन्या का आखेट करने प्रतिदिन लौट आता था। संभवतः वह कथा मेरी नानी के जीवन से मिलता था? ऐसा कुछ था क्या कि मेरी नानी के अवचेतन में वह कन्या उनकी अपनी छवि की प्रतीक थी?

वह कहानी सुनते समय मैं जिस प्रकार भय से कांपने लगती थी, वह आज भी नहीं विस्मृत नहीं होता। अपने भय को दूर करने के लिए मैं कल्पना किया करती थी कि मेरे पिता उस राक्षस से विशाल हैं और उस सुंदर कन्या का रक्त पीने वाले राक्षस को ललकारने में समर्थ हैं। मुझे लगता था कि मेरे पिता ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जो मेरी रक्षा कर सकते हैं, और यह स्वाभाविक ही था कि मैं मन ही मन उन्हें नानी की कथा के उस राक्षस से अधिक बलवान् मानूं और यह मानूं कि यदि राक्षस मेरे कक्ष में आकर रक्त पीने के लिए मेरा हाथ मांगे तो वो मेरी रक्षा करने में समर्थ

होंगे। अपने को यह आश्वस्ति देने के लिए कि मैं सुरक्षित रहूँगी, मैंने अपनी चेतना व अवचेतन मन में एक और राक्षस गढ़ लिया था, जो उस राक्षस से बड़ा था जिसने मुझे भयभीत कर रखा था।

अरब के निवासी भी अपने भय से बचने के लिए उसी प्रकार के रक्षात्मक तंत्र को अपना सकते थे, जिस प्रकार के तंत्र का उपयोग मैंने किया था। वे भी अपने भय से बड़ा, और भय के प्रत्येक स्रोत को मिटाने की क्षमता वाले राक्षस को गढ़ने के लिए आगे बढ़ गए।

अरब मरुस्थल के निवासियों ने अपने नए राक्षस अर्थात अल्लाह को निन्यानबे विशिष्टताओं से विभूषित किया। उस राक्षस को ईश्वर के रूप में स्थापित करने के लिए इस्लाम की शिक्षा देने वाली मजहबी पुस्तकों में उसे सुंदर-सुंदर विशेषण दिए गए, और अन्य ईश्वरों की तुलना में उसको विशिष्ट दिखाने के लिए अन्य विशेषण दिए गए। उस राक्षस अर्थात अल्लाह की घिनौनी विशिष्टताएं तो अन्य ईश्वरों में नहीं पाई जाती हैं, पर हां जो भी अच्छे गुण इस अल्लाह पर चिपकाए गए, वो सब गुण पूर्व के ईश्वरों ने दिखाए थे।

इस्लाम के ईश्वर अर्थात अल्लाह को जो विशेषण दिए गए हैं, उनमें से एक है "अनिष्टकर्ता" अर्थात क्षति पहुँचाने वाला। क्या किसी ईश्वर द्वारा क्षति पहुँचाना तार्किक है? किंतु मुसलमानों ने अपने अल्लाह को इससे विभूषित किया, और इसमें वे उसी प्रकार गर्व का अनुभव करते हैं, जिस प्रकार वे "दयावान्" व "धीर", "कुचल देने वाला", "विवश करने वाला", "अपमानित करने वाला", "पालन-पोषण करने वाला", "मृत्यु लाने वाला", "सबसे उच्च", "प्रतिशोध लेने वाला", "रक्षक" के रूप में उसका वर्णन करते हुए गर्व करते हैं। उन्होंने उस राक्षस अल्लाह को ये सब विशेषण दिए, और तदंतर अपने आदर्श उस राक्षस जैसा बनने के प्रयास में इन सबको अपने में समाहित कर लिया।

जब कभी मैं विद्वान मुसलमानों से अल्लाह के इन नामों की वैधता व नैतिकता पर बात करती हूँ, तो वे चीखने-चिल्लाने लगते हैं, और

कुछ ही मिनटों में संवाद व्यर्थ के कलह में परिवर्तित हो जाता है। वे अल्लाह की इन विशेषताओं की नकारात्मकता को उचित ठहराने के अतिरिक्त और कुछ कर नहीं सकते, क्योंकि वे तार्किक प्रश्नों का सामना नहीं कर सकते, परंतु ऐसा करके वे स्थिति को और बुरा ही बनाते हैं। मुसलमान अल्लाह को "क्षतिकर्ता" के रूप में निरूपित करने को उचित ठहराते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि यह निरूपण लोगों के मन में भय भरने के लिए आवश्यक है, और इससे लोग अल्लाह के आदेशों की अवज्ञा करने से बचेंगे। मुसलमान कहते हैं: "जब कोई यह विश्वास करता है कि अल्लाह उसे हानि पहुँचाने में समर्थ है, तो वह ध्यान रखता है कि उसकी आज्ञा का उल्लंघन न हो, जिससे कि उसके द्वारा उन्हें हानि न पहुंचाई जाए।"

एक बार, मैं ऑक्सफोर्ड स्नातक एक मुस्लिम पाठिका से इसी बिंदु पर सच की परत जानने का प्रयास कर रही थी। मैंने ई-मेल के माध्यम से इस पाठिका से सघन पत्राचार किया। एक बार उसने मुझे लिखा: "क्या आप इस बात को नहीं मानती हो कि अल्लाह हानि पहुँचाने में सक्षम है?" उसने आगे लिखा: "यदि वह चाहे तो क्या पूरे ब्रह्मांड को नष्ट नहीं कर सकता है? लोगों को अपनी सीमा लांघने और उसके आदेशों का उल्लंघन करने से रोकने के लिए यह आवश्यक नहीं है क्या?"

मैंने उसे उत्तर दिया: "जब कोई बालक अपने पिता की आज्ञा नहीं मानता है, तो बच्चे को हानि पहुँचाने की सामर्थ्य होते हुए भी वह पिता उसे हानि पहुंचाता है क्या? क्या यह उचित है कि हम अपनी संतानों को धमकाएं कि जो सीमाएं हमने निर्धारित की हैं, उन्हें पार न करो?"

उस ऑक्सफोर्ड स्नातक ने कहा: "इन दोनों बातों में तुलना नहीं हो सकती है। एक पिता और बेटे के सामर्थ्य में भिन्नता की तुलना में अल्लाह की सामर्थ्य और मनुष्य के सामर्थ्य में भिन्नता बहुत बड़ी है।"

मैंने उत्तर दिया: "तो क्या अल्लाह की बुद्धिमत्ता, दया व प्रेम एक पिता की बुद्धिमत्ता, दया व प्रेम से श्रेष्ठ और बढ़कर नहीं होना चाहिए था?"

यह संवाद भी व्यर्थ रहा और कलह में परिवर्तित हो गया, और अंत में मुझे ई-मेल में उस ऑक्सफोर्ड स्नातक के क्रोध भरे कोलाहल का भान कराने वाले शब्द दिखे, उसने मुझे भ्रष्ट काफिर और इस्लाम छोड़ने वाला कहते हुए कहा कि मेरी हत्या कर दी जानी चाहिए।

जब आप किसी बच्चे को अल्लाह की विशेषताएं बताते हुए उससे कहते हैं कि वह प्रतिशोध लेने वाला, विवश करने वाला, कुचल डालने वाला है और वह पालन-पोषण करने वाला भी है, तो सोचिए कि आपने उस बच्चे को किस मानसिक स्थिति में पहुंचा दिया। आपने ऐसे प्रतिशोध लेने वाले, अत्याचारी और अहंकारी व्यक्ति को उसके मन में गढ़ दिया, जो पालन-पोषण भी करता है..., पर क्या आपको तनिक भी भान है कि बालमन में ऐसे चरित्र को बिठाने का क्या मूल्य चुकाना होगा? लोग ईश्वर में अपना आदर्श देखते हैं और, सचेतन व अवचेतन दोनों ढंग से, उसे अपने मन में बसाने का प्रयास करते हैं और उसमें लुप्त हो जाते हैं। जब हम बच्चे को यह विश्वास दिलाते हैं कि अल्लाह प्रतिशोध लेने वाला है, तो हम उस बच्चे को भी ऐसा ही दुष्ट बनने को न्यायोचित ठहरा रहे होते हैं। यह मानव स्वभाव है कि वह अपने आदर्श के साथ जुड़ना चाहता है, और आपको क्या लगता है कि जब वह आदर्श अल्लाह स्वयं हो, तो क्या होता होगा?

मुसलमानों के साथ तर्क करना तब और भी जटिल हो जाता है, जब वे यह विश्वास दिलाने का प्रयास करते हैं कि उनका अल्लाह दयालु, धीर और सहिष्णु भी है। मनोचिकित्सा की विशेषज्ञता लिए हुए एक मुस्लिम चिकित्सक से मैंने पूछा: "आप अपनी संतान को कैसे समझा पाते होंगे कि अल्लाह प्रतिशोध लेने वाला और दयालु दोनों एक-साथ है? क्या इस प्रकार का मजहबी पाठ अपने आप में विरोधाभासी नहीं है, क्योंकि यह उस संतान के व्यक्तित्व में बिखराव उत्पन्न करेगा, और उसे और भी अचेत व भ्रमित करेगा?"

उन्होंने कहा: "नहीं, मैं अपनी संतान को सिखाता हूँ कि अल्लाह मुसलमानों के लिए दयालु है और काफिरों से प्रतिशोध लेने वाला है। मुझे इसमें कोई विरोधाभास नहीं दिखता है।"

मैंने पुन: पूछा: "आप अपनी संतान को मोमिन और काफिर में भेद कैसे बताते हैं कि वह जान सके कि किसके साथ दया भाव के साथ रहना है, और किससे प्रतिशोध लेने वाला बनना है?"

उन्होंने कहा: "मुसलमान वह है जो अल्लाह, उसके रसूल तथा प्रलय के दिन व इस जीवन के पश्चात् आखिरत (जन्नत और जहन्नुम) की बातों में विश्वास करे।"

मैंने जानना चाहा: "इसका तात्पर्य यह है कि जब आपका बेटा यात्रियों से भरे किसी नागरिक विमान का अपहरण कर ले और इसे किसी अट्टालिका में भिड़ाकर तीन हजार काफिरों को मार डाले, तो वह अल्लाह द्वारा निश्चित सीमाओं से बाहर कुछ नहीं कर रहा होता है, और वही कर रहा होता है जो आपका आदर्श अल्लाह करता? क्या मोमिन और काफिर में भेद करने का यही ढंग है?" इस संवाद का अंत भी चीख, कोलाहल के साथ हुआ, और यह एक निरर्थक तर्क-वितर्क में रूपांतरित हो गया। परिणामस्वरूप, वह चिकित्सक मुझ पर ईश-निंदा, धर्म-परित्याग और अल्लाह व उसके रसूल के शत्रुओं से सहानुभूति रखने वाला होने का आरोप मढ़ने लगा।

जब कोई ऐसे वातावरण में रहता है, जो किसी अज्ञात से घिरा हो, और यह अनुमान लगाना कठिन होता हो कि अगले क्षण क्या होगा, तो वह व्यक्ति भय से ग्रस्त हो जाएगा, और अंतत: इसका परिणाम यह होगा कि वह व्यक्ति कुछ भी कर पाने में असमर्थ हो जाएगा। इस्लाम इसी भय की प्रतिक्रिया स्वरूप आया। क्योंकि उस वातावरण में लोग किसी अज्ञात से भयभीत रहते थे, तो इस्लाम ने पूरा प्रयास किया कि लोग उस अज्ञात की गहराई को न ढूंढ़ सकें। इस्लाम ने भय की इस समस्या से निपटने के लिए उसका सामना करने की तैयारी नहीं की, अपितु इस भय के स्रोत से बचने

का उपाय निकाला। मुसलमान भयभीत व्यक्ति होता है, और उसके पास अपने भय से बचने का एक ही उपाय होता है कि वह उस भय की उत्पत्ति के स्रोत की ओर से आंखें बंद कर ले। जिसमें वह अविश्वास करता है, उस सब से उसे भय लगता है, और जिनसे भी वह भय खाता है, उनसे दूर रहता है। उसकी मजहबी शिक्षा उसे उस प्रत्येक बात पर संदेहास्पद बना देती है, जिससे वह अनजान होता है, और साथ ही यही इस्लामी शिक्षा उसमें से यह योग्यता भी नष्ट कर देती है कि वह जिन बातों पर अविश्वास करता है, उसकी सच्चाई पता करे।

जिस वातावरण में इस्लाम का जन्म हुआ, उसमें भय का मुख्य स्रोत अज्ञात था। क्योंकि परिभाषानुसार प्रत्येक नई बात उस अज्ञात का ही रूप होती थी, तो इस्लाम ने कोई भी नई बात जानने-समझने से अस्वीकार कर दिया और अपने ही संसार की जानी-पहचानी सीमाओं में सिमट गया। अपनी शिक्षाओं, चिंतन-प्रणाली एवं जीवन शैली में इस्लाम आज भी ऐसे कारागार में बंद है, जिसके किवाड़ चौदह सौ वर्षों से नहीं खुले हैं। यह वैसी ही बात हुई कि कोई व्यक्ति घने जंगल के बीच एक झोपड़ी में अकेला रह रहा हो। इस्लाम वही झोपड़ी है, और वह जंगल वही अज्ञात है। उस अज्ञात के भय से बचने के लिए उस व्यक्ति ने अपने को झोपड़ी में बाहर और भीतर से बंद कर लिया है, और वह बाहर निकल कर जंगल में घूमने से मना कर देता है। मुसलमान अपने आसपास के संसार के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं, जैसा कि उस झोपड़ी में रहने वाला वह व्यक्ति करता है। मुसलमान अपने आसपास के संसार को लेकर भयग्रस्त रहता है। उसकी शिक्षा उसे इस बात के लिए प्रोत्साहित नहीं करती है कि वह अपनी आशंकाओं का आधार जानने एवं उस संसार को गहराई से जानने के लिए अपने में आवश्यक दक्षता लाए। इसके विपरीत, उसकी शिक्षा ने उसे सिखाया है कि वह अपने चारों ओर के लोगों से भयभीत रहे, उन पर अविश्वास करे, और उसके मन में यह चेतावनी भर दी है कि संसार तुम्हारा बुरा करने के लिए बैठा है।

यदि पलड़े पर इस्लाम व इसके अनुयायियों के विश्वास एक ओर रखें और अन्य सभी धर्मों द्वारा व्याख्यायित आस्था को दूसरी ओर रखें, तब पाएंगे कि इस्लाम का अपने अनुयायियों के साथ जो संबंध आज तक बना हुआ है, उसका आधार भय व अविश्वास ही है। इस्लाम और इसके अनुयायियों के मध्य संबंध में पर्याप्त सीमा तक वही समानता व प्रतिबिंब दिखता है, जो कि उन यायावर बद्दू अरबियों और वहाँ के अनुपजाऊ वातावरण के बीच संबंध में दिखता था। इस्लाम और इसके अनुयायियों के बीच संबंध भय व अविश्वास पर स्थापित है। भय व अविश्वास के कारण निर्मित कोई संबंध न तो स्वस्थ होता है और न ही सुदृढ़ होता है, तथा न ही इससे दोनों पक्षों को किसी अधिकार की आश्वस्ति मिलती है।

क्योंकि वाह्य संसार के उन्नत ज्ञान-विज्ञान से इस्लाम और इसके अस्तित्व को चुनौती मिलती है, इसीलिए इस्लाम ने अपने को वाह्य संसार के प्रभावों की पहुँच से दूर कर लिया है। इसने अपने अनुयायियों के चारों ओर अभेद्य बाड़ा लगाकर उसमें अपने को बंद कर लिया है। इस्लाम ने प्रत्येक नवोन्मेष का विरोध करते हुए उसकी उपयुक्तता व वैधता पर संदेह किया है। इस्लाम जिस संसार से घिरा हुआ है, उसके साथ इसके संबंधों को पारस्परिक व्यवहार व आदान-प्रदान के स्थान पर अतिक्रमण करने और दूसरों का अधिकार छीनने वाला बनाया गया है। इस्लाम के जन्म के पश्चात् इसके भीतर आज तक कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। इसमें जो भी परिवर्तन आया है, वह इस्लामी प्रभुत्व की सीमाओं के बाहर आया है, और इस्लाम को विवश होकर इन परिवर्तनों को अपने पर लागू करने का प्रयास करना पड़ा।

1960 के दशक के आरंभ में हमारे पड़ोस का एक ईसाई परिवार टीवी क्रय कर ले आया। मुझे स्मरण है कि किस प्रकार स्थानीय लोग उनके विषय में बुरा बोलते थे, और उस परिवार के मुखिया पर दुराचारी होने का आरोप मढ़ते थे। मुझे यह भी स्मरण है कि किस प्रकार वे लोग उस परिवार पर वह क्षेत्र छोड़कर चले जाने का दबाव बनाने का

षडयंत्र रच रहे थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि क्षेत्र में टीवी आ जाने से उनकी संतानें व किशोर भ्रष्ट हो जाएँगे, और उनका भविष्य प्रभावित होगा। तब निश्चित ही टेलीविजन का प्रसार अत्यंत धीमा था, किंतु मुझे नहीं लगता कि आज सऊदी शेख टीवी पर आने वाले किसी मुस्लिम कार्यक्रम अथवा पश्चिम के टीवी कार्यक्रमों का आनंद नहीं लेते होंगे। जब से उपग्रह आधारित टीवी डिश का चलन हुआ है, इस पर समस्त विश्व के कार्यक्रम आने लगे हैं, और इसने उस बंदीगृह को भेद दिया है जिसे इस्लाम ने अपने लिए निर्मित किया था। इंटरनेट को उस कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा, जो टीवी को करना पड़ा था और इसका प्रहार अधिक तीव्र व प्रभावकारी रहा। परिणामस्वरूप, इस्लामी संसार को परिवर्तित करने की मंशा रखने वालों को लगा कि वे इस माध्यम का उपयोग करके एक दशक के भीतर ही इस्लाम को घेरने वाली अभेद्य भीत को गिरा देंगे।

मुसलमान जब भी आवश्यकता पड़ने पर अथवा काम पड़ने पर किसी अ-मुस्लिम से संबंध रखता है, तो वह मन ही मन शंकालु रहता है, और सोचता रहता है कि इस संबंध में कुछ अज्ञात तत्व आएंगे, वह उनसे भिड़ने की तैयारी करके बैठा रहता है। मुसलमान की यह शंकालु स्थिति अन्य व्यक्तियों को लेकर उसके भय और अन्य व्यक्तियों की मंशा की शुद्धता को लेकर उसके संदेह के कारण होती है। इस प्रकार के संबंध, चाहे जितने गहरे हों अथवा चाहे जितनी दृढ़ता से स्थापित हों, कभी भी किसी मुसलमान को उस स्तर पर नहीं पहुँचने देंगे कि वह दूसरों पर विश्वास कर सके और उसे अच्छा मान सके।

मुसलमान दो संभावित स्थितियों में से किसी एक में ही इस प्रकार के संबंध निर्मित करने पर सहमत होंगे: या तो यह कि उन्हें अपना काम निकालना हो और अपना स्वार्थ सिद्ध करना हो, अथवा यह कि उन्हें दूसरों को क्षति पहुँचाना हो। जब मुसलमान अ-मुस्लिम लोगों से ऐसा व्यवहार रखते हैं, तो उनमें अपने कपट को भीतर ही छिपा लेने की अद्भुत कला होती है। अमरीका में रह रहे मेरे मूल देश के कुछ मुस्लिम मित्रों से मेरा

वाक-युद्ध हो जाया करता था, विशेष रूप से तब जब मैं अमरीकियों व अमरीकी संस्कृति पर उनके भयानक विचार सुनती थी, और यह जानकर अचंभित हो जाती थी कि वे न केवल विश्व व्यापार केंद्र की दोनों अट्टालिकाओं को नष्ट करने की मंशा रखते थे, अपितु सम्पूर्ण अमरीका को मिटा भी देना चाहते थे। ज्यों ही मेरा कोई अमरीकी परिचित वहाँ आ जाता, तो क्षण भर में वो मुस्लिम ऐसा दिखाने लगते कि मानो वे अब्राहम लिंकन से भी बड़े अमरीकन राष्ट्रवादी हैं।

मैं अपनी ईराकी सखी अमाल के साथ सैन डियागो के ला जोला से रीवरसाइड की ओर जा रही थी। अमाल को अमरीका में रहते तीन वर्ष से अधिक समय हो चुका था। ईराक के दक्षिणी भाग में सद्दाम हुसैन द्वारा शिया मुसलमानों को निर्दयता से कुचलने के कारण वह अपने परिवार के साथ भागकर सऊदी अरब गई थी, किंतु वहाँ उन्हें शरण नहीं मिली। उन्होंने अमरीका से शरण देने का अनुरोध किया, और जब उन्हें अमरीका में प्रवास की अनुमति मिल गई तो वे वहाँ से यहाँ चले आए।

जब हम उसके घर जाने वाले उपमार्ग के प्रवेश पर पहुंचे, तो वहाँ एक निराश्रय व्यक्ति आने-जाने वालों से भीख मांग रहा था। मेरी उस ईराकी सखी ने मेरी ओर देखा, और उपहासपूर्वक बोली, "देखो इस भिखारी को। यही है न तुम्हारा अमरीका, जिसके पीछे बावली हुई हो।"

मैंने उत्तर दिया, "प्रिय, क्या तुम्हें वास्तव में लगता है कि अमरीका में केवल यही है?"

ऐसा नहीं था कि अमरीका और यहाँ की संस्कृति के प्रति अमाल की घृणा पर यह मेरी उससे पहली भिड़ंत थी। जब तक हम उसके घर के द्वार तक नहीं पहुँच गए, वाद-विवाद चलता रहा। मैं उसके प्रत्येक शब्द से असहमति प्रकट करते हुए वहाँ से निकल गई। मैंने बहुत से देशों की यात्रा की है, किंतु कैलीफोर्निया राज्य के ला जोला व रीवरसाइड को जोड़ने वाले इस सुंदर, योजनाबद्ध ढंग से निर्मित और प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण मार्ग के समान कोई और नहीं देखा। परंतु मेरी सखी अमाल ने जब कार के काँच

से बाहर देखा, तो वह अपने चारों ओर के इस स्वर्ग के समान अमरीका को नहीं देख पाई, उसकी आँखें अमरीका का प्रतिनिधित्व करने वाले के रूप में वह भिखारी ही देख सकीं।

वह भी अमरीकियों के साथ विश्वासघात कर रही थी। मैं सदा यही सोचती हूँ कि इससे पहले कि बहुत विलंब हो जाए, भले-मानुष अमरीकियों को ऐसे कपट को समझ जाना चाहिए। अमाल एक प्रसिद्ध अमरीकी कंपनी की कर्मचारी थी। एक बार उसकी कंपनी के एक कार्यक्रम में मेरा भी आमंत्रण था, तो वहाँ मेरी भेंट अमाल के विभागाध्यक्ष से हुई। वह विभागाध्यक्ष सुसंस्कृत, शिष्ट व सुलझी हुई अमरीकी महिला थीं। लंबे वार्तालाप में हमारे बीच प्रवासियों एवं किसी नए देश में आने पर प्रवासियों को होने वाली कठिनाइयों का विषय उठ गया, और मैं उनके मुंह से यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गई: "मुझे अमाल के विषय में जो प्रिय है, वो ये है कि वह इस देश के बहुत प्रेम करती है, वह अमरीकी मूल्यों का बहुत सम्मान करती है और इस देश ने उसे जो दिया है, उसके लिए वह कृतज्ञ रहती है।" मैंने उनकी बातों पर सहमति का दिखावा करते हुए अपनी मुंडी तो हिला दी, किंतु मेरा मन वास्तव में यह कह रहा था : "भोले अमरीकियो! अमाल संयुक्त राज्य अमरीका के विषय में क्या विचार रखती है, उसकी तो तुम कल्पना तक नहीं कर सकते हो। जिस दिन उसके विचार को जान जाओगे, समझ जाओगे कि तुम लोग अपने भोलेपन में अपनी ही मृत्यु का साधन तैयार कर रहे हो।

वाह्य संसार को लेकर मुसलमानों का भय कुछ उसी भाँति दिखता है, जैसा कि उस मरुस्थलीय वातावरण में घिरे बद्दुओं में प्रकट होता था। तब भी उनमें किसी अज्ञात का भय था, और आज भी उनमें उसी अज्ञात का भय है। मरुस्थल की विषम परिस्थितियों और उस अज्ञात पर विजय प्राप्त करने के लिए उन्होंने इस आशा में उससे बड़ा एक राक्षस गढ़ा कि वह उनसे उसकी रक्षा करने में समर्थ होगा, और उन्हें एक प्रकार की आश्वस्ति देगा। परंतु जब उन्होंने इस राक्षस की रचना कर दी, तब उन्हें भान हुआ

कि यह तो कुछ ऐसा ही हो गया कि उसके वर्तमान भय के स्थान पर और बड़ा भय आ गया।

जन्नत का चित्रण करने वाली कुरआन की सभी आयतें यह दिखाने का प्रयास करती हैं कि वहाँ इसके नीचे नदियां बह रही होंगी। उस मरुस्थल में जल का बहुत अभाव था और प्यास से मृत्यु हो जाना उस अज्ञात के सबसे बड़े खतरों में से एक था। वहाँ नदी होने का सपना दिखाने से उन बदुओं को आश्वस्ति व संतुष्टि मिली, क्योंकि वे लोग प्यास से मृत्यु हो जाने के भय से ग्रस्त थे। मरुस्थल में गिने-चुने अन्न ही उगते थे, उनकी उपज बहुत कम होती थी, और अन्न के रूप में उपज लगभग न के बराबर ही मिल पाती थी, जबकि इस्लाम ने अपने अनुयायियों को जन्नत में खजूर, अंगूर व अन्य फलों के बाग का दिवास्वप्न दिखाया। यद्यपि, उनकी दृष्टि में नदियों का महत्व फलों व अनाज के कहीं बढ़कर था, क्योंकि प्यास के मारे मरने का उनका भय अधिक भयानक था। इस्लाम का जन्नत वर्तमान की आवश्यकताओं के छद्मवेश में दिखाया गया। वो बद्दू भूख व प्यास से मर रहे थे, तो उन बदुओं को आश्वस्त करने के लिये जन्नत को नदियों व फलों के रूप में दिखाया गया।

हमला, जैसा कि मैंने पहले ही बताया है, मर जाने और नष्ट हो जाने के भय का बड़ा स्रोत था, किंतु साथ ही साथ यही बचने का एकमात्र उपाय भी था। पानी व अनाज पाने के लिए वो जनजातियां आपस में संघर्ष किया करती थीं। अरब के इतिहास की पुस्तकें इन हमलों के वर्णनों से भरी पड़ी हैं, और इसका भी पर्याप्त वर्णन है कि किस प्रकार ये जनजातियां दूसरों पर अपनी चढ़ाई को उचित ठहराने के लिए जान-बूझकर विवाद गढ़ती थीं। प्रत्येक जनजाति को यह भय सताता रहता था कि उन पर हमला हो जाएगा, और जब वे स्वयं दूसरी जनजाति पर हमला करने का अवसर पा जाते तो उन्हें लगता कि अब वे सुरक्षित हैं।.

किसी पर भी हमला होने का अर्थ यह होता था कि उसकी निर्धनता व अभाव और बढ़ जाएगा, जबकि जो हमला करेगा वह लूट की

धन-संपत्ति पाएगा। तभी, इस्लाम आया, और इसने अपने रसूल व अनुयायियों के हमलों व लूटपाट को न्यायोचित ठहराते हुए, तथा दूसरों के आक्रमण की निंदा करते हुए, लूटपाट को नियमित करने का प्रयास किया। अरबी में रसूल मुहम्मद के विषय में कोई पुस्तक खोलिए, पहली बात जो आपको पढ़ने को मिलेगी वह रसूल के हमलों के विषय में ही होगी। उसके प्रत्येक हमले को एक नाम दिया गया और विस्तार से वर्णन किया गया। विवेकशील पाठक सरलता से समझ सकते हैं कि रसूल के हमलों का मुख्य उद्देश्य लूट का माल पाना और उसे आपस में बांट लेना था।

इस्लाम ने इन हमलों को अल्लाह का उद्देश्य बताते हुए और शहादत का रूप देते हुए न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया। यद्यपि अल्लाह का रंग देने के पश्चात् भी, उनका मूल उद्देश्य छिप नहीं सका, जो कि वास्तव में धन लूटना और लूट का माल पाना ही था। कुरआन में लूट के माल का उल्लेख अनेकों बार किया गया है। इसने लूटपाट को निषिद्ध नहीं किया : इसके विपरीत इसने रसूल को लूट के प्रत्येक धन का पांचवां भाग लेने के लिए अधिकृत कर दिया, और उसका इतना बड़ा भाग देखकर उसके अनुयायी क्रोधित न हो जाएँ, इसलिए रसूल के साथ अल्लाह का नाम जोड़ दिया गया, तथा इस प्रकार एक आयत रच दी गई: "और जान लो कि [जिहाद में] तुम्हें जो भी लूट का माल मिले, उसका पांचवां भाग अल्लाह और उसके रसूल के लिए, और रसूल के निकट संबंधियों, अनाथों, आवश्यकता वालों और जिहाद लड़ने वालों के लिए है।" (8:41)

कुरआन पर अपनी टीका में अल-कुर्तुही ने वाक्यांश "और जान लो कि तुम्हें जो भी लूट का माल मिले" की व्याख्या करते हुए बताया है : तुमने काफिरों से कुछ बलपूर्वक छीना। यह संकेत करता है कि वह धन या संपत्ति उसके वैध स्वामियों की इच्छा के विरुद्ध ली गई थी। अल्लाह लूट के इस माल में अपना भाग कैसे लेगा और उसका भाग किसे दिया जाएगा, इस पर कुरआन के मुस्लिम टीकाकार कुछ नहीं बता सके। उन्होंने सीधा रसूल को ही अधिकार दे दिया कि वही अल्लाह के भाग का निपटारा करे।

मुहम्मद नहीं चाहता था कि लूट के माल के बंटवारे के संबंध में कोई विवाद रह जाए, और इसलिए उसने सुझाव दिया कि यह माल पांच भागों में बांटा जाए, जिसमें से पांचवां भाग अल्लाह और उसका होगा। यदि मुहम्मद ने यह कहा होता कि उसे अकेले लूट के माल का पांचवां भाग चाहिए, तो व्यापक विरोध आरंभ हो गया होता : कि क्यों एक व्यक्ति लूट के माल का पांचवां भाग अकेले रखेगा, जबकि अन्य हजारों लोगों के हाथ उसका बचा हुआ भाग ही आएगा। किंतु जब उसने कहा कि "पांचवां भाग अल्लाह और उसके रसूल के लिए है, तो यह समस्या दूर हो गई, और अब दूसरे जिहादियों के लिए इस पर असंतोष प्रकट करना कठिन हो गया। यदि सर्वसामर्थ्यवान और सबसे ऊंचा अल्लाह ही अपने पांचवें भाग को रसूल के साथ साझा करने को तैयार हो गया था, तो भले ही अन्य व्यक्ति हजारों की संख्या में थे, पर उन्हें शेष बचे भाग में मिले थोड़े से माल से ही संतोष क्यों नहीं करना चाहिए था?

यहाँ, एक बार पुन:, देखते हैं कि इस्लाम की शिक्षाओं व नियमों में किसी प्रकार जीवित करने के भाव ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस्लाम वह है, जिसका जन्म एक अज्ञात भय की छाया के प्रभाव वाले उस वातावरण में हुआ, जहाँ भूख व प्यास से मर जाने का खतरा सदैव बना रहता था। इस संबंध में मुहम्मद से जुड़ी एक और हदीस है: "हत्या करने वाले का यह अधिकार है कि जिसे मारे उसकी धन-संपत्ति पर अधिकार करे", इसका तात्पर्य यह है कि जब कोई मुसलमान किसी अ-मुस्लिम की हत्या करे, तो उसे उस अ-मुस्लिम की धन-संपत्ति लूट लेने का अधिकार है। इस हदीस (मुहम्मद का कथन अर्थात सुन्नत) को लेकर मुसलमानों में मतभेद उत्पन्न हो गया है। कुछ मुसलमान कहते हैं कि कुरआन की आयत का आदेश है कि लूट के माल को पांच भागों में विभक्त किया जाए, तो उस लूट के माल पर हत्यारे का पूरा अधिकार कैसे हो सकता है।

इस मतभेद को सुलझाने के लिए मध्यमार्ग निकालने के प्रयास में कुछ ने सुझाव दिया कि यदि लूटने के लिए माल कम होता था, तो वह

हत्यारे का होता था, और यदि लूट का माल अधिक होता था तो इसे पांच भागों में विभाजित किया जाता था। पुनः बल इसी बात पर दिया गया कि कैसे भूख व अभाव से जीवित बचें।

अमरीका में जब आप कोई अपराध करते हैं, तो विवेचक सबसे पहले हत्या के पीछे के उद्देश्य का पता लगाने का प्रयास करते हैं। यदि मृतक के शरीर के पास उसका वैलेट और धन पाया जाता है, और यदि घर में सभी वस्तुएं यथास्थान हैं, तो विवेचक कहेंगे, "मूलतः, चोरी इस अपराध का उद्देश्य नहीं था; कोई और कारण होगा।" किंतु जब वे पाते हैं कि मृतक की वस्तुएं वहाँ नहीं हैं, तो अन्वेषण की दिशा परिवर्तित हो जाती है, क्योंकि ऐसी स्थिति में हत्या का उद्देश्य भिन्न होता है, और यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हत्या के पीछे सबसे बड़ा उद्देश्य चोरी करना लगता है।

मुसलमान रसूल के हमलों यह कहकर न्यायोचित ठहराते हैं कि आत्मरक्षा में किए गए थे, पर मुझे आश्चर्य होता है कि वे उन हमलों में किए गए लूटपाट और चोरी को भी न्यायोचित बताते हैं। यदि किसी ने रात के अंधेरे में आप पर अचानक प्रहार कर हत्या करने का प्रयास किया, और आपने बचने के लिए उसकी हत्या कर दी, तो ऐसी स्थिति में आप उसकी हत्या करने को आत्मरक्षार्थ कहकर न्यायोचित ठहरा सकते हैं। किंतु यदि आप हत्या करने के पश्चात् उसका पर्स व धन चुराकर ले जाने वाले थे, तो क्या आप यह कहकर अपने कृत्य को उचित ठहराएंगे : कि मैंने आत्मरक्षा में उसका वैलेट चुराया? यदि आप सच बोल रहे थे कि आपने आत्मरक्षा में हत्या की है, तो क्या जब आपने कहा कि उसकी हत्या कर दी थी और इसके पश्चात् आत्मरक्षा में ही उसका वैलेट चुरा लिया था, तब भी आप सच ही बोल रहे थे?

मुहम्मद द्वारा अपने जीवन में किए गए हमले उसके जीवनवृत्त का बड़ा भाग हैं। इब्न हिशाम द्वारा लिखित रसूल के आत्मवृत्त के भाग दो में उल्लेख है कि मुहम्मद ने अपने जीवन काल में सत्ताइस हमले किए, यद्यपि कुछ मुस्लिम इतिहासकार यह संख्या अधिक बताते हैं। मुझे यहाँ उन

हमलों के ऐतिहासिक विस्तार में नहीं जाना है। किंतु जिसने भी आरंभ से अंत तक इन्हें पढ़ा है, वो सरलता से समझ सकता है कि इन हमलों के पीछे का उद्देश्य क्या था। इन हमलों का पहला और सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य धन-संपत्ति लूटकर उस पर अधिकार करना था। दूसरा उद्देश्य, जो कि इन हमलों के पश्चात् होना ही था, यह था कि हमले की पीड़ित जनजातियों को क्षति पहुँचाई जा सके।

जब कोई चोर कहीं चोरी करने की घात लगाता है, तो अपराध करने के क्रम में वह निश्चित ही यथासंभव अधिक से अधिक हानि करना चाहेगा, जिससे कि जिस व्यक्ति के घर चोरी हुई वह कभी खड़ा न हो सके। भूख व प्यास से मृत्यु का भय हमले का मुख्य कारण था। क्षति पहुँचाना दूसरा उद्देश्य था, और यह इसलिए किया गया कि जिस पर हमला हुआ, वह प्रतिकार करने में असमर्थ हो जाए। इस्लाम ने इसे नियमित बना दिया, वैध बना दिया, और इसने अपने अस्तित्व व उत्तरजीविता के लिए खतरा वाले उस वातावरण के भय से निपटने के लिए जिस राक्षस को गढ़ा था, उसी से परमादेश लाकर इन अपराधों को वैध बना दिया।

मेरे लिए, मुसलमानों की इस मानसिकता व प्रवृत्ति के कारणों को समझना इसलिए संभव हुआ कि मैंने मुस्लिमों के मन में बैठे हमलों के इस दर्शन को गहराई से समझा। बद्दू एक ओर हमलों से भयभीत रहता था, और वहीं दूसरी ओर वह आजीविका के लिए इसी पर निर्भर भी था। तभी इस्लाम आया, और इसने इन अपराधों को वैध कर दिया। आज इक्कीसवीं सदी में भी मुसलमान इस भय में जीते हैं कि उन पर कोई आक्रमण करेगा, और वे अपने जीवन का प्रत्येक सेकंड किसी और पर हमला करने की तैयारी करने में बिताते हैं। हमले का यह दर्शन उनके जीवन, उनके आचरण, उनके संबंधों और उनके निर्णयों पर छाया रहता है।

जब मैं अमरीका आई तो मुझे पता चला कि यहाँ के स्थानीय निवासी आक्रमण करना नहीं जानते हैं, किंतु प्रवासी मुसलमान अपनी अभी भी अपनी हमलावर प्रवृत्ति नहीं छोड़ सके हैं। अमरीका में रहते हुए मुझे

कुछ सप्ताह ही हुए थे कि जहाँ मैं रहती थी, उस क्षेत्र से परिचित कराने के लिए मेरी एक अरबी पड़ोसी मुझे सुपर मार्केट ले गई। जब हम वॉन्स मार्केट पहुंचे और भीतर गए, वहाँ उसके हाथ जो भी पैकेट लगा उसे खोलने लगी, और दूध, जेली व क्रीम के कार्टूनों में छेद करने लगी। इसके पश्चात् कुछ आलू चिप्स के पैकेटों, रूमाल के पैकेटों और स्पाघेट्टी के पैकेटों में छेद कर दिया।

मैं उसके इस कृत्य का विरोध करते हुए चीख पड़ी: "दीना, ये क्या कर रही हो?"

वह बोल पड़ी, "अल्लाह का कोप हो इन पर। इन्होंने हमारी भूमि हड़प ली!" मैंने कहा, "तो तुम इस कृत्य से अपनी भूमि वापस पाने का प्रयास कर रही हो?" उसने कहा, "मैं इन्हें क्षति पहुँचाने का प्रयास कर रही हूँ। तुम यहाँ नई हो। तुम्हें नहीं पता कि इसका स्वामी यहूदी है?"

यह घटना 15 वर्ष पूर्व तब हुई थी, जब मैं नई-नई अमरीका आई थी। परंतु आज मुझे, पहले से कहीं अधिक, लगता है कि समय ही इस विकृत मानसिकता को ठीक करने में कुछ कर सकता है, और मुझे और विश्वास हो गया है कि मुसलमान अपने आसपास के वातावरण को ग्रहण करने में जितना ही दुर्बल होगा, उतना ही उसमें हमलावर बनने की प्रवृत्ति बढ़ेगी। मुसलमान किसी देश में आता है, तो यह भाव लेकर आता है कि उसे उस देश को नष्ट करना है और क्षति पहुंचानी है।

कैलीफोर्निया के जिस नगर में मैं रहती हूँ, वहाँ की नगरपालिका प्रत्येक घर को तीन अवशिष्ट (कचरा) डब्बे देती है: एक पुनर्चक्रण न होने योग्य अवशिष्ट के लिए, दूसरा काँच, पत्रक व धातु के पुनर्चक्रण योग्य अवशिष्ट के लिए और तीसरा बाग-बागीचों से निकलने वाले अवशिष्ट के लिए। एक बार मैं एक मुस्लिम महिला मित्र के घर पर भोज में आमंत्रित थी। जब कार्यक्रम समाप्त हो गया, तो वह टेबल स्वच्छ करने लगी और भोजन के अवशिष्ट बटोरकर डब्बे में डालने लगी। आश्चर्य में मैंने उससे पूछा, "तुम डब्बे के अनुसार अवशिष्ट पृथक क्यों नहीं कर रही?" उसने

क्रोध में उत्तर दिया, "अल्लाह का कोप हो इन पर! क्या तुम मुझसे आशा करती हो कि मैं इनका पर्यावरण अच्छा बनाने में सहायता करूंगी? क्या तुम नहीं जानती कि इन्होंने ही पहले और दूसरे खाड़ी युद्ध में क्या किया था? इन्होंने हमारे देश के वातावरण को विषाक्त किया था। क्या तुमने नहीं सुना है कि इजराइल एड्स के रोग के साथ वेश्याओं को जार्डन व मिस्र भेजता है, जिससे कि हमारे देश में एड्स संक्रमण का प्रसार हो?"

यह रट सुनते-सुनते मैं थक चुकी हूँ, और अब जब कोई यह कहता है तो क्षोभ होने लगता है। अपने क्षोभ को शांत करने के प्रयास में मैंने कहा, "हां, सुना है।"

मेरी मित्र जानती है कि वह इस देश में जीवन भर रहेगी, वह जानती है कि यह देश उसके बच्चों, उसके पोतों, उसके परपोतों का घर होगा। तब भी, वह इस देश के प्राकृतिक वातावरण और पर्यावरण का कोई ध्यान नहीं रखती है, क्योंकि वह यहाँ केवल लूटने और अपने शत्रु को क्षति पहुँचाने आई है। हमलावर विचार या दर्शन उसके मन में गहरे बैठ चुका है, और यही इस देश में उसके आने का उद्देश्य था। यहाँ उसे जो सुविधाएं मिल रही हैं, उन्हें वह अपने निजी लूट की संपत्ति समझती है, और मुझे लगता है कि उसके कृत्य वैसे ही हैं, जैसा कि मुसलमान दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए करते हैं।

मुसलमान खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते, पहनते-ओढ़ते, वाहन चलाते, प्रति क्षण हमलावर मानसिकता में रहते हैं। मैं जो कह रही हूँ, वह कितना सत्य है, यह जानना हो तो विश्व की किसी भी मस्जिद में शुक्रवार को दिए जाने वाले भाषण (तकरीर) को सुनिए, स्पष्ट हो जाएगा। वहाँ वह उपदेशक जिस भाषा में बोल रहा होगा, उस भाषा को भी समझने की आवश्यकता नहीं है, आप तो उसकी चीखों को सुनिए, उसकी भाव-भंगिमाएं देखिए, और तब आप हमला करने की कला से परिचित हो जाएँगे। मैं एक ऐसे छोटे से नगर में जन्मी और पली-बढ़ी, जहाँ प्रत्येक कोने पर चार मस्जिदें थीं जिनमें शुक्रवार की सार्वजनिक नमाज होती थी।

शुक्रवार के दिन नगर में सभी गतिविधियां ठप हो जाती थीं। पुरुष मस्जिदों में बैठे रहते थे, और महिलाएं अपनी संतानों के साथ घर में बंद रहकर वातायन (खिड़की) और ओसारे में से उन भाषणों को सुनती थीं। विभिन्न मस्जिदों से आने वाले स्वरों में कोई मेल नहीं होता था। प्रत्येक उपदेशक कर्कश स्वर में ऐसे चीखता था कि कान फट जाएँ। मेरा घर इनमें से एक मस्जिद के निकट था, और इतना समीप था कि ऐसा प्रतीत होता था मानो मस्जिद का ध्वनि विस्तारक यंत्र मेरे शयन कक्ष में लगा हो। औरों की भाँति, मेरे परिवार को भी इस ध्वनि प्रदूषण को सहना पड़ता था।

जब मैं पीछे मुड़कर उन दिनों का स्मरण करती हूँ, तो मुझे समझ आता है कि बहुत कम आयु में ही मेरा स्वभाव ऐसा होने लगा कि किसी को भी बिना अनुमति के अपने संसार में अतिक्रमण करने की अनुमति न दूं। प्रात: 5 बजे ही अजान की ध्वनि मेरे शयन कक्ष की शांति भंग कर देती थी, और, बहुत छोटी आयु में ही, इससे मैं इतना क्षुब्ध हो जाती थी कि मुझे लगता था कि इनका क्या कर डालूं। पर भोर की बेला में मेरे जीवन में होने वाले इस अतिक्रमण मैं चिढ़ क्यों जाती थी भला? इससे तो अल्लाह और उसके रसूल का नाम और काम मेरे कानों में ही पड़ता था न! मैं अल्लाह और उसके रसूल के स्वर को अस्वीकार क्यों करती थी? निश्चित ही अल्लाह दंड देने में कठोर है! मैंने उस चीख को अस्वीकार दिया, परंतु, साथ ही साथ, मुझे इसे अस्वीकार करने में भय भी लग रहा था।

अजान की कर्कश चीख सुनकर मेरी अम्मी की जो प्रतिक्रिया होती थी, उससे मेरा भ्रम और बढ़ जाता था। मेरी अम्मी निरक्षर हैं। अरबी अनेक भाषाओं की तुलना में इस अर्थ में भिन्न है कि लिखने व पढ़ने में प्रयुक्त आधिकारिक भाषा इसकी बोलचाल की भाषा से नितांत भिन्न होती है। निरक्षर लोग बोलचाल की भाषा में निपुण होते हैं, किंतु लिखने-पढ़ने में जिस अरबी का प्रयोग होता है उसे समझ पाने में लगभग असमर्थ होते हैं। अम्मी ने कभी कुरआन अथवा इस्लाम, इसकी शिक्षाओं या इसके इतिहास पर कोई पुस्तक नहीं पढ़ी थी। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानीय

महिलाओं द्वारा जितना बोलकर बताया जाता था, उतना ही वो जानती थीं। इसलिए स्वाभाविक था कि मस्जिद में उपदेशक जो कह रहा होता था, उसे अम्मी नहीं समझ पाती थीं। यद्यपि, हो सकता है कि वो उनके एक-दो शब्दों को पकड़ लेती हों, परंतु उसके भाव को तो निश्चित ही नहीं समझ पाती होंगी। तब भी उस स्थानीय मस्जिद में उपदेशक को सुनना उन्हें लुभाता तो था। वो उपदेशकों को इस आधार पर महत्व देती थीं कि उनका स्वर कितना कर्कश व तीव्र है और उनकी भाव-भंगिमा कैसी है; वो उनमें से कुछ की प्रशंसा करतीं और कुछ को अच्छा नहीं कहतीं।

जहाँ मेरी अम्मी उस चीख की ओर आकर्षित होती थीं, वहीं मुझे उससे घृणा थी। मुझे अपने लिए इस समस्या का समाधान चाहिए था और मैंने इस्लामी वातावरण के चीखने व अतिक्रमण करने की संस्कृति से स्वयं को पृथक कर लिया। मेरा अनुभव रहा है कि दो मुसलमान आपस में बात कर रहे हों, तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि मिनट भर में उनका संवाद चीख में न परिवर्तित हो जाए, विशेष रूप से तब जबकि वो एक-दूसरे की बात से असहमत हों, और ऐसे में उनके संवाद से कुछ सार्थक मिल ही नहीं सकता। जब आप किसी मुसलमान से सौम्यता भरे स्वर में, तार्किक ढंग से, बात करेंगे तो वह आपकी बात ठीक ढंग से नहीं समझ पाएगा। उसे लगेगा कि आप तर्क में पराजित हो गए हैं। जिस प्रकार कोई मुसलमान किसी दूसरे-मुस्लिम या अ-मुस्लिम- से बात कर रहा होता है, तो उसे सामने वाले व्यक्ति द्वारा कहा गया एक भी शब्द स्मरण नहीं रहता है, उसी प्रकार मेरी अम्मी को भी हमारी स्थानीय मस्जिद में उपदेशक का कहा एक भी शब्द स्मरण नहीं रहता था।

*-अल-कुर्तबी प्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान (1214-1273) था। उसकी सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक तफ्सीर अल-कुर्तुबी है, जिसमें इस्लामी विधिक विषयों के संबंध में कुरआन की आयतों पर टीकाएं हैं और यह पुस्तक दस अंकों में है।

अध्याय 6

मुसलमान पुरुष और उनकी स्त्रियां

मुस्लिम संसार में आदमी औरतों से जिस प्रकार का व्यवहार करते हैं, वह, निश्चित ही, भयभीत करने वाला होता है। यह, अनेक अर्थों में, वही निकृष्टतम व घृणापूर्ण व्यवहार है, जो मुस्लिम संसार दूसरों के साथ करता है।

मैं चिकित्सा महाविद्यालय में चौथे वर्ष की छात्रा थी। मैं विश्वविद्यालय के चिकित्सालय के स्त्रीरोग क्लीनिक में प्रशिक्षण ले रही थी। एक दिन वहाँ एक महिला आई और अपनी समस्या दिखाने लगी। जब चिकित्सक ने उसका परीक्षण किया, तो पाया कि उसकी जांघों और नाभि के नीचे छोटे सिक्कों के आकार के गोल-गोल जलने के चिह्न थे। उस दिन स्त्रीरोग विभाग के अध्यक्ष चिकित्सक डॉ साद की ड्यूटी थी, तो उन्होंने उससे पूछा: "क्या है यह?"

उसने व्याकुलता में अपने माथे पर हाथ रखा और जीर्ण-शीर्ण स्वर में बोली: "मेरे शौहर ने यह कहकर सिगरेट से मेरे तन पर दागा है कि मैं मूर्ख महिला हूँ।"

डॉ साद ने एक क्षण भी नहीं लगाया, और बोल पड़े: "तुम्हारे साथ यही होना चाहिए? यदि तुम सच में मूर्ख न होती, तो उसने ऐसा नहीं किया होता।" मैं और वहाँ उपस्थित अन्य छात्र-छात्राएं अपने अध्यापक के अहंकार को तुष्ट करने के लिए खिलखिलाकर हँस पड़े।

डॉ साद ने ब्रिटेन में चिकित्सा की पढ़ाई की थी और प्राय: ब्रिटिश महिलाओं के आचरण को निर्लज्ज बताते हुए बुरा-भला कहा करते थे। उन्हें ब्रिटेन में निर्लज्जता के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखा, और वह भूल गए कि

उसी ब्रिटेन में ही उन्हें हिंसा व दुर्व्यवहार से पीड़ित महिलाओं के प्रति चिकित्सक की नैतिकता व विधिक उत्तरदायित्व भी सिखाया गया था।

मैं जिस चिकित्सालय में कार्य करती थी, एक दिन की बात है वहाँ के आपात चिकित्सा कक्ष में फोन की घंटी बजी, मैंने उठाया और उधर से आ रहे स्वर को सुनकर अचंभित हो गई : "डॉ अहमद बोल रहा हूँ। मैं एक वेश्या को भेज रहा हूँ। उसकी योनि को खोलकर देखो और उसमें जो मिले, उसे निकाल कर रख लेना!" मैं कुछ पूछ पाती कि इससे पहले ही उन्होंने फोन रख दिया। मेरे तन में सिरहिरी दौड़ गई, और लगा कि अचेत हो जाऊंगी।

डॉ अहमद उस नगर के चिकित्सा प्रशासन के मुखिया थे, पर बड़ी संख्या में रोगी उनके निजी क्लीनिक में मोटा शुल्क देकर दिखाने आते थे। ऐसा नहीं था कि लोग उनके निजी क्लीनिक में इसलिए दिखाने जाते थे कि उन्हें उनके चिकित्सा सामर्थ्य पर बहुत विश्वास था। लोग उनके निजी क्लीनिक में इसलिए जाते थे, क्योंकि उन्हें उस सरकारी चिकित्सालय की प्रतिष्ठा में विश्वास था जहाँ वो पदस्थ थे और जहाँ उन्हें नि:शुल्क उपचार मिलता था।

इस टेलीफोन वार्ता के आधा घंटा पश्चात्, वह नवयुवती सुहा आपातकालीन चिकित्सा कक्ष में पहुंची, जिसे डॉ साद "वेश्या" कह रहे थे। वह एक दुबली-पतली दीन-हीन सी कन्या थी और ऐसे चीथड़े वस्त्र पहने हुई थी कि फरवरी के कड़ाके की ठंड से बचना उसके लिए कठिन हो रहा था। जब वह परीक्षण पट्ट पर लेटने के लिए आगे बढ़ी, तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई रुग्ण पंक्षी इस संसार से विदा लेने की तैयारी कर रहा हो। परीक्षण में उसकी योनि से मध्यम आकार का वृत्ताकार शंकु काँच निकला।

अचंभे में मेरे मुंह से निकला, "ये क्या है सुहा?"

उसने हाथों से अपना मुख छिपा लिया और फफक कर रोते हुए बोली : "उनमें से एक ने मेरी योनि में यह घुसेड़ दिया।"

"उनमें से एक? तुम कहना क्या चाहती हो?"

वह बोली: "अमुक व्यक्ति ने, जिनके यहाँ मैं मासिक वेतन पर कार्यालय में झाड़ू-पोंछा करने का काम करती हूँ। मेरे पिता के पास कोई काम नहीं था, तो अपनी सात बहनों के पालन-पोषण में उनकी सहायता के लिए यह काम करना मेरी विवशता थी।"

"पर उन्होंने ऐसा किया क्यों?"

"उन्होंने कहा कि मैं मैली हूँ, और उनका वीर्य इतना पवित्र है कि उसे मेरे शरीर से स्पर्श नहीं कराया जा सकता?"

"तुम्हें क्या लगता है?"

रोते-रोते उसका स्वर कातर हो गया था और वह बोली, "मुझे लगता है कि मैं मैल से भी अधिक मलिन (गंदी) हूँ।"

जब मैं ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत थी, तो 40 वर्ष के आसपास आयु की एक ग्रामीण महिला फातिमा मेरी क्लीनिक में आई और ओकाई, उल्टी और कमर में पीड़ा की समस्या बताई। परीक्षण करने पर उसके गर्भाशय का आकार बढ़ा हुआ मिला, जिसका अर्थ था कि वह तीन मास की गर्भवती थी। ज्यों ही मैंने यह बताया, वह सामने पीठिका (कुर्सी) पर धम्म से बैठ गई और कांपने लगी, अपने माथे को पीटते हुए चीखने लगी, "डॉक्टर, मैं आपसे भीख मांगती हूँ, मुझे बचा लीजिए, इस विपत्ति से मुझे उबार लीजिए। मेरे बेटे मुझे मार डालेंगे। मुझे अपने जीवन की चिंता नहीं है। मुझे मर ही जाना चाहिए, परंतु मैं नहीं चाहती कि मेरे बेटे का हाथ मेरे रक्त से रंगा हो।"

"फातिमा हुआ क्या?", मैंने पूछा।

वह बोली, "मैं एक विधवा हूँ। पांच वर्ष पूर्व शौहर चार संतानों को छोड़कर संसार से चले गए। मेरी संतानों को दो रोटी देने के बदले में मेरे शौहर का भाई प्रतिदिन मेरा बलात्कार करता है। यदि उसको पता चला कि मैं गर्भवती हूँ, तो वह अपना पाप छिपाने के लिए मेरे बेटे को उकसाकर उसी से मेरी हत्या करवा देगा।"

मैंने पूछा, "कितना बड़ा है तुम्हारा बेटा?"

"पंद्रह बरस का है। मैं आपसे भीख मांग रही हूँ! वह अभी छोटा है और मैं नहीं चाहती कि उसके हाथ मेरे रक्त से मलिन हों!", वह बोली।

मैंने उसे स्त्री रोग चिकित्सक के पास भेज दिया। लगभग दो सप्ताह पश्चात् जब वह मेरे पास पुन: आई तो बहुत क्षीण, दुर्बल और रुग्ण दिखी।

मैंने पूछा, "क्या हुआ फातिमा?"

वह बोली, "मैं आपको धन्यवाद कहने आई हूँ। मैंने गर्भपात तो करवा लिया, पर मृत्यु को साक्षात सामने देखा! उन्होंने अचेत किए बिना ही भ्रूण निकालने की सर्जरी की, और उस समय मुझे जो असहनीय पीड़ा हुई, उसने मुझे लगभग मार ही डाला था।"

मैं चौंक गई, "क्या! अचेत किए बिना ही भ्रूण निकाला! क्यों?"

वह कहने लगी, "मेरे पास इतना पैसा नहीं था कि अचेत करने वाली सूई का भी मूल्य दे सकूं, इसलिए चिकित्सक ने ऐसे ही सर्जरी कर दी।"

अमाल- वह अमाल नहीं, जो अमरीका के लिए इतना अनादर रखती थी- चिकित्सक थीं और उसी चिकित्सालय में कार्यरत थीं जिसमें मैं कार्य करती थी। एक दिन मैंने सुना कि बीती रात उनके मुख व आँख पर कोई ज्वलनशील रसायन गिर गया था, तो उन्हें चिकित्सालय के नेत्र विभाग ले आया गया है। मैं तुरंत उनके कक्ष में गई और पूछी, "क्या हुआ अमाल जी?"

वो बोलीं, "स्नानगृह में पानी गर्म करने का प्रयास कर रही थी कि सरक गई, स्टोव में भरा ज्वलनशील पदार्थ मेरे ऊपर गिर गया और मैं जल गई?"

दिन बीतने लगे, और एक दिन मैं अमाल के साथ अकेली थी और हम दोनों अपने मन की बात एक-दूसरे कर रहे थे, तब उन्होंने बताया कि उस दिन वास्तव में हुआ क्या था। उन्होंने बताया, "उस दिन साँझ को मैं अपनी एक सहेली के यहाँ शादी में जाने के लिए तैयार थी। मेरा छोटा

भाई, जो आयु में मुझसे 15 वर्ष छोटा है और अभी हाईस्कूल भी नहीं उत्तीर्ण है, मेरे पास आया और चेतावनी देते हुए बोला कि मैं घर से बाहर न जाऊं? जब मैंने उसकी बात अनसुनी कर उसे अपने से दूर करने का प्रयास किया, तो उसने जलते ईंधन की बाल्टी उठाई और मुझ पर उड़ेल दिया। वफा, मैं लगभग चालीस वर्ष की हूँ, परंतु अब भी उस दिन की प्रतीक्षा कर रही हूँ कि मेरा भी कोई पति होता, तो मुझे ऐसे क्रूर अब्बा और भाई से बचाता।" किंतु आगे वह कहने लगीं, "कौन जानता है कि जो भावी पति होगा, वह भी इनके समान नहीं होगा। यह एक मकड़जाल है और इससे निकल पाना संभव नहीं लगता है। जानती हो, जब मैंने अपनी अम्मी से इस पर बात की तो वो क्या बोलीं! वो बोलीं, 'तुम्हारे साथ जो हुआ, उसी की पात्र हो तुम। मैंने अनेकों बार तुम्हें चेताया था कि अपने भाई की इच्छा के विरुद्ध न जाओ, पर तुम नहीं मानी, तो भुगतो अब।' वफा, मुझे तो कभी-कभी प्रतीत होता है कि आदमी ही औरतों के शत्रु नहीं हैं, औरतें भी औरतों की विरोधी हैं। मेरे पास भले ही इतनी सारी वैज्ञानिक व शैक्षणिक उपलब्धियां हैं, पर उनके अनुसार ये सब पर्याप्त नहीं हैं कि मैं जीवन अपने से जी सकूं, और मेरा भाई, जो ठीक से अपना नाम तक नहीं लिख सकता, मेरे जीवन की देखभाल के लिए मुझसे अधिक कुशल माना जाता है।"

अलेप्पो हमा के पश्चात् मुस्लिम ब्रदरहुद का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण गढ़ था। मुस्लिम ब्रदरहुड ने यहाँ बड़े अपराध किए थे। मैंने वहाँ पर जीना असहनीय पाया और किसी दूसरे नगर के विश्वविद्यालय से संबंद्ध किसी चिकित्सा विद्यालय में जाने का निर्णय किया, और मैं लत्ताकिया चली गई। लत्ताकिया उसी बानियास के उत्तर में भूमध्यसागरीय तट पर स्थित मंथर जीवन वाला नगर था, जहाँ मैं जन्मी और पली-बढ़ी।

उस समय लत्ताकिया में दो प्रशिक्षण चिकित्सालय थे। मैंने उन दोनों में से उस छोटे और कम भीड़ वाले सैन्य चिकित्सालय में आवेदन दिया, जिसमें सीरियाई सेना कार्मिकों व उनके परिवारों का उपचार किया जाता था, और मुझे वहाँ तुरंत प्रवेश मिल गया।

अलेप्पो छोड़ने के मेरे निर्णय से मुराद भावनात्मक रूप से टूट जाने की स्थिति में आ गए। अपना अधिकांश समय मेरे साथ बिताने का स्वभाव बन चुका था उनका, जब वो मेरे साथ होते तो समाज व अपनी अम्मी द्वारा उत्पन्न समस्याओं से दूर शांति व आनंद में रहते थे। मेरे इस निर्णय से उन्हें लगने लगा कि मेरे दूर जाने से हमारे संबंध पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। उन्होंने दो वर्ष पूर्व स्नातक उपाधि प्राप्त कर ली थी, पर वो उस क्षेत्र में सेवा नहीं दे रहे थे जिसमें उन्होंने अपनी पढ़ाई के समय विशेषज्ञता प्राप्त की थी। वो मेरे निकट रहना चाहते थे, और इसी कारण उन्होंने विश्वविद्यालय परिसर में एक छोटा पद स्वीकार कर लिया था।

मेरी अम्मी अलेप्पो में मुझसे मिलने आती रहती थीं, और, तब, वो अहमद व हुदा के घर रुकती थीं। ऐसे में यदि उस परिवार से मुराद के विषय में पता चलता तो अम्मी को धक्का लगता, अत: मेरे पास उन्हें मुराद से मिलाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचा। मुराद उन्हें पहले दिन से अच्छा लगता था, किंतु हमारे संबंध को वैधता देने से बचने के लिए वो यह भाव मुझसे छिपा ले जाती थीं। वह एक ओर मेरे और उसके मिलने को इसलिए प्रोत्साहित करती रहीं कि हम दोनों विवाह कर लें, और दूसरी ओर रूढ़ियों के भार से दबी होने के कारण हमारे संबंध को स्वीकार करने से भी बचती रहीं जिससे कि उनको इस संबंध को स्वीकृति देने का उत्तरदायित्व न लेना पड़े। हमारे समाज में महिला भले ही मां क्यों न हो, उसके पास इस प्रकार का उत्तरदायित्व लेने का अधिकार नहीं होता है, और इसीलिए वो समय-समय पर कहती रहती थीं, "प्रतीक्षा करो और देखो तुम्हारा भाई क्या कहता है!"

अलेप्पो छोड़ने के मेरे निर्णय से मुराद के साथ मेरे संबंध का लगभग अंत आ गया। ऐसा लगा कि वो अब विलाप करने लगेंगे, तो मेरे पास उन्हें अपने भाई से मिलाने और यह बताने के अतिरिक्त कोई विकल्प शेष नहीं रहा कि वो मुझसे विवाह करना चाहता है। हमें, एक झटके में, बिना किसी तैयारी के यह निर्णय करना पड़ा। परिवार चलाने की तो बात

ही छोड़िए, उनके पास विवाह की अंगूठी क्रय करने के तक के पैसे नहीं थे। मन के किसी कोने में मुझे आभास था कि मेरे भाई की क्या प्रतिक्रिया होगी। मेरे पिता की मृत्यु के अगले ही क्षण से जो भाई मेरे साथ इतना सम्मानजनक व्यवहार करते थे, वो मेरी प्रसन्नता के मार्ग में अवरोध नहीं बनते। मुराद मेरे भाई से मिलकर अपना परिचय दिया और निवेदन किया कि वो उनके घर आएं और उनके परिजनों से मिलें। मेरे भाई को यह विचार अच्छा लगा।

मुराद मेरे भाई और उनके परिवार के साथ भोजन करने बैठे। सीरिया की परंपरा है कि यदि कोई अतिथि घर में पहली बार आया है, तो उसे भोजन अवश्य कराया जाता है, विशेष रूप से तब जब वह अतिथि लंबी यात्रा करके आया हो। उस समय मुराद की आयु सत्ताईस वर्ष थी। संस्कारी, संवेदनशील और शांत रहने वाली मुराद परिवार के सदस्यों से आंख मिलाने से बच रहे थे। यद्यपि, अवसर देखकर, लंबी-चौड़ी भूमिका बनाए बिना, उन्होंने हम दोनों के विवाह के लिए सहमति प्राप्त करने की आशा में मेरे भाई से हमारे प्रेम संबंध के विषय में बता दिया। मेरे भाई ने उनका स्वागत उत्साह के साथ किया था और उनकी बात सुनने को तैयार थे, इसलिए अपने संबंधों को उनके सामने उजागर करने को लेकर मन में जो तनाव था, वह कम हो गया। प्रस्थान के समय मेरे भाई ने उनसे हाथ मिलाया और कहा, "तुमसे मिलकर अच्छा लगा। मुझे थोड़ा समय दो, बहन से बात कर लूं कि वह क्या चाहती है, क्योंकि निर्णय उसी को करना है, मुझे नहीं? मेरी शुभकामनाएं तुम्हारे साथ हैं!"

मैं उस क्षण को जीवन भर नहीं भूल सकती कि कैसे मेरे भाई और मुराद की भेंट होने के पश्चात् मेरा अपने भाई से आमना-सामना हुआ। निश्चित रूप से वह मेरे जीवन का सबसे कठिन क्षण था। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं मुराद के विषय में क्या जानती हूँ, क्या मैं जान-समझ कर और मन से उससे विवाह करना चाहती हूँ। उन्होंने मुझे समझाने का प्रयास किया कि वैसे तो वो किसी भी परिस्थिति में आपत्ति नहीं करेंगे, परंतु क्योंकि मैं अभी

छोटी हूँ और पढ़ाई का एक वर्ष अभी शेष है, इसलिए मुझे कोई उतावलापन नहीं दिखाना चाहिए और ठीक से विचार करके निर्णय लेना चाहिए। मेरे मन में इस युवक के प्रति जो लगाव था, वह मैंने साहस जुटाकर भाई को बताया और यह भी बताया कि मैं उससे विश्वविद्यालय में मिली हूँ, उससे मिलने-जुलने पर मुझे ऐसा लगा कि वह मेरे लिए उपयुक्त जीवनसाथी होगा।

मेरे भाई ने मेरे निर्णय को सहर्ष स्वीकार कर लिया और मुराद को फोन करके बधाई दी। मैंने अपनी बहन से कुछ धन उधार लिया। मेरी बहन मुझसे एक वर्ष बड़ी थी और विश्वविद्यालय से स्नातक करने के उपरांत सेवारत थीं। मैंने उस धन से अपने और मुराद के लिए एक-एक अंगूठी ली। मैंने मुराद से कहा कि वो इन अंगूठियों के विषय में चुप्पी साध लें और किसी को न बताएँ कि इसका भुगतान मेरी बहन ने किया है। मुराद उस अंगूठी और एक शेख को लेकर हमारे घर आए और ऐसा प्रकट किए कि अंगूठियां वही लाए हैं। इस प्रकार मँगनी सम्पन्न हो गई, वैसे भले ही इस्लामी परंपरा में शादी सार्वजनिक समारोह में करने का समर्थन किया जाता हो, किंतु इसमें मँगनी को छिपाकर करने पर बल दिया जाता है, क्योंकि यदि युवक या युवती का मन परिवर्तित हो जाए तो युवती किसी और से शादी करने का अवसर खो बैठेगी, ऐसा इसलिए क्योंकि अधिकांश पुरुष किसी ऐसी युवती से शादी नहीं करना चाहेंगे जिसकी मँगनी उससे पहले किसी और के साथ हुई हो।

अगस्त में हमारी मँगनी हुई और इसी मास हमने विवाह कर लेने का निर्णय कर लिया। मेरे भाई इस निर्णय से प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि यह आतुरता में हो रहा है। लोगों की मान्यता थी कि रमजान की समाप्ति और बकरीद के मध्य के दो मास दस दिन की अवधि में शादी करना अशुभ होता है। मेरे भाई ने इसका लाभ उठाते हुए इस आशा में शादी स्थगित करने का सुझाव दिया कि आने वाले समय में मेरा मन परिवर्तित हो जाएगा, परंतु मैं बकरीद के तुरंत पश्चात् शादी करने पर अड़

गई। लत्ताकिया में जहाँ जिस चिकित्सालय में मैंने सेवा आरंभ की थी, उसी के निकट एक छोटा सा सुसज्जित अपार्टमेंट भाड़े पर ले लिया। 10 अक्टूबर को मित्रों व परिजनों के साथ एक छोटा सा उत्सव कार्यक्रम करने के पश्चात् हमने उनसे विदा ली और नए जीवन का आरंभ करने बानियास निकल गए।

मेरे पति ने लत्ताकिया विश्वविद्यालय में वही नौकरी कर लिया जो वो अलेप्पो विश्वविद्यालय में करते थे। यहाँ वो इतना कमा लेते थे कि घर का भाड़ा दे सकें और मूल आवश्यकता की कुछ वस्तुएं ला सकें। यदा-कदा मैं अपने परिवार से भी सहायता लेती थी। विवाह के तुरंत पश्चात् पता चला कि मैं गर्भवती हूँ और तब मैं चिंता के मारे व्याकुल हो उठी। हम दोनों के समक्ष यह नई समस्या आ खड़ी हुई, क्योंकि अभी हमारी स्थिति ऐसी नहीं थी कि अभिभावक बनने का दायित्व निभा पाते। मैंने गर्भपात कराने का निर्णय किया, किंतु मेरी अम्मी बीच में आ गईं और कहने लगीं कि यदि ऐसा कुछ किया तो मेरा मरा मुंह देखोगी। तब मेरे पास गर्भ में पल रहे उस संतान को जन्म देने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं बचा। सीरियाई समाज में निजता जैसा कुछ नहीं होता है और वहाँ निर्णय अकेले नहीं लिए जा सकते हैं; परिवार व समाज दोनों के विचारों का ध्यान रखना पड़ता है।

कुछ भी हो, पर विवाह ने मुझे अपने परिवार और समाज के दबाव से आंशिक मुक्ति तो प्रदान की ही। इस्लाम में शौहर बीवी को वैसे ही रखता है, जैसे कि घर में फर्नीचर रखता है। मेरी अम्मी यह बात भली-भाँति जानती थीं और क्योंकि हमें मायके से वित्तीय सहायता की आवश्यकता पड़ती रहती थी तो हमारे परिवार में अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए उन्होंने इस बात का लाभ उठाया, और वो अपने उद्देश्य में सफल रहीं। मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि जब उस गर्भ के परिणामस्वरूप मैजन जन्मा तो उन्होंने पूरी सहायता की। मैंने एक माह के रोजा आरंभ होने के पहले दिन 1 अगस्त, 1981 को मैजन को जन्म दिया। संयोगवश मेरे भाई उसी दिन मुझसे मिलने आए थे, और तब उन्हें पता चला कि मैं

चिकित्सालय में प्रविष्ट हूँ और प्रसव में समस्या होने के कारण चिकित्सकों ने मेरी सीजैरियन सर्जरी करने का निर्णय किया है।

सर्जरी के पश्चात्, जब मैं सर्जरी कक्ष से अपने वार्ड में लाई जा रही थी और अभी भी अर्द्धमूर्छा की अवस्था में थी, वह वहाँ आए और मेरे माथे को चूम लिया, तत्पश्चात् परिहास में बोले, "इससे दुखी न हो कि तुम्हारी सर्जरी हुई है। तुमने पुत्र जन्मा है और वह पुत्र अपने मामा के समान ही सुंदर है।"

मैं अभी उनसे कुछ कह पाती कि वो वहाँ से निकल गए, क्योंकि इससे पहले कि बस केंद्र बंद हो जाए उन्हें बानियास की बस पकड़ने वहाँ पहुँचना था। उस दिन वो चिकित्सालय से निकले और इसके पश्चात् मैं उन्हें कभी न देख सकी। भाग्य की विडम्बना ही कहेंगे कि एक ओर देता है तो दूसरी ओर छीन लेता है। भाग्य ने मुझे मैजन दिया, पर बड़े भाई मुहम्मद को ही अकस्मात् छीन लिया। उस दिन वो घर पहुंचे ही थे कि दस मिनट के भीतर हृदयाघात से संसार छोड़कर चले गए। वो मात्र चौवालीस वर्ष के थे।

मुहम्मद की मृत्यु से मुझे गहरा आघात लगा और मैं दुख के सागर में डूब गई, परंतु यही वह समय था जिसने मुझे मेरे पारिवारिक व सामाजिक बंधन से मुक्त कर दिया। वो एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें मैं स्नेह करती थी, जिनका आदर करती थी, जिनके लिए मैंने कितनी बार सामाजिक कार्यक्रमों में जाने का विचार त्याग दिया था कि मैं उनके साथ अपने संबंध को बचाए रख सकूं। उनके जाने के पश्चात् ऐसा कोई नहीं था जिसके विषय में यह चिंता करूं कि वह क्या कहेगा। यद्यपि वो मुझ पर कुछ भी करने का सीधा दबाव नहीं डालते थे, परंतु शादी के पश्चात् तक मैं यही भाव रखती थी कि मुझे वही सब करना चाहिए जिससे भाई को प्रसन्नता मिले। मैं जानती थी कि उन्हें कौन सा कार्य प्रिय है और कौन सा अप्रिय, और मैंने उन्हें प्रसन्न रखने का पूरा प्रयत्न किया। अपनी शादी और उनकी मृत्यु के पश्चात् मैं बाध्यताओं से अपेक्षाकृत मुक्त हो गई थी। मैं

अपने दूसरे भाइयों के विचारों को बहुत महत्व नहीं देती थी, विशेष रूप से अब जब मैं विवाहित थी और इस्लाम की दृष्टि में अपने पति की अनन्य संपत्ति हो चुकी थी तो मेरे लिए उनकी बातों का वैसे भी कोई अर्थ नहीं रह गया था।

अपने परिवार से दूर मुराद के पास रहते हुए मुझे पांच वर्ष से अधिक समय हो चुका था। इससे मुझे अपने विषय में चिंतन करने का अवसर मिला और अब एक सीमा तक मेरे व्यक्तित्व का निर्माण हो चुका था। विवाह के पश्चात् मुराद के साथ मेरा घरेलू जीवन और घर से बाहर का जीवन भिन्न था। अपने आसपास के वातावरण से बचते-बचाते हमने दूसरे लोगों से भिन्न विश्वास-तंत्र निर्मित किया और हम दोनों ने अपने को एक-दूसरे तक ही सीमित रखा।

मैं पढ़ने को लालायित रहती थी और जिस वैचारिक कारावास में मैं बेड़ियों में जकड़ी हुई थी, उससे बहुत दूर जाकर पश्चिमी जीवन के विषय में बताने वाली प्रत्येक बात जानने को उत्सुक रहती थी। मेरी बहन की एक मित्र सरकारी पुस्तकालय में कार्यरत थी। मैं उसके माध्यम से अनेक पुस्तकें उधार ले आती थी, और लंबे समय तक मेरी ऐसी वृत्ति रही कि उन पुस्तकों के लेखों की छायाप्रति कराकर रखती रहती थी। मेरे पड़ोस में एक लेबनानी मूल का व्यक्ति रहता था। जब वह अपने मूल देश जाता तो वहाँ से चोरी-छिपे बहुत सी ऐसी पुस्तकें ले आता जो मुझे चाहिए होती थीं। इसके बदले मैं उसका और उसके परिवार का नि:शुल्क उपचार करती थी।

एक बार उसने मुझे अब्दुल्लाह अल-कासिमी नामक सऊदी लेखक व विचारक की दो पुस्तकें लाकर दी। सऊदी में उन्हें अपराधी घोषित कर दिया गया था। किसी प्रकार वो वहाँ से भागकर पश्चिम पहुंचे और उसके पश्चात् उनका क्या हुआ कोई नहीं जानता। जब मैंने उनकी दो पुस्तकें "द वर्ल्ड इज नॉट माइंड" और "यह ब्रह्मांड-इसकी आत्मा क्या है?" पढ़ीं तो मुझे बौद्धिक झटका लगा। इन पुस्तकों ने मुझे झिंझोड़ दिया। मेरे पति और मैं अल-कासिमी के विचारों के विभिन्न पक्षों पर नित्य विमर्श करने

लगे, जिन-जिन पक्षों से हम सहमत थे उन पर गहराई से चिंतन करने लगे। किसी को भनक तक नहीं लगने दी कि हम लोग क्या पढ़ रहे हैं, इस भय से कि कहीं इस्लाम छोड़ने का आरोप न लग जाए। मुझसे अधिक मेरे पति उन पुस्तकों की बातों को ग्रहण कर रहे थे। जैसा कि आज के अधिकांश मुस्लिम करते हैं, वैसे ही मैंने भी मजहबी आस्था के आधार पर सब कुछ की व्याख्या करने का प्रयास किया, ऐसी मजहबी आस्था जिसमें विरोधाभास देखने की बात सोचने से भी मुझे भय लगता था। मेरा मानना था कि मुस्लिम देशों में जो कमियां हैं, उसका कारण इस्लाम नहीं है, अपितु लोगों द्वारा की गई इस्लाम की व्याख्या इसका उत्तरदायी है। इस बिंदु पर मेरे पति मुझसे सहमत तो नहीं थे, किंतु इस पर हमारे मध्य मतभेद भी इतने गंभीर नहीं थे कि वह हमारे प्रेमपूर्ण मैत्री संबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले, और वैसे भी हम दोनों एक-दूसरे के विचारों का बहुत सम्मान करते थे।

मैं ऐसे समाज में रहती थी, जहाँ यह प्रश्न करना अपराध माना जाता था कि ये वर्जनाएं क्यों हैं, इनके पीछे क्या तर्क हैं। इसीलिए आरंभ से ही मेरे पति को लगता था कि मेरा यह विचार कि दोष इस्लाम में नहीं मुसलमानों में है, मुझे संभवतया उस दुष्परिणाम से बचाएगा जो ऐसे समाज में रहने के कारण मुझे भुगतना पड़ सकता था। यही कारण था कि वो मेरे इस विचार पर आपत्ति नहीं प्रकट करते थे। सामाजिक कार्यक्रमों में जब मुराद लोगों से पारस्परिक संवाद में लिप्त होते थे तो मैं एक विश्वसनीय पहरेदार की भाँति उन पर दृष्टि गड़ाए रहती थी और उनकी एक-एक बात सुनती रहती थी, और जहाँ मुझे लगता कि अब वार्तालाप खतरनाक दिशा में जाने वाला है तो तुरंत बीच में आकर उनकी टिप्पणियों को ठीक करती थी। वैसे मैं सदैव इस बात का ध्यान रखती थी कि अपनी सीमा न लाघूँ, इसलिए मुराद सुरक्षित अनुभव करते थे, क्योंकि उन्हें पता होता था कि जब भी बात नियंत्रण से बाहर जा रही होगी तो मैं उनके बचाव में उतर जाऊंगी। उनका बचपन और जीवन की परिस्थितियां ऐसी रही थीं कि वो

सहजता से समझ गए कि समस्या इस्लाम में ही है और मुसलमान अपने मजहब के ताने-बाने के पीड़ित हैं।

मैं विवाह के पांच वर्ष की अवधि में शनै: शनै: चिंतन के भिन्न स्तर पर पहुँच गई थी, वह स्तर जहाँ मैं अपनी मुस्लिम मान्यताओं व संस्कृति की सत्यता के विषय में प्रश्न पूछने की स्थिति में आ गई थी और अपने प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने का प्रयास करने लगी थी। हम दोनों पर पुस्तकों में खो जाने का ऐसा धुन सवार हो चुका था कि मानो वह पुस्तक न होकर अफीम हो। अल-कासिमी ने अल्लाह के अस्तित्व को नकारते हुए इस्लाम पर प्रश्न उठाए थे और उन्होंने इस प्रकार व्याख्या की थी कि बंद मस्तिष्क वाला व्यक्ति भी वास्तव में सोचने पर विवश हो जाए। वो अरबी में उत्कृष्ट दक्षता वाले मौलिक व रचनात्मक लेखक थे। ऐसी सुंदर लेखन शैली थी उनकी कि कृतियां पढ़ने में रोचक और समझने में सुगम होती थीं। उनकी लेखन शैली का ही प्रभाव था कि पाठक ठीक उस बिंदु पर पहुँच जाते थे जहाँ वे उनकी बात से सहमत हुए बिना नहीं रह पाते थे, कम से कम अकेले में, तो वे उनकी बात से सहमत होते ही थे। वो इस्लाम की जन्मस्थली सऊदी अरब से थे और इस कारण उन्हें एक प्रकार की प्रामाणिकता मिली। उनकी पुस्तकें सरलता से उपलब्ध नहीं थी, किंतु हमने किसी जतन से उनकी पुस्तकों की कुछ प्रतियां प्राप्त कीं और उन्हें साझा किया। मुझे स्मरण होता है कि कभी मैं जिस चिकित्सालय में कार्य करती थी, वहाँ बीस-बाईस बरस की एक युवती आती थी और एक बार वह मुझे चुपके से बताने लगी कि उसने अल-कासिमी की रचनाओं को पढ़ा है। वह युवती पूछने लगी कि मैं उसे पढ़ने के लिए अल-कासिमी की पुस्तक उधार दे सकती हूँ क्या। मैंने उस पुस्तक को अपने एक वस्त्र में लपेटकर छिपाते हुए उसे दे दिया। आसपास के लोगों को संदेह न हो, इसलिए मैंने लोगों को सुनाते हुए थोड़े ऊंचे स्वर में कहा, "ले जाओ और अपनी बहन की शादी में इसे पहनना, पर कार्यक्रम हो जाने के पश्चात् लौटा देना।"

मेरे बौद्धिक पुनर्गठन में मिस्र के चिकित्सक नवाल अल-सादवी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि अल-सादवी की पुस्तकों पर उतना कठोर प्रतिबंध नहीं लगा था, जितना कि अल-कासिमी की पुस्तकों पर लगा था, परंतु समाज के अधिकांश वर्ग द्वारा सादवी की पुस्तकों का बहिष्कार किया गया था। अल-सादवी मेरी संरक्षक बन गईं और उनकी पुस्तकों ने मुझे भविष्य को लेकर यह आशा की किरण दिखाई कि हमारे समाज के सापेक्ष वर्तमान से बढ़कर कुछ भी अच्छा नहीं होगा। जब उनकी पुस्तक 'नारी स्रोत है' पढ़कर समाप्त किया, तो मुझे ऐसा लगा कि मानो किसी मादक पदार्थ के प्रभाव से उत्पन्न मूर्छा से बाहर आई हूँ। एक ऐसे समाज में किसी लेखक के लिए यह कह पाना सरल नहीं था कि नारी ही बीज अर्थात ऊर्जा का स्रोत है, जहाँ मुहम्मद के इस आदेश को माना जाता हो कि यदि नमाज पढ़ते समय कोई श्वान (कुत्ता) या नारी पास से होकर चली जाए तो नमाज व्यर्थ चली जाती है और स्वीकार नहीं होती है।

डॉ अल-सदावी उसी समाज में रहती थीं, जिसमें मैं रहती थी- एक ऐसा समाज जो न केवल यह मानता है कि नारियां गंदी होती हैं, अपितु यह भी कहता है कि जो ऐसा नहीं मानेगा वह काफिर है और ऐसे लोगों की हत्या कर दी जानी चाहिए। ऐसे समाज में डॉ अल-सादवी के लिए अपने तर्क को सिद्ध करना सरल नहीं था और न ही मेरी जैसी महिलाओं के लिए उनके विचार को ग्रहण कर पाना सरल था। जहाँ तक मेरी बात है तो मेरे लिए डॉ अल-सादवी आज भी आदर्श व्यक्तित्व हैं और उदाहरण हैं। मैं यह स्वीकार करती हूँ कि आज मैं जो कुछ हूँ, उसे बनाने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

1984 में मेरे पति उस सीरियाई प्रतिनिधिमंडल के सदस्य थे जिसे अध्यापन पद्धति का अध्ययन करने के लिए ब्रिटेन भेजा गया था। उस समय वह सीरिया के तिशरीन विश्वविद्यालय के कृषि संकाय में व्याख्याता थे। उनका यह भ्रमण कार्यक्रम हमारे जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाला एक और मोड़ था, क्योंकि अब वह पश्चिम की उन बातों को

व्यवहारिक जीवन में साक्षात उतार सकते थे, जो अब तक हमने केवल पुस्तकों में पढ़ा भर था। वह ब्रिटिश समाज को देखकर ऐसे अचंभित हुए कि मानो कारागार की भित्तियों के पीछे बंद कोई व्यक्ति बाहर आकर पहली बार खुले संसार को देख रहा हो।

उन्होंने मुझे एक गुप्त संदेश भेजकर कहा: "मैजेन को लेकर ब्रिटिश दूतावास जाओ और सब कुछ छोड़कर वहाँ से निकल आओ! यहाँ जीवन भिन्न है, पर अभी मैं तुम्हें विस्तार से कुछ नहीं बता सकता।" स्वाभाविक था कि मैंने ऐसा कुछ करने से मना कर दिया। मैं जानती थी कि वो इंग्लैंड में सीरिया सरकार के धन पर थे और वीजा अवधि समाप्त होने पर उन्हें वापस आना पड़ेगा। मैं यह भी जानती थी कि उनके पास ऐसी कोई दक्षता नहीं है कि वहाँ रुककर नए सिरे से जीवन का आरंभ कर सकें। वो तीन मास तक ब्रिटेन में रहे और, तब, मेरे अनुरोध पर सीरिया वापस लौट आए। ब्रिटेन में मिला अनुभव उनके जीवन पर छा गया था और जिस दिन से वो वापस आए थे, वहीं की बात करते रहते थे। इसके चार वर्ष पश्चात् तक, जब तक कि हम अमरीका चले नहीं गए, वो दिन-रात ब्रिटेन के जीवन, समाज, वहाँ के अनुभव ही बताते रहे।

तीन मास के ब्रिटेन प्रवास से उन्हें गहराई से यह भान हो गया कि मुस्लिम समाज में रहने वाले लोग एक ऐसे मत के दास हैं, जो न तो लोगों का सम्मान करता था और न ही लोगों के विचारों को कोई महत्व देता था। कुछ कारणों से मैं उनके इस विचार से असहमति प्रकट करती रही, और इस बात पर बल देती रही कि समस्या इस्लाम में नहीं, अपितु इस्लाम को मानने वालों में है।

आज जब मैं पीछे मुड़कर देखती हूँ और अपनी इस धारणा को समझने का प्रयास करती हूँ, तो पाती हूँ कि मेरी इस धारणा के पीछे कोई ठोस तर्क नहीं था। मैं इस धारणा को मात्र इसलिए पालकर बैठी थी कि उस समाज में मेरे जीवित और सुरक्षित रहने की इच्छा की पूर्ति की संभावना इसी में दिखती थी।

अनजाने में ही सही, पर हमारी नई धारणाओं ने हमारी जीवन शैली को प्रभावित करना आरंभ कर दिया। अब हम किसी मजहबी परंपरा का पालन नहीं करते थे और रमजान के माह में परिवार के सदस्यों से मिलने जाने से बचने का प्रयास करते थे। इसके अतिरिक्त हमारा नया दृष्टिकोण एक-दूसरे के साथ हमारे व्यवहार को भी अब प्रभावित करने लगा था। हमारे अधिकांश परिचित मुझ पर आरोप लगाने लगे कि मैं निरंकुश महिला हूँ और मेरे पति दब्बू हैं। मुस्लिम समाज में जब कोई पति अपनी पत्नी से सम्मानजनक व्यवहार करता है और उसके विचारों को सुनता है, तो वह पति दुर्बल और पत्नी प्रभुत्व दिखाने वाली मानी जाती है। जब भी अम्मी मेरे यहाँ आती थीं तो पति के साथ मेरा व्यवहार देखकर क्षोभ प्रकट करती थीं। उदाहरण के लिए, यदि हम भोजन करने बैठे हैं और मैंने पति से पानी का गिलास मांग लिया तो मेरी अम्मी की भौंहें तन जाती थीं। वो उस वातावरण में जीवन बिताने की अभ्यस्त थीं, जहाँ बीवी भूखी-प्यासी रहकर शौहर की प्रतीक्षा करती रहे और जहाँ बीवी अपने लिए शौहर से कुछ भी करने को नहीं कह सकती थी। इस बात पर मैं अपनी अम्मी से बातों-बातों में भिड़ जाती थी और वो पैर पटक कर यह कहते हुए घर से निकल जाती थीं कि दोबारा वहाँ कभी नहीं आएंगी।

अपने पति से मैं जिस प्रकार व्यवहार करती थी उसको लेकर मेरे दोनों भाई भी कम आलोचना नहीं करते थे, और कभी उपहास में तो कभी गंभीर होकर मेरे पति को दास की संज्ञा देते थे। मेरे पति सदाशयता में उनकी उपहासजनक बातें सुन लेते और तब कहते कि वफा महिला है तो क्या हुआ, उसके साथ भी अच्छा व्यवहार होना चाहिए। हमारी "विचित्र" धारणाएं- जैसा कि दूसरों को लगता था- हमारे और उन लोगों के बीच दूरियां उत्पन्न करने लगीं और कभी-कभी तो हम पर मार्क्सवादी होने का आरोप मढ़ दिया जाता था, क्योंकि लोगों का मानना था कि जो इस्लाम से दूर हुआ वह नास्तिक वामपंथी ही बनेगा।

मैंने 1981 में मैजन के जन्म के तीन मास पश्चात् चिकित्सा महाविद्यालय से उपाधि प्राप्त की और तुरंत मुझे राजधानी से दूर एक पहाड़ी गाँव में चिकित्सक का पद भी मिल गया। यह गाँव सबसे निकटतम प्राथमिक चिकित्सा केंद्र से 60 किलोमीटर दूर था। मैं अपने पति के साथ "किंसेब्बा" नामक इस गाँव में रहने चली आई और एक स्थानीय शेख मुहम्मद के यहाँ घर भाड़े पर लिया। वह मस्जिद की देखरेख करता था, अजान देता था और हमारे घर के पीछे एक छोटे से कक्ष में रहता था।

शेख की बीवी और सात बच्चे दूर किसी और नगर में रहते थे। उसके कुछ बच्चे विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे। उन लोगों का उस शेख से संबंध अच्छा नहीं था इसलिए वे ग्रीष्मावकाश में अल्प समय के लिए उसके पास आते थे। वह शेख प्रसन्नचित्त रहने वाला और विनोदी स्वभाव का व्यक्ति था। उससे हमारा मित्रवत् संबंध बन गया। हम लोग उसके साथ घंटों बैठे रहते और कभी कुछ हल्के-फुल्के विषय पर तो कभी हास-परिहास में इस्लाम व इसकी शिक्षाओं पर बात किया करते थे। वह प्राय: कहा करता था: "मेरा विश्वास करो, यदि उन्होंने मस्जिद के शेखों का वेतन देना बंद कर दिया तो पूरे सीरिया में एक भी मस्जिद खुली नहीं मिलेगी!" मुझे जाड़े का वह दिन स्मरण होता है, जब बीती रात गाँव में बिजली गिरी थी। अगले दिन प्रात: शेख को पता चला कि मस्जिद की मीनार और उस पर लगा ध्वनि विस्तारक क्षतिग्रस्त हो गया है। वह प्रसन्न मुद्रा में हमारे पास आया और परिहास करते हुए कहने लगा, "अल्लाह का धन्यवाद कि मुझे अवकाश दिया। अब जब तक मस्जिद ठीक नहीं हो जाती, अजान देने के झंझट से मुक्ति रहेगी।"

वह मुझे और मेरे पति को अपनी संतान की भाँति मानता था, हम पर विश्वास करता था और अपना अच्छा-बुरा सब बताता था। उसने मुझे अनेकों बार बताया था कि कैसे जब वह पुलिसकर्मी था तो उत्कोच लेता था, कैसे पूछताछ में लोगों को कक्ष में बंद करके पीटता था। कुछ समय पश्चात् उसने पुलिसकर्मी की सेवा छोड़ दी और ट्रक चालक बन गया। वह

बताता था कि जब वह ट्रक में वस्तुओं को लेकर जाता था, तो कैसे कुछ वस्तुएं पार कर देता था। उसने कुछ समय एक वेश्यालय के चौकीदार का भी काम किया और अंतत: जब उसके बीवी-बच्चों ने उसे छोड़ दिया तो वह अपने पैतृक गाँव लौट आया। उसने पश्चाताप किया और ईश्वर से क्षमायाचना की, तत्पश्चात् गाँव का शेख बन गया। उसका हास-परिहास किसी भी रूप में ओछा नहीं होता था, अपितु जब से हम लोग उससे मिले थे, उसके मन के भीतर चल रहा झंझावात उस हास-परिहास में छलक उठता था।

उसके साथ हमारी मित्रता ज्यों-ज्यों प्रगाढ़ हो रही थी, मन में उलेमा वर्ग की गंभीरता को लेकर संदेह और बढ़ता जा रहा था, और उसके साथ वार्तालापों में हम हास-परिहास का निमित्त बनाकर उन विषयों पर भी बात करने लगते थे जो निषिद्ध थे। वह किसी भी दृष्टि से अज्ञानी नहीं था और संवाद कला में परिपूर्ण था। वह आरंभ से ही जान गया होगा था कि हम लोग हास-परिहास का हेतुक लगाकर सत्य तक पहुँचना चाहते हैं। उसके मन में इस्लामी शिक्षाओं की सत्यता पर कभी एक क्षण के लिए भी संदेह नहीं रहा। यद्यपि, वह प्रश्नों का सीधा उत्तर न देकर केवल यह कहकर बच निकलने का प्रयास करता था कि अल्लाह ही जानता है, और हमारे मन में यह संदेह जगा देता था कि वह जो मानता है, उसको लेकर वह स्वयं ही संतुष्ट नहीं है। इस विषय में वह अन्य शेखों से भिन्न था, क्योंकि अन्य शेख डींगें हांकते रहते थे कि केवल वे ही परम सत्य जानते हैं।

तीन वर्ष तक उसके साथ वाले घर में रहने के पश्चात् जब हमने वह गाँव छोड़ा, तो हमारे पास सैकड़ों अनुत्तरित प्रश्न थे। उसके साथ मित्रता ने हमारे संदेह को तो बढ़ाया ही, साथ ही हमारे मन में सत्य को जानने की इच्छा भी प्रबल कर दी। यद्यपि, इस्लाम को लेकर हमारा विश्वास भले ही भंगुर हो चुका था, परंतु अब भी मैं इस्लाम के साथ अपने संबंधों को बनाए रखने का प्रयास कर रही थी।

इस्लाम की सच्चाई पर संदेह का एकमात्र स्थानीय कारण शेख मुहम्मद ही नहीं था। उस गाँव में रहते हुए मुझे एक और चुनौती का सामना करना पड़ा। यह आदिम ग्रामीण समाज यह नहीं स्वीकार कर पाता था कि कोई महिला भी चिकित्सक होने की क्षमता रखती है। पहले वर्ष मैंने संयम और धीरज रखकर ग्रामीणों, और विशेष रूप से महिलाओं का, विश्वास जीतने का प्रयास किया। रात में हमारा घर आपातकालीन चिकित्सा कक्ष बन जाता था। मध्य रात्रि में कोई किवाड़ खटखटा देता और हमारी नींद टूट जाती कि कोई पुकार रहा होता, "डॉ. मुराद, कृपया किवाड़ खोलिए, हमें वफा की आवश्यकता है।" मेरे पति चिकित्सक नहीं थे, परंतु ग्रामीण उन्हें डॉक्टर ही बुलाते थे और मुझे मेरे नाम के पहले शब्द से पुकारते थे।

क्योंकि वे लोग मुझ पर विश्वास करते थे, तो मैं उनके घरों में सूरज निकलने से पहले ही पहुँच जाती थी, और उनके बंद किवाड़ों के पीछे के रहस्यों का प्रत्यक्ष अनुभव करती थी। मैं वहाँ जो देखती, उससे दुखी और व्याकुल हो उठती थी तथा मेरा मन उन सबका विरोध करने को उद्विग्न हो उठता, परंतु अपने जीवन के भय के कारण चाहकर भी मेरी जिह्वा उन अन्यायपूर्ण बातों के विरोध में मेरा साथ नहीं देती थी।

रमजान के माह में मुसलमान सूर्योदय से सूर्यास्त तक न कुछ खाते हैं और न कुछ पीते हैं। यह मास मेरे लिए सबसे कठिन होता था। जिस चिकित्सा केंद्र में मैं कार्यरत थी, वहाँ अन्य दिनों की अपेक्षा इन दिनों में उपचार के लिए आने वालों की संख्या अधिक होती थी। दिन के समय चिकित्सा केंद्र ऐसे लोगों से भरा होता था, जो थकान और शरीर में जल की कमी के कारण मूर्छित हो गए होते थे, और रात में ऐसे रोगियों की संख्या अधिक होती थी जो अपच और उल्टी के पीड़ित होते थे, क्योंकि वे रोजा के समय कुछ न खाने की प्रतिपूर्ति करने के प्रयास में पेट में ठूंस-ठूंस कर भोजन भर लेते थे। पुरुष और स्त्रियां दोनों ही प्रात: शीघ्र ही खेतों में काम करने लग जाते थे और वहाँ विकट और नि:शेष कर देने वाला (थका देने

वाला) कठिन परिश्रम करते थे, और विशेष रूप से जब मौसम गर्म होता था तो बड़ी मात्रा में जल की आवश्यकता होती थी, परंतु रोजा रहने के कारण उन्हें पानी पीने की अनुमति नहीं होती थी। उनकी यह दशा देखकर मुझे उन पर दया आ जाती और मैं उन्हें, और विशेष रूप से महिलाओं को, समझाने का प्रयास करती कि रोजा न रहें, परंतु जब मैं देखती कि मेरे इस सुझाव पर वो मुझे तिरस्कार भरी दृष्टि से देख रहे हैं, तो अपना सुझाव वापस ले लेती।

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि पुरुष अपनी स्त्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार करते थे और ग्रामीण क्षेत्रों में तो स्त्रियों का और भी भयानक शोषण होता था। बहुत सी स्त्रियां तो खेतों में खुले में प्रसव कराती थीं। जब खेतों की जुताई कर रही औरत को प्रसव पीड़ा होने लगती, तो सहायता के लिए कभी-कभी मुझे बुलाया जाता। मैं वहाँ असहाय सी खड़ी रहती, और जब देखती कि ऐसे घोर अन्याय को रोकने के लिए मैं कुछ कर पाने में असमर्थ हूँ, तो मेरा मन क्रोध से भर जाता। कभी-कभी चिकित्सक का अधिकार दिखाते हुए पुरुषों पर चीख पड़ती, "तुम्हें तनिक भी अपराध बोध नहीं होता है?", पर वे मेरी बात को हँसी में उड़ा देते और मेरे प्रश्न को गंभीरता से नहीं लेते।

यद्यपि, मेरी चिंता का कारण यह नहीं था कि खेती के काम में महिलाओं का शोषण होता था। खेतों में उनका जो यौन-शोषण होता था, उससे मैं अधिक चिंतित थी। क्योंकि मैं स्वयं एक महिला थी, तो मुझे ऐसे बहुत से प्रकरण जानने के अवसर मिले, जो कोई पुरुष चिकित्सक कभी न जान पाता। यद्यपि, उस क्षेत्र में यौन शोषण होना सामान्य बात थी, किंतु इसका पूरा प्रयास किया जाता था कि यह अन्याय दूसरा कोई जान न सके। उन महिलाओं के प्रति सहानुभूति दिखाकर मैं उनका विश्वास जीतने में सफल रही थी और उन महिलाओं ने मेरे सामने ऐसे-ऐसे रहस्य उजागर किए थे, जो संभवत: उनकी मृत्यु तक कोई और न जान पाता। बहुतों के साथ बलात्कार हुआ था, और अधिकांश अपने ही परिवार के आदमियों की

वासना की आखेट बन गई थीं। सामान्यत: उनके अब्बा ही उनका बलात्कार करते थे। बलात्कार के कारण जिन अविवाहित लड़कियों को गर्भ ठहर जाता था, उनकी शारीरिक स्थिति ज्यों ही ऐसी होने लगती थी कि दूसरों को इसका पता चल जाए, तो अपना पाप और अनाचार छिपाने के लिए परिजन ही उनकी हत्या कर देते थे। अनेक प्रकरणों में तो बलात्कारी ही हत्यारा होता था। सेब के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध उस क्षेत्र में बलात्कार की पीड़ित कुछ लड़कियों को जानबूझकर वह कीटनाशक पिला दिया जाता था, जो कीटों से बचाने के लिए सेब के वृक्ष पर छिड़का जाता था। ऐसी पीड़िताओं के मृत्यु प्रमाणपत्र में लिखा होता था: "प्राकृतिक कारणों से मृत्यु"। इन महिलाओं का मृत्यु प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए किसी चिकित्सक की आवश्यकता नहीं होती थी। इसके लिए गवाह ही पर्याप्त होते थे।

उस गाँव में जितने समय मैंने सेवा दी, मेरा हृदय वेदना से चीत्कार करता और मैं क्रोध में तपती रही। तीन वर्ष पश्चात्, जब मैं वहाँ से लत्ताकिया लौटकर आई, तो एक ऐसी परिपक्व महिला बन चुकी थी जो अपने समाज में हो रहे मानव अधिकारों के हनन का पर्याप्त अनुभव कर चुकी थी।

अध्याय 7

स्वतंत्रता की ओर पहला पग

वर्ष 1980 के समाप्त होते-होते विश्व ने कहना आरंभ कर दिया कि सीरिया आतंकवाद का समर्थन कर रहा है; इसका नाम अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद सूची में सम्मिलित करते हुए इस पर कठोर आर्थिक प्रतिबंध लगा दिए गए। मुझे ध्यान आता है कि यही वो समय था, जब सीरियाई पासपोर्ट धारक एक युवा फिलिस्तीनी ने अपनी महिला मित्र के सूटकेस में तब बम रख दिया था जब वह लंदन विमानपत्तन पर विमान में सवार हुई। जब उसका यह कृत्य पकड़ लिया गया, तो वह लंदन स्थित सीरियाई दूतावास में छिप गया और उसे पकड़ने के लिए ब्रिटिश पुलिस को दूतावास में घुसना पड़ा था। इस घटना के पश्चात् सीरिया ने ब्रिटेन से राजनयिक संबंध समाप्त कर लिया और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ इसके संबंध संकटपूर्ण हो गए।

आर्थिक प्रतिबंधों ने सीरिया पर अपना प्रभाव दिखाना आरंभ कर दिया और अस्सी के दशक के अंतिम चार वर्षों में वहाँ जीवन असहनीय नर्क के समान हो गया। एक ओर सीरियाई मुस्लिम समाज का वैचारिक अत्याचार बढ़ रहा था, तो दूसरी ओर युवाओं पर इसकी निरंकुश सत्ता का ऐसा कोप हो रहा था कि वे जीने के लिए किसी दूसरे देश में शरण लेने पर विवश हो रहे थे। देश की आर्थिक स्थिति निरंतर गिरती जा रही थी और इसने आग में घी का काम किया। जनता अपने को तिरस्कृत और सताई हुई अनुभव करने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनमें दूसरे देशों में चले जाने की इच्छा और प्रबल होने लगी।

मेरे पति दमाकस में स्थित प्रत्येक दूतावास के बाहर रात-रात भर प्रतीक्षा कर किसी दूसरे देश का वीजा प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे और

एक-एक करके दूतावास हमारे आवेदन को अस्वीकार कर रहे थे। हम हताश होते जा रहे थे। सभी विदेशी दूतावास राजधानी दमाकस में थे। उन्होंने दूतावासों में वीजा आवेदन लगाने के लिए राजधानी दमाकस आने-जाने में अपनी कमाई का अधिकांश भाग लगा दिया था। एक दूतावास से आवेदन अस्वीकार होता तो किसी दूसरे महावाणिज्यिक दूतावास में आवेदन देने के लिए वहीं किसी होटल में रुक जाते। किसी और देश में जाकर रहने के लिए बार-बार किए जा रहे असफल प्रयास और यात्राओं से मैं अधीर हो रही थी, क्योंकि इस काम में हमारी आय का अधिकांश भाग चला जा रहा था। किंतु, जब भी मैं उनसे इस विषय में बात करती तो वो आशान्वित ढंग से कहते, "मैं पूरे मन से यह समझ चुका हूँ कि यह देश हमारे लिए नहीं है। संसार में कोई और स्थान है, जो हमारे रहने के लिए अधिक उपयुक्त होगा।"

मई 1988 में एक चमत्कार हुआ। मेरे पति की वह बात सच हो गई कि हमारे लिए कोई और देश प्रतीक्षा कर रहा है, जो हमारे लिए अपनी जन्मभूमि से कहीं अधिक उपयुक्त है। उन्हें संयुक्त राज्य अमरीका का वीजा मिल गया और उन्होंने सीरिया छोड़ दिया। इसके आठ मास पश्चात्, मैं भी अमरीका चली गई। आठ मास तक जब हम एक-दूसरे से दूर थे, तो वो सप्ताह में दो बार मुझे पत्र भेजा करते थे। उन पत्रों में वो विस्तार से बताते थे कि उन पर अमरीकी समाज का क्या प्रभाव हुआ है। मेरे पास अभी भी वो पत्र सुरक्षित रखे हैं। एक पत्र में उन्होंने लिखा, "आज मैंने देखा कि एक अमरीकी महिला विद्युत खंभे पर चढ़कर तार ठीक कर रही थी- क्या आप मानेंगी?" एक और पत्र में उन्होंने मुझे बताया, "आज मैंने टीवी पर देखा कि किस प्रकार अमरीकी आपात सेवा के कर्मियों ने गड्ढे में गिरी एक छोटी सी बिल्ली को बचाया। दो घंटे तक वे कर्मी प्रयास करते रहे और जब उस बिल्ली को बचा लिया, तो वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्नता से झूम उठा और तालियां बजाने लगा।"

मैं जिस चिकित्सालय में कार्य करती थी, वहाँ के सहकर्मियों को वह पत्र पढ़ाया तो मुझ पर आरोप मढ़ दिया गया कि मैं अमरीकी समाज की चकाचौंध में खो गई हूँ और उस समाज के नैतिक क्षरण को अनदेखा कर रही हूँ। मैं कभी-कभी अकेले में विचार करती थी कि नैतिकता की हमारी अवधारणा क्या है और क्यों हम अमरीकी आपात सेवा कर्मियों द्वारा बिल्ली को सुरक्षित बाहर निकालने जैसे कार्य को नैतिक नहीं मानते? यह सोचकर मैं अचंभित हो जाती थी कि हमारे अपने देश में मनुष्यों के साथ जो बुरा व्यवहार होता है, उसकी तुलना में अमरीका में एक बिल्ली के साथ कहीं अच्छा व्यवहार होता है! मैं समझ नहीं सकी कि जब मेरे सहकर्मियों को अमरीका के विषय में कोई प्रत्यक्ष जानकारी नहीं है, तो वे वहाँ के समाज को नैतिक रूप से पतित क्यों कहते हैं? यदि अमरीका नैतिक रूप से पतित है, तो उसके दूतावास के सामने इतनी बड़ी संख्या में मेरे सहनागरिक वीजा पाने के लिए पंक्तिबद्ध होकर क्यों खड़े रहते हैं? मैं जानती थी कि मेरे इन प्रश्नों का उत्तर तभी मिलेगा, जब मैं अपने पति के पास अमरीका जाऊं और वहाँ के अनुभव को लिखूं।

मेरी पति जानते थे कि मुझमें जन्मजात लेखन कला है और अरबी भाषा में मेरी दक्षता असाधारण है। अपने पत्रों में वो मुझसे कहते रहते थे कि अमरीका का जीवन मुझे अरब संसार में महत्वपूर्ण लेखक की स्थिति दिला सकता है। मेरे मन में भी यह स्वप्न दिनोंदिन बड़ा होता जा रहा था और जिस प्रकार आसपास के लोग मेरे पति की अनुपस्थिति को लेकर कानाफूसी करते थे, उससे मेरी इच्छा और गहरी होती जा रही थी कि उस समाज को यथाशीघ्र छोड़कर निकल जाऊं, जहाँ मैं अपनी धार्मिक मान्यताओं और अपने वास्तविक जीवन के अनुभव में सामंजस्य नहीं बिठा पा रही हूँ।

दमाकस में अमरीकी महावाणिज्यिक दूतावास के सामने तीन दिन और तीन रात बिताने के पश्चात्, 15 दिसम्बर, 1988 को मुझे ईश्वर का उपहार मिला और मुझे अमरीका का वीजा मिल गया। पंक्ति में मेरे आगे

सिर से पांव तक बुर्के में लिपटी एक मुस्लिम महिला थी। वह कुरआन की आयतें पढ़ती जा रही थी, और कहती जा रही थी कि अल्लाह वीजा दिलवा दो। वह मेरी ओर मुड़ी और बोली, "बेटी, यह आयत पढ़ो, मेरा विश्वास है कि तुम्हारे मनोकामना पूर्ण होगी: 'अल्लाह एक है, हे अल्लाह, उनके मन और आँखों को अंधा बना दे'।" मैंने चकित होकर उसकी ओर देखा और पूछा, "आप क्यों चाहती हैं कि उनके मन और आंखें अंधी हो जाएँ?" उसने उत्तर दिया, "क्योंकि यदि वे सही बात जान जाएँगे, तो मुझे कभी वीजा नहीं देंगे। मेरी पति पहले से ही अमरीका में हैं और मैं उनके साथ रहने की योजना बना रही हूँ।"

मैंने आकाश की ओर सिर किया और प्रार्थना करने लगी, "हे ईश्वर, मुझे स्वतंत्रता के पथ पर पहुंचाओ, और मेरा आपको वचन है कि मैं दूसरों की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करूंगी।"

इसी मास 25 दिसम्बर को क्रिसमस की रात विमान ने मुझे लॉस एंजेल्स की धरती पर उतार दिया। वहाँ मेरे पति मेरा स्वागत करने के लिए खड़े थे। वो एक छोटे से अपार्टमेंट में रह रहे थे और उनकी पड़ोसी एक अमरीकी थीं। जब उन्होंने सुना कि वो मुझसे मिलने विमान पत्तन जा रहे हैं, तो उन्होंने अपने द्वार पर अमरीका के राष्ट्रीय ध्वज को लगा दिया और बोलीं, "अपनी पत्नी से कहिएगा कि अमरीका में उनका स्वागत है।"

जब मैंने वह ध्वज देखा, तो प्रसन्नता से अभिभूत हो गई और समझ गई कि क्यों मेरे पति की अमरीकी पड़ोसी डायना वह ध्वज फहरा रही थीं। उन्हें मेरे अरबी नाम के उच्चारण में कठिनाई होती थी, तो उन्होंने मुझे एक अमरीकी नाम दिया। वो मुझे पैम बुलाने लगीं। मुझे यह नाम अच्छा नहीं लगता था, क्योंकि अरबी में पी ध्वनि नहीं होती है, इसलिए जब हम यह नाम लेने का प्रयास करते थे तो पी के स्थान पर बी की ध्वनि निकलती थी। जब मैं इस नाम से अपना परिचय दूसरों के सामने देती थी, तो मेरे मुंह से मेरा नाम बैम निकलता था, और यह सुनकर डायना हँस पड़ती थीं। अपने जीवन में मैंने अंग्रेजी शब्दकोश खोलकर जो पहला शब्द

देखा था, वह बैम था, और जैसे ही मुझे समझ में आया कि इस शब्द का अर्थ होता है अकस्मात् कुछ हो जाना, तो मैं डायना के पास भागी-भागी गई और उनसे बोली, "डायना, मुझे अधिक अच्छा लगेगा कि आप मुझे बैम की अपेक्षा लीना बुलाएँ।" वह हँसने लगीं, और तबसे आज तक वह मुझे लीना ही बुलाती हैं। जब मैं इस घटनाक्रम को स्मरण करती हूँ, तो चौंक जाती हूँ कि क्या यह मात्र संयोग था। क्या मैं अकारण अपने को बैम कहने लगी थी, अथवा यह मेरा भाग्य था?

इसी सप्ताह मैंने कैलीफोर्निया राज्य विश्वविद्यालय के लाँग बीच, भाषा संस्थान में प्रवेश लिया। उस कक्षा में लगभग पंद्रह विद्यार्थी थे, जिसमें से एक मैं थी, अल-सल्वाडोर की एक महिला और यमन का एक युवक था तथा शेष विद्यार्थी जापानी थे। मैं वहाँ ऐसी थी मानो कोई ऐसा शिशु हो जिसे कोई नया खिलौना मिल गया हो। मैं इससे पूर्व अल-सल्वाडोर अथवा जापान के किसी व्यक्ति से नहीं मिली थी, यहाँ तक कि वायु मार्ग से सीरिया से दो घंटे की दूरी पर स्थित अरब देश यमन के भी किसी व्यक्ति को नहीं देखा था। मैं उन लोगों से परिचित होने पर अत्यंत प्रसन्न थी। जो टूटी-फूटी अंग्रेजी मुझे आती थी, उसके आधार पर मैंने उन लोगों से अल्प समय में ही इतना कुछ सीखा कि अपने मूल देश में कभी इतना नहीं जान पाई थी।

मुझे उतनी ही अंग्रेजी आती थी, जितनी कि चिकित्सा की पढ़ाई करते समय चिकित्सीय शब्दावलियां सीखी थी, परंतु तब भी भाषा सीखने के प्रति मेरी इच्छा आरंभ से ही प्रबल रही। मुझे स्मरण होता है कि एक बार शिक्षक ने हम सबसे लॉस एंजेल्स टाइम्स का एक पृष्ठ पढ़ने को कहा और इस पर परिचर्चा की। मैं लंबे समय तक उस समाचार पत्र को उलटती-पलटती रही कि कोई ऐसा लेख मिल जाए, जो पढ़ने और तैयार करने में सरल हो। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मैं उसके कैलेंडर भाग में पहुंची, तो मुझे वह स्तंभ: "डीयर ऐबी" मिला जिसे मैं ढूंढ़ रही थी। "ऐबी" पाठकों के पत्र लेती थी और उनकी समस्याओं का समाधान सुझाती थी। लोग मेरी इस

बात पर हँस सकते हैं, पर सच यही है कि "डीयर ऐबी" को पढ़कर आप अमरीका के विषय में बहुत कुछ जान सकते हैं। उन पाठकों की समस्याओं के अंबार को पढ़ते हुए मैं अमरीका के अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के बड़े सामाजिक विषयों को जानने लगी। ये पत्र भले ही समस्याओं से भरे होते थे, परंतु इन्हें पढ़ते हुए मुझे यह भी पता चलता था कि अमरीका में रहने के लाभ क्या हैं, और शनै: शनै: मुझे अमरीका के जीवन से प्रेम हो गया।

मुझे लगता है कि कम समय में किसी समाज की श्रेष्ठता को जानना है, तो सबसे पहले उसके लोगों की समस्याओं और उन समस्याओं को सुलझाने के उनके ढंग को जानना चाहिए। उस स्तंभ में जब भी मैं किसी पाठक की समस्या पढ़ती हूँ और उस समस्या के समाधान के लिए ऐबी का सुझाव पढ़ती हूँ, तो कल्पना करने लगती हूँ कि ऐसी समस्या का समाधान इस्लाम कैसे देता, और जब दोनों के समाधान में विरोधाभास देखती हूँ तो कुंठित होने लगती हूँ। मैं सोचने लगती हूँ कि मुस्लिम संसार को न जाने कितनी डीयर ऐबियों की आवश्यकता पड़ेगी कि उनकी समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक व मानवीय ढंग से हो सके। "ऐबी" और उसके पाठकों के विचार मेरे मन में घर कर गए और समय के साथ मैं भी एक प्रकार की "डीयर ऐबी" में रूपांतरित हो गई। उसमें और मुझमें केवल इतना अंतर था कि वह अंग्रेजी के पाठकों के लिए अंग्रेजी में लिखती थी और मैं अरबी पाठकों के लिए अरबी में लिखती थी।

कैलीफोर्निया में दो मास रहने के पश्चात् मेरी वित्तीय स्थिति डांवाडोल होने लगी और ऐसी दशा आ गई कि मेरे लिए अपनी सीमित अंग्रेजी ज्ञान के सहारे कोई काम ढूंढ़ना आवश्यक लगने लगा। एक युवा सीरियाई की सहायता से मुझे एक गैस स्टेशन पर काम मिल गया। कभी मैंने एक चिकित्सक के रूप में मानव हृदय में रक्त प्रवाह भरने का काम किया था और आज मैं पंपिंग स्टेशन पर गैस भर रही थी! कुछ लोगों को लगेगा कि मुझे यह काम बुरा लगा, किंतु ऐसा नहीं था। इसके विपरीत, मैंने इसे एक ऐसे सुनहले अवसर के रूप में लिया, जिससे मुझे "डीयर

ऐबी" स्तंभ पढ़कर अमरीकी समाज के सभी वर्गों के विषय में जानने की अपेक्षा इस समाज का प्रत्यक्ष अनुभव मिलता। मैं गैस स्टेशन पर आने वाले ग्राहकों के कार्य व व्यवहार को सूक्ष्मता से देखती थी और वो जो कहते थे, उसे ध्यान से सुनती थी। उनमें से कुछ मुझसे बतियाने लगते, और कभी-कभी तो वह बातचीत व्यक्तिगत विषयों तक पहुँच जाती थी।

कुल मिलाकर मैंने पाया कि यहाँ लोग मुझसे जितना सम्मानजनक व्यवहार करते थे, उतना सम्मान तो मैं सीरिया में चिकित्सक होकर भी कभी नहीं पाई थी। यहाँ यदि मुझसे कोई भूल हो जाती थी, तो भी लोग मुझसे अच्छा व्यवहार करते थे। एक दिन मार्ग भटक कर एक अमरीकी सज्जन गैस स्टेशन पर आए और मुझसे नॉट स्ट्रीट का मार्ग पूछने लगे। मैंने अपने एक सहकर्मी की ओर संकेत किया और उनसे बोली कि वो आपको बता देंगे। उन्होंने मुस्कान के साथ विनम्रतापूर्वक मेरी ओर देखा और बोले, "धन्यवाद।" एक दूसरा सहकर्मी मेरे निकट आया और पूछा कि वह ग्राहक जो पूछ रहा था, मुझे समझ में आया क्या? मैंने कहा कि मुझे लगा वो पिस्ता के विषय में कुछ पूछ रहे हैं। जब मैंने जाना कि उनका प्रश्न समझ ही नहीं पाई थी तो मैं अपने आप में लज्जित हो गई, परंतु उन ग्राहक महोदय की मुस्कान और धन्यवाद के शब्द आज भी मुझे स्मरण हो उठते हैं। आज भी मुझे इस बात से अचंभा होता है कि अपने मातृ देश में मैं चिकित्सक होते हुए भी उतना सम्मान नहीं पा सकी, जितना कि अमरीका में गैस स्टेशन पर एक साधारण विदेशी कर्मी के रूप में मुझे आदर मिला। यह बात सोचकर मैं हिल जाया करती थी। अपनी संस्कृति और मजहब की नैतिकता को लेकर जो प्रश्न मेरे मन में उठते थे, अब और गहरे हो गए थे, और अब जब अमरीका में गैस भरते हुए प्रतिदिन बहुत से अमरीकियों से बात होती थी तो मुझमें अपने प्रश्नों का उत्तर पाने का उतावलापन आने लगा था।

मेरे अमरीका आगमन के एक वर्ष के पश्चात्, क्रिसमस के कुछ दिन पूर्व टेक्साको ने हिल्टन होटल में अपने गैस स्टेशन के कर्मचारियों के

लिए एक समारोह का आयोजन किया। जब मैं वहाँ पहुंची तो देखा कि उत्सव कक्ष आकर्षक ढंग से अलंकृत किया गया है और भोजन पटल (टेबल) अत्यंत सुंदर ढंग से लगाए गए हैं। जब मैंने देखा कि हम अंग्रेजी न बोलने वाले विदेशी कर्मचारियों की इतनी आवभगत की जा रही है, तो मैं ऐसी भावविह्वल हो गई कि मेरे नेत्रों से अश्रु बह निकले। अपनी भावनाओं और आंसुओं को छिपाने के लिए मैं महिला प्रसाधन की ओर भागी, पर जब लौटकर आई तो देखा कि मेरे साथ बैठी महिला समझ गई थी और उसने मुझसे पूछ ही लिया "क्या हुआ?" मैंने एक और महिला की ओर संकेत करते हुए कहा, "वह महिला मेरी बहन के समान दिखती है। मुझे अपनी बहन को देखे हुए एक वर्ष हो गए हैं", सो मेरी आंखें पुनः गीली हो गईं। पर सच यह था कि मेरी बहन की स्मृति ने मुझे नहीं रुलाया था, अपितु एक दूसरे ईश्वर के जन्म के आनंददायी समारोह के मध्य अपने जन्म के ऐसे देश के स्मरण ने मेरी आँखों में पानी ला दिया था, जहाँ एक ऐसे अल्लाह का आदेश चलता था जो अपनी स्त्रियों और अपने निर्धनों का शिकार करता था।

अमरीका आने के डेढ़ वर्ष के पश्चात् मैंने एक और बेटी एंजेला को जन्म दिया। वह मात्र चार दिन की थी कि जब मैंने लॉस एंजेल्स विमान पत्तन पर अपनी उन दो संतानों का स्वागत किया जिन्हें मैं सीरिया में छोड़कर आई थी, और उस दिन जब हमारा अमरीकी स्वप्न साकार हुआ तो हमारी प्रसन्नता भी पूर्ण लगने लगी और अब लगने लगा कि हम स्थापित व रचनात्मक जीवन की ओर बढ़ रहे हैं। जिस दिन मेरी दोनों बड़ी संतानों ने विद्यालय जाना आरंभ किया, हम अमरीकी समाज में मिश्रित होने की ओर बढ़ गए। मेरा पुत्र उस समय नौ वर्ष का था और चौथी कक्षा में उसका नाम लिखाया, जबकि चार वर्षीय बेटी फराह नर्सरी कक्षा में जाने लगी। जब मैंने अपने को उनके विद्यालयी जीवन से जोड़ा तो मैं जिस संसार में पली-बढ़ी थी, उससे पूर्णतया भिन्न संसार दिखा। जो लोग मेरे पुत्र-पुत्री को पढ़ाते थे, उनसे भी मैंने बहुत सी मूल्यवान् बातें सीखीं।

मैजन को जन्म से ही कम सुनाई पड़ता था। जब हम सीरिया में रहते थे, तो एक चिकित्सक होते हुए भी मैं उसको कान में लगाने वाली सुनने की मशीन नहीं दिला सकी थी, क्योंकि यह स्थानीय स्तर पर नहीं बनती थी और इसे यूरोप से आयात करना पड़ता था। उस समय सीरिया का पश्चिम के साथ व्यापारिक संबंध नहीं था। क्योंकि जब से सीरिया पर आतंकवाद को समर्थन देने का आरोप लगा था, इसका अंतर्राष्ट्रीय बहिष्कार हो रहा था। अमरीका के उस विद्यालय के सुझाव पर मैजेन को एक कान रोग विशेषज्ञ को दिखाने ले जाया गया और सप्ताह भर के भीतर उसके पास सुनने की मशीन आ गई। मैं वह दिन कभी नहीं विस्मृत कर सकती, जब क्लीनिक में मैजेन ने पहली बार सुनने की वह मशीन लगाई। उसका मुख आनंद से पुलकित था, और एक छोटे से पंक्षी की भाँति चहकते हुए वह बोल उठा, "मां, देख रही हो, विश्वास नहीं हो रहा है ना! मैं सड़क पर जा रही कारों की ध्वनि सुन सकता हूँ।" मैं सिसकते हुए अपने पति की बांहों में जा गिरी और वो चीख पड़े, "अमरीका शाश्वत रहे! अमरीका शाश्वत रहे!"

हमने उस दिन को उत्सव के रूप में मनाने का निर्णय किया और एक रेस्तरां में गए। मुझे अभी भी स्मरण है कि उस रेस्तरां का नाम टॉम्स हैम्बर्गर था और वह पैरामाउंट में हमारे घर के बहुत दूर नहीं था। हमने वहाँ जाने का इसलिए सोचा, क्योंकि वह सस्ता था। उन दिनों कोई हैम्बर्गर 69 सेंट का पड़ता था। उस रेस्तरां में जितने पल हमने बिताए, वो हमारे जीवन का सर्वाधिक प्रसन्नता देने वाला समय था। बैठने के पश्चात्, हमने एक खेल खेलना आरंभ कर दिया। इस खेल में फराह मैजेन के पीछे खड़ी होकर अत्यंत मंद स्वर में उसके कान में कुछ बोली। यदि उसने सुन लिया तो उसे एक डाइम (दस सेंट) मिलता, यदि न सुन पाता तो यह डाइम फराह को मिलता। मैंने देखा कि फराह ने वो शब्द इस प्रकार बोले कि मैजेन निश्चित ही सुन ले, भले ही इससे उसका दस सेंट चला जाए।

लगभग एक सप्ताह पश्चात्, एक महिला मेरे पास आईं और उन्होंने अपना नाम नद्ज ए एलिस बताया। उन्होंने बताया कि लॉस एंजेल्स

विद्यालय जनपद ने उन्हें मैजेन के विशेष शिक्षक के रूप में नियुक्त किया है, वो मैजेन में सुधार लाने के लिए उसे बोलने, भाषा की समझ और शब्द ज्ञान अर्जित करने में सहायता करेंगी। समय के साथ श्रीमती एलिस हमारे परिवार की सदस्य बन गईं। उन्होंने पूरे परिवार की भाषाई कमी को दूर करने में सहायता की और हमें इस योग्य बना दिया कि विद्यालय के साथ संपर्क बनाए रख सकूं। हमसे श्रीमती एलिस जितनी जुड़ी थीं, उतनी मैजेन की कक्षा अध्यापिका श्रीमती स्कार्फ नहीं घुली-मिली थीं। एलिस को मैजेन में विशेष रुचि थी। मैजेन जब विद्यालय से घर आता तो उत्साह से भरा होता और मुझसे कहता, "मम्मी क्या आप विश्वास करेंगी! मिस स्कार्फ प्रतिदिन मुझे प्यार से बांहों में भर लेती हैं। सीरिया में मेरे शिक्षकों ने कभी क्यों नहीं किया ऐसा?" मेरे पुत्र के प्रश्न हृदय को चीरते हुए निकल जाते थे, मेरे मन-मस्तिष्क में गूंजते रहते थे और मुझे चुपचाप कहना पड़ता: मैं भी अभी तक इन प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ ही रही हूँ।

एक दिन मैं कक्षा समाप्त होने के पश्चात् फराह को लेने विद्यालय गई, तो देखा कि वह विद्यालय के ओसारे में अपनी अध्यापिका के पास बैठी थी और वो उसके जूते के फीते बांध रही थीं। थोड़ी दूर खड़ी होकर मैं उन दोनों को देखती रही, और वह दृश्य आज भी मेरे मन में अंकित है। मैं अपने विद्यालय के उन दिनों के मुख्य अध्यापक का स्मरण करती हूँ, जब मैं फराह जितनी बड़ी थी। भोजनावकाश के समय वो मेरे पास आते और अपने घर के लिए क्रय किया हुआ भोजन का पैकेट पकड़ाते हुए कहते कि जाओ इसे मेरे घर रख आओ। भय के मारे मेरी जिह्वा अटकने लगती और मैं भोलेपन में कह उठती, "अभी मुझे इमला लिखना है।" अभी मेरा वाक्य पूरा भी न हो पाता कि वो मेरे मुंह पर पूरे बल से एक थप्पड़ जड़ देते। उस क्रूर थप्पड़ को स्मरण करते हुए, मैं श्रीमती एंडरसन के पास गई और उनकी उदारता के लिए उनको धन्यवाद कहा। वो कहने लगीं, "मैंने देखा कि वह द्वार की ओर भागती जा रही थी और उसके जूते के फीते खुले हुए थे। मुझे लगा कि वह फीतों में फंसकर गिर जाएगी।" श्रीमती एंडरसन ने फराह को

बांहों में भर लिया और उसके कंधे पर ठोंकते हुए बोलीं, "अब अच्छी लड़की की भाँति घर जाओ। कल मिलती हूँ।" फराह कार में पीछे की सीट पर बैठी थी और मैं पीछे देखने वाले दर्पण में उसका मुख निहारने लगी। उसकी आँखें चकमक-चकमक इधर-उधर देख रही थीं और मैं अपने स्वयं से बात करने लगी: अरे गुड़िया, मुझे तुमसे ईर्ष्या हो रही है। जब मैं छोटी थी, तो मुझे श्रीमती एंडरसन जैसी अध्यापिका क्यों नहीं मिलीं- मेरे जूते के फीते बांधने के लिए नहीं, अपितु मेरे मन के घावों को ठीक करने के लिए?

मैं घर पहुँची तो एक लेख को पूरा करने लगी, जिसे कुछ दिन पहले ही लिखना प्रारंभ किया था। मैंने इस लेख का अंत इन शब्दों के साथ किया: "हमारा रसूल मुहम्मद कहता है: 'सात वर्ष की आयु होते ही अपनी संतान को नमाज पढ़ना सिखाओ और यदि दस वर्ष की आयु में वे नमाज न पढ़ें तो उनकी पिटाई करो।' भाड़ में जाए ऐसा रसूल, जो किसी पिता को यह कहता हो कि अल्लाह की इबादत करवाने के लिए अपने दस वर्ष के बालक-बालिका को पीटो!"

एक दिन मुख्य अध्यापक श्रीमान् विल्सन ने मुझे फोन किया और बोले, "श्रीमती सुल्तान, मैजेन अपनी सुनने की मशीन घर पर ही छोड़ आया है। क्या आप वह मशीन विद्यालय ला सकती हैं?" मैंने फोन करने के लिए उनको धन्यवाद बोला और उनसे कहा, "हां, हां, क्यों नहीं। अभी तुरंत लेकर आती हूँ!" सुनने की वह मशीन विद्यालय पहुँचाने में मुझे तनिक विलंब हो गया। वह मशीन विद्यालय पहुँचाने के लिए मैं किवाड़ खोलकर कार तक जाने के लिए निकली ही थी कि देखती हूँ कि मैजेन का हाथ पकड़े हुए श्रीमान् विल्सन हमारे घर की ओर आ रहे हैं। ज्यों ही उन्होंने मुझे देखा तो बोल पड़े, "श्रीमती सुल्तान, मैं जानता हूँ कि आप व्यस्त हैं, सो मैंने सोचा कि क्यों न इस सुंदर बसंत ऋतु में मैं ही मैजेन के साथ आपके घर का चक्कर लगा लूं और वह मशीन लेता आऊं।" श्रीमान् विल्सन नहीं चाहते थे कि मैं यह सोचकर अपराधबोध पालूं कि वह मशीन विद्यालय नहीं

पहुंचा पाई, और इसीलिए उन्होंने बात बनाई कि वह सुंदर ऋतु का आनंद लेने के लिए आ गए।

मैंने उन्हें सुनने की वह मशीन दी और घर में आकर पुन: अपनी सीट पर आकर बैठ गई, क्योंकि मुझे खलीफा उमर बिन अल-खत्तब के विषय में एक मुस्लिम पुस्तक में पढ़ा हुआ कुछ स्मरण हो आया था और मैं वही एक पत्रक पर लिख रही थी। बिना किसी विशेष कारण के खलीफा ने अपने बेटे के सिर पर अपना डंडा मार दिया और जब उनकी बीवी हफ्सा ने इसका विरोध करते पूछा, "आपने उसे क्यों मारा", तो उमर ने कहा, "मैंने देखा कि वह अपनी सामर्थ्य से अधिक उड़ रहा था, इसलिए उसे उसकी सीमा में लाने के लिए पीटा।" मैंने इस कहानी को अपने साथ उस दिन हुई घटना से जोड़ा और अपने लेख को इन शब्दों के साथ समाप्त किया: "अमरीका शाश्वत रहे! अन्याय, अत्याचार व उत्पीड़न की इस्लामी संस्कृति का ऩाश हो! श्रीमान् विल्सन दीर्घायु हों! खलीफा उमर बिन अल-खत्तब सदा के लिए मिट जाए!"

विद्यालय में अध्यापकों ने मेरी संतानों पर जो प्रेम व उदारता लुटाई थी, उसे देखकर मैं न केवल अपने पुत्र व पुत्रियों की शिक्षा में सहायता करने के लिए, अपितु स्वयं भी कुछ सीखने की इच्छा से उनके विद्यालयी जीवन में गहराई से जुड़ गई। जब भी विद्यालय का कोई भ्रमण कार्यक्रम बनता, तो मैं आगे बढ़कर उन अभिभावकों की सूची में अपना नाम लिखवाती जो विद्यार्थियों को ले जाने वाले अध्यापक की सहायता के लिए स्वेच्छा से तत्पर हों। प्राय: ऐसा होता कि मैं उन खतरनाक मार्गों पर बालक-बालिकाओं को पार कराती थी, जहाँ किसी कारणवश पथ पार कराने वाला रक्षक नहीं होता था। मुझे अपने पुत्र-पुत्री के विद्यालय से अनेक सराहना पत्र मिले थे, जिन्हें मैंने संभाल कर रखा था।

मुझे ध्यान आता है कि एक बार मेरे पति काम पर चले गए थे और मैंने देखा कि दूध नहीं था। उस समय एक गैलन दूध 1.69 डालर का आता था, और घर में ढूंढ़ने पर मुझे 1.68 डालर ही मिल सके। क्योंकि

गली की हट्टी (दुकान) पर बैठने वाली महिला मुझे जानती भी थीं और मेरे साथ उनका व्यवहार अच्छा था, तो मैंने मैजेन से कहा कि उस हट्टी पर जाकर दूध ले आए और उनसे कह दे कि एक पेन्नी जो कम है, वह अगली बार दे देगा। किंतु मैजेन ने यह कहकर जाने से मना कर दिया कि उसे यह ठीक नहीं लग रहा है। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि अब क्या करूं। मेरी छोटी पुत्री एंजेला सो रही थी, इसलिए मैं घर से बाहर जा नहीं सकती थी। अकस्मात्, मुझे कुछ सूझा और मैंने मैजेन से कहा, "सुनो, उस हट्टी पर आओ और उसके भीतर जाने से पहले वाहन खड़ा करने के स्थान पर देखते जाना, क्या पता किसी का पैसा गिरा हो और तुम्हें मिल जाए। यदि वहाँ पैसा मिल जाए, तो उसे मिला लेना, समस्या दूर हो जाएगी। यदि न मिले, तो दूध लिए बिना ही लौट आना।" यह सुनकर मैजेन प्रफुल्लित होकर नाचने लगा, उसने 1.68 डालर लिया और हट्टी की ओर भागा।

कुछ मिनट के पश्चात्, मैंने वातायन से झांककर देखा, तो वह दूध का गैलेन लिए हुए आ रहा था और तीव्र स्वर में हँसता जा रहा रहा था। जब मैंने किवाड़ खोला, तो वह चकित भाव से भाव से बोल पड़ा, "मम्मी, जो हुआ, उस पर आपको विश्वास ही नहीं होगा! मैं ढूंढ़ रहा था कि कहीं एक सेंट पड़ा मिल जाए, और मुझे एक डालर की नोट नीचे पड़ी मिल गई, तो अब मेरे पास 90 सेंट अतिरिक्त बच गए।" इतना कहकर उसने बचे हुए पैसे मेरी ओर उछाल दिए। मैंने लाड़वश उसे कंधों से पकड़ लिया और बोली, "सुनो, मेरे लाल, यही है तुम्हारा अमरीका: तुमने एक सेंट मांगा और इसने तुम्हें एक डालर दे दिया, पर हां, इसके लिए तुम्हें बाहर निकलना होगा और ढूंढ़ना तो होगा ही!"

जब मैजेन पॉमोना के कैलीफोर्निया राज्य प्राविधिक विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष का छात्र था, तो उसने अपने विश्वविद्यालय व्यय के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त करने हेतु संघीय सरकार के पास आवेदन दिया था। मैंने उसे वचन दिया था कि यदि उसे सरकार से यह अनुदान मिल जाएगा, तो मैं और उसके पिता उसकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने में कोई

कमी नहीं छोड़ेंगे। हमें यह आशा नहीं थी कि इस अनुदान से उसका पूरा शिक्षण शुल्क भरा जा सकेगा, इसलिए शुल्क भुगतान वाले दिन हमने उसे एक हस्ताक्षरित चेक यह कहकर दिया था कि शेष राशि वह इसमें लिख ले और पूरा शुल्क भर दे। कुछ घंटों पश्चात्, उसने मुझे फोन किया और हँसते हुए बोला, "मम्मी, जानती हो आज क्या हुआ!" मैंने पूछा, "क्या हुआ?" वह बोल पड़ा, "ये अमरीका है। आप इससे एक सेंट मांगोगी, तो यह एक डालर देता है। सरकार से जो मुझे अनुदान मिला है, उससे मैंने पूरा शिक्षण शुल्क चुका दिया, अपनी पुस्तकें भी क्रय कर लीं और कुछ धन बच भी गया।" जब वह घर लौटा, तो उस चेक को मेरी ओर उछाल दिया और हँसी-हँसी में बोला, "मुझे आपकी सहायता नहीं चाहिए। मेरा अमरीका आप लोगों से कहीं अधिक उदार है!" मैंने उसके कंधे पर हाथ रखा और बोली, "सुनो, यह हम पर इस देश का ऋण है, जो तुम्हें स्नातक होने पर वापस लौटाना होगा", और अभी मैं अपना वाक्य भी पूरा नहीं कर पाई थी कि वह बोल पड़ा, "और जब भी हो सके, मुझे लॉस एजेल्स यूनीफाइड स्कूल डिस्ट्रिक्ट को श्रवण-मशीन दान देना होगा, जिससे कि किसी अन्य वंचित बालक या बालिका की सहायता हो सके- हां, ध्यान है मुझे। इस बात का ध्यान है मुझे। मेरे मन में यह बात बैठ गई है कि मुझे यह भला कार्य करना है!"

हमारे जीवन में सदा ऐसे विरोधाभास बने रहे, जो चिंता में डालते रहे। हम अमरीका में रह रहे वो विदेशी थे, जो मध्यपूर्व से आए थे। जब प्रथम खाड़ी युद्ध हुआ, तो मैजेन को अमरीका में रहते हुए एक वर्ष या इससे कुछ अधिक समय ही हुआ था। जब वह टीवी पर घटनाओं को देख रहा था और एक भोले शिशु की भाँति अपनी बहन फराह के सामने उन घटनाओं की नासमझी भरी व्याख्या कर रहा था, मैं वहीं खड़ी होकर उसकी बातें सुनने लगी। वह फराह से कह रहा था, "हम अमरीकी सद्दाम हुसैन से अधिक बलशाली हैं। हम ईराकियों को कुचल देंगे।" उसकी बातें सुनकर मेरी आँखों में आंसू आ गए, आंसुओं को छिपाकर मैं सामान्य होने का

नाटक करने लगी। उसकी टिप्पणी के पहले भाग "हम अमरीकी" और दूसरे भाग "हम ईराकियों को कुचल देंगे" में विसंगति थी, और इसने मुझे वहीं रोक दिया। किंतु इससे अविचलित हुए बिना मैं आगे बढ़ गई।

एक बार मुझमें यह आत्मविश्वास आ गया कि मेरी अंग्रेजी, और विशेष रूप से अंग्रेजी पढ़ने की दक्षता, में पर्याप्त सुधार आ गया है तो मैंने चिकित्सीय समकक्षता परीक्षा देने का निर्णय किया। अमरीका में चिकित्सक के रूप में कार्य करने और अपनी चिकित्सा शिक्षा की योग्यताओं को मान्यता दिलाने के लिए यह परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक था। इस परीक्षा में मुझे व्यवहारवादी विज्ञान एवं मनोचिकित्सा का विषय भी उत्तीर्ण करना था। इन दोनों विषयों ने मुझे ऐसे ज्ञान के सागर में ला खड़ा किया, जिसका पहले कभी मुझे भान तक न था, और तब मैं इस क्षेत्र में अपनी चिकित्सीय विशेषज्ञता के स्तर के उथलेपन पर दुखी व व्याकुल होने लगी। यह व्याकुलता इस कारण नहीं थी कि यह कोई मेरी व्यक्तिगत कमी थी, अपितु ऐसा इस कारण था कि हमारे सीरिया के विश्वविद्यालयों में जिन्होंने भी चिकित्सा की पढ़ाई की थी, उन सबके पास इन विषयों पर अत्यंत सीमित ज्ञान था। मुझे लगता है कि षडयंत्र के अंतर्गत वहाँ इन विषयों पर ज्ञान को सीमित कर दिया गया था, क्योंकि इसकी सामग्रियों में से अधिकांश तत्व इस्लाम की शिक्षाओं से विरोधाभास उत्पन्न करते थे, और इस ज्ञान को विद्यार्थियों से इस कारण दूर रखा गया था कि इसके संपर्क में आने पर उनकी चिंतन शैली परिवर्तित हो सकती है। इन परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने के लिए मैंने काप्लान मेडिकल स्कूल में प्रवेश लिया। यह एक संस्थान था, जो विद्यार्थियों को यह परीक्षा उत्तीर्ण करने में सहायता करता था। इस संस्थान में मेरी भेंट ईरान और पाकिस्तान आदि मुस्लिम देशों के चिकित्सकों से हुई और इन चिकित्सकों ने बताया कि उन्होंने भी अपने विश्वविद्यालयों में इन विषयों को इतनी गहराई अथवा इतने ऊंचे स्तर पर नहीं पढ़ा था।

इन दोनों विषयों के प्रति मेरी ज्ञान-पिपासा इतनी बढ़ गई कि परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए जितना जानना आवश्यक था, उससे कहीं

अधिक ज्ञानार्जन किया। अमरीका आने के पश्चात् कुछ ही समय में व्यवहारवादी विज्ञान एवं मानसिक स्वास्थ्य संबंधी पुस्तकों ने मुझे अपने सम्मोहन पाश में ऐसा जकड़ लिया था कि मैंने इस ज्ञान-पिपासा को शांत करने के लिए अध्यावसाय करना आरंभ कर दिया। मुझे आज भी स्मरण है कि एक दिन मैंने अपने पति के सामने टिप्पणी की: "अब मुझे पता चला कि अमरीका महाशक्ति क्यों है। अमरीका इस कारण महान है, क्योंकि यहाँ जनता विचारों की स्वतंत्रता का आनंद लेती है। ये लोग एक ऐसी संस्कृति से जन्मे हैं जो वैज्ञानिकों की देखरेख में प्रयोगशाला में उत्पन्न हुई है, जबकि हम मुस्लिम देशों के लोग इसलिए संसार में पिछड़े हैं, क्योंकि हम एक ऐसे दमनकारी संस्कृति से आते हैं जहाँ बुद्धि का कोई सम्मान नहीं होता और जो यह मानने में ना-नुकुर करता है कि वह विज्ञान की धारा समझने व अपनाने में विफल रहा है।"

उस चिकित्सा समकक्षता परीक्षा को उत्तीर्ण करने के लिए जितनी पुस्तकें एवं लेख पढ़ने की आवश्यकता थी, उससे आगे बढ़कर मैंने पढ़ा। जब मैंने जाना कि कैलीफोर्निया से अरबी भाषा का एक समाचार पत्र मुद्रित व प्रकाशित होता है, तो मेरी प्रसन्नता दोगुनी हो गई। बड़ी आशा और अपेक्षा से मैंने इन समाचार पत्रों को ढूंढ़ना और पढ़ना प्रारंभ किया। मुझे लगा कि अमरीका में हमें जो स्वतंत्रता मिली हुई है, उससे हम उन भावों व बातों को अभिव्यक्त कर सकते हैं जिसका हमने पहले दमन कर दिया था, और उन विचारों को प्रकट कर सकते हैं जिसे हमने दबा कर रखा था। परंतु शनैः शनैः मुझे यह समझ में आ गया कि ये समाचार पत्र भी अरब संसार के समाचार पत्रों की कार्बन प्रति थे। प्रत्येक समाचार पत्र का किसी न किसी विशेष देश अथवा दल द्वारा समर्थन किया जाता था, और इन समाचार पत्रों के मध्य संघर्ष लगभग वैसा ही प्रतीत होता था जैसा कि हमने अपने मातृदेश में देखा और अनुभव किया था।

उस समय तक मैं एक क्षीण तार से ही सही, किंतु इस्लाम से जुड़ी थी। मैंने इस आशा में लुप्त सत्य को ढूंढ़ने का निर्णय किया कि

इस्लाम से जुड़ाव का क्षीण हो रहा तार सुदृढ़ हो जाए। मैंने अपना अनुसंधान दो फलकों पर आरंभ किया- पहला मुस्लिम फलक था और अमरीका में रहने के कारण मैं सामाजिक दबाव व इससे उत्पन्न भय से मुक्त होकर इस्लाम का गहन एवं अंतरंग ज्ञान अर्जित करने की दिशा में गई, और दूसरा अमरीकी फलक था जिसने मुझे अमरीकी समाज के गहरे प्रत्यक्ष ज्ञान को अर्जित करने को प्रेरित किया। दोनों फलकों का ज्ञान अर्जित करके मुझमें यह क्षमता विकसित हो गई कि दोनों की तुलना करके सत्य के निकट पहुँच सकूं।

जब मैं यह शोध कर रही थी, तब भी लिखना नहीं छोड़ा और प्रत्येक सप्ताह कोई न कोई लेख लिख डालती थी। इन छोटे लेखों मैंने बच-बचाकर अपनी प्रथाओं और शिक्षा प्रणाली की आलोचना की और अमरीका में मैंने जो पढ़ा व देखा था, उससे तुलना करते हुए अपने विचार प्रकट किए थे। प्रत्येक लेख ऐसा था कि मानो ठहरे हुए जल में पत्थर फेंक कर विक्षोभ उत्पन्न कर दिया गया हो। प्रत्येक लेख तरंगें उत्पन्न कर रहा था, और समय के साथ शनैः शनैः मैं तीव्र आलोचक और मुखर बन गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस पर बड़ी संख्या में प्रतिक्रियाएं आनी प्रारंभ हो गईं। यदि मेरा पहला लेख प्रकाशित होने के वर्ष 1989 और 10 सितम्बर, 2001 को प्रकाशित लेख के समय के मध्य मेरे लेखन के विकास क्रम का लेखाचित्र बनाया जाए, तो उसमें मेरी आलोचनाओं की तीव्रता की रेखा ऊपर जाती हुई स्पष्ट दिखेगी। उस रेखा का प्रत्येक बिंदु दर्शाएगा कि इस्लाम के प्रति मेरा चिंतन और व्यवहार किस प्रकार परिवर्तित होता गया, और उस पर यह ठीक-ठीक अंकित होगा कि यह परिवर्तन कब आया।

मुझे इस्लामी और अमरीकी दोनों प्रकार की पुस्तकें पढ़ने का व्यसन लग गया था। जितना मैं पढ़ती जाती उतना ही पाती कि अमरीकी जन जीवन की तुलना में मुस्लिम देशों की जनता की स्थिति अत्यंत दुखद है। मुस्लिम देशों में जनता की दुर्दशा का उत्तरदायी इस्लामी मजहबी प्रणाली था। अमरीका आने के चार वर्ष के पश्चात् तक मुझे लगता रहा कि

जिस क्षीण तंतु ने मुझे इस्लाम से जोड़ रखा है, वह समय के साथ इस्लाम में गहरे विश्वास का बड़ा आधार बन जाएगा, परंतु इसके ठीक विपरीत हुआ और दिनोंदिन इस्लाम पर से मेरा विश्वास उठता चला गया। मैं अपने लेखों को प्रकाशित करवाने के लिए एक समाचार पत्र से दूसरे समाचार पत्र कार्यालय का चक्कर लगाती रही और वो मुझे टालते रहे। मेरे लेखों को अस्वीकार करने वाला पहला समाचार पत्र सऊदी-समर्थित समाचार पत्र था। तभी मुझे एक ऐसे समाचार पत्र में अवसर मिला, जो ईराक के सद्दाम हुसैन सरकार द्वारा समर्थित था। यह अवसर मुझे इसलिए नहीं मिला था कि मैं अच्छा लिखती थी, उन्होंने मेरे लेख इसलिए स्वीकार किए थे, क्योंकि वो सऊदी अरब से घृणा करते थे।

प्रथम खाड़ी युद्ध में पराजित होने के पश्चात् सद्दाम हुसैन ने अपनी जनता का विश्वास जीतने और अपनी सत्ता सुरक्षित रखने के लिए इस्लाम को अस्त्र के रूप में प्रयोग करने का प्रयास किया। इस कारण मैं उस समाचार पत्र में लंबा नहीं चल सकी। अंततः मैं वाशिंगटन में सीरियाई दूतावास द्वारा समर्थित एक समाचार पत्र में लिखने लगी। क्योंकि सीरियाई सरकार पर, सद्दाम हुसैन के पहले की सत्ता की भाँति, कदाचित ही मजहबी झुकाव होने का आरोप लगाया जा सकता था, तो इस समाचार पत्र में मेरे लेख कुछ अधिक समय तक आते रहे। यद्यपि आगे चलकर यहाँ भी एक समस्या खड़ी हो गई, वैसे इसका प्रकाशक एक ईसाई था, पर एक सीमा के पश्चात् उसने मेरे लेखों पर मुस्लिम प्रवासियों द्वारा किए जा रहे उग्र प्रहार को झेलने में हाथ खड़ा कर दिया।

मुसलमानों ने मेरे लेख के विरोध में उस समाचार पत्र में अपने विज्ञापन देने बंद कर दिए। सितम्बर 11 के आतंकवादी आक्रमण से दो मास पूर्व उन प्रकाशक महोदय ने मुझे बुलाया और बोला कि क्या मैं सीएआईआर (अमरीकी-इस्लामी संबंध परिषद) को अपना फोन नंबर देना चाहूँगी। उन्होंने बताया कि सीआईएआर के एक सदस्य मुझसे बात करना चाहते हैं। मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपना फोन नंबर दे दिया और उसी दिन मेरे

पास सीएआईआर के श्रीमान हुसाम आयलोश का फोन आया। श्रीमान आयलोश ने शिष्टता से बात की और वार्तालाप के समय संयत रहे। उन्होंने मेरे लेखों पर अप्रसन्नता प्रकट की और बोले कि मैं अपनी सीमा लांघने के अति निकट आ गई हूँ। जब कोई मुसलमान, और वह भी सीएआईआर का कोई सदस्य, किसी लेखक से यह कहे कि वह अपनी सीमा लांघने के मुहाने पर है, तो उसके इन शब्दों में स्वाभाविक रूप से धमकी छिपी होती है। अरबी की जानकारी रखने वाला और इस्लाम की समझ रखने वाला कोई भी व्यक्ति ऐसी परोक्ष धमकी का अर्थ पकड़ सकता है। यह घटना जानने के पश्चात् मेरे शुभचिंतक मित्रों ने मुझसे कहा कि इसका परिणाम अच्छा नहीं हो सकता है, इसलिए मैं कुछ दिन धीरज रखकर शांति से बैठूं। मैं भीतर ही भीतर क्षोभ व क्रोध में जलने लगी और मेरा पारा इतना चढ़ गया कि लगने लगा अब विस्फोट हो जाएगा।

मैं प्राय: पीछे मुड़कर देखती हूँ और सोचती हूँ कि कब ऐसा हुआ कि मेरा संकल्प और दृढ़ हो गया? ऐसे तो बहुत सी घटनाएं थीं, किंतु एक घटना ऐसी थी जो मुझे नहीं विस्मृत होती है, और वह घटना तब हुई थी जब मैं सीरिया छोड़ रही थी। मेरे सीरिया छोड़ने के लगभग एक वर्ष पूर्व मेरे पति उस देश से निकल आए थे। जब मैंने अपने पुत्र-पुत्री के पारपत्र के लिए आवेदन दिया, तो वहाँ के अधिकारी ने इस आधार पर मेरा आवेदन अस्वीकार कर दिया कि इस्लामी नियमों के अंतर्गत मैं अपनी संतान की विधिक अभिभावक नहीं हो सकती हूँ, यह अधिकार केवल संतान के पिता के पास होता है। मैंने अपने बैग से अधिकार पत्र निकाला और उस अधिकारी को दिया। यह अधिकार पत्र मेरे पति ने शासन के उपयुक्त अधिकारी से बनवाया था और इसमें उन्होंने मुझे विधिक रूप से अपने धन, संपत्ति व अन्य प्रकरणों का निर्णय करने का अधिकार दिया था, परंतु उस अधिकारी ने वह अधिकार पत्र मुझे वापस करते हुए कहा, "यह अधिकार पत्र है, अभिभावकत्व का प्रमाण नहीं। इससे तुम्हें उनकी संपत्ति पर निर्णय

लेने का अधिकार तो मिल गया, किंतु उनकी संतान के अभिभावकत्व के संबंध में यह किसी काम का नहीं है।"

"पर वो मेरी भी संतान हैं, श्रीमान्", मैंने कहा।

वह बोला, "कोई महिला अपनी संतान की अभिभावक नहीं हो सकती है। तुम समझ रही हो न?"

"मैं अब क्या करूं? मुझे मेरे बेटे-बेटी के पारपत्र की आवश्यकता है और उनके पिता यहाँ नहीं हैं, कृपया कुछ कीजिए," मैंने कहा।

उसने कहा, "अब एक ही उपाय है। तुम अपने पति के परिवार में से किसी पुरुष को ले आओ, जो यहाँ घोषणा करे कि वह तुम्हें अपनी संतानों के लिए पारपत्र प्राप्त करने की अनुमति दे रहा है।" जिस नगर में हम रहते थे, वहाँ मेरे पति के परिवार के एक सदस्य रहते थे। मैं उनसे कभी नहीं मिली थी। उनके परिवार का अली नाम का यह सदस्य अपने बुरे स्वभाव एवं मद्यपान के लिए कुख्यात था और इसीलिए मेरे पति उससे मुझे कभी नहीं मिलवाना चाहते थे।

मैंने अली के विषय में पता किया और सीधे उनके घर पहुँच गई। वो हमारे घर से दूर एक जीर्ण-शीर्ण भवन में रहते थे। द्वार पर उनकी बीवी ने पूरे उत्साह में मेरा स्वागत किया, उनके मुख पर मेरे लिए करुणा झलक रही थी। उन्होंने इधर-उधर देखा कि कोई उनकी बात सुन न पाए, और मेरे कान में धीमे से बोलीं, "वो दिनभर मदिरा में धुत रहते हैं। मैं नहीं जानती कि आपकी बात सुनने को तैयार भी होंगे या नहीं। उन्हें कुछ धन का लोभ दीजिए, तो संभवतया कुछ सुनें। वो आपकी बात पर ध्यान नहीं देंगे, पर धन देखते ही उनकी आँखें चमक उठेंगी।"

मैंने अली की जेब में पंद्रह सीरियाई पाउंड (एक डालर) डाल दिए और उन्हें लेकर प्रवासन व अनुमति विभाग पहुंची। अली जब उस कार्यालय में पहुंचे, तो वो अपने गले में अपना पहचान पत्र लटकाए हुए थे, जिससे कि संबंधों की निकटता बताए बिना ही यह सिद्ध हो जा जाए कि वो मेरे पति के परिवार से हैं। वो उस अधिकारी से बोले, "हां महोदय, यह मेरे

भाई की पत्नी हैं और मेरे भाई ने इन्हें ही अपनी संतानों का अभिभावक नियुक्त किया है। मेरे भाई की इच्छा के अनुसार मैं इन्हें उनके बेटे-बेटी के लिए पारपत्र लेने से नहीं रोकूंगा।" जब मैं वहाँ से निकली तो मेरे हाथ में पारपत्र भले ही था, परंतु मेरे भीतर ही भीतर क्रोध पनपने लगा था। एक चिकित्सक, ज्ञानवान और सम्माननीय महिला होते हुए भी मुझे अपनी ही संतान का अभिभावक बनने के उपयुक्त नहीं माना जाता, पर एक ऐसा अनैतिक व्यक्ति जो दिनभर मदिरा में डूबा रहता है और जो व्यक्ति एक डालर पर बिक जाता है, वह मेरा और मेरी संतानों का अभिभावक बनने का अधिकार रखता है।

जब मैंने वह कारागार रूपी देश छोड़ा, तो उस समय मेरे सूटकेस में और कुछ नहीं, केवल पीड़ादायी स्मृतियां थीं। मैं अपने पीछे वहाँ एक पुत्र और एक पुत्री छोड़ के आ रही थी, और उन्हें अपने पास तब ला पाती जब मैं और मेरे पति उनको अपने साथ रखने में समर्थ हो पाते। हां, मैं वहाँ से जब चली तो अपने बेटे-बेटी के लिए प्रेम तो था ही, साथ ही सुहा, फातिमा, अमाल और उन सहस्त्रों (हजारों) औरतों की स्मृतियां भी मेरे साथ थीं, जिनके दुख व कष्ट को यदि मैं लिपिबद्ध करूं तो ऐसी पुस्तकें तैयार हो जाएँगी जो अमरीकी कांग्रेस के पुस्तकालय में रखी जा सकती हैं। मैं अमरीका एक ही उद्देश्य लेकर आई थी कि उन लोगों की रक्षा करूंगी जिनकी स्थिति अल्लाह ने कीट-पतंगों की भांति बना रखी है। मेरे पास लक्ष्य तो था, परंतु ऐसा कोई स्पष्ट दृष्टिकोण अथवा योजना नहीं थी जिससे मैं अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकूं। परंतु अंततः अमरीका ने मुझे पुनर्गठित किया, मुझे ज्ञान से सुसज्जित किया और इससे मेरी दृष्टि स्पष्ट हो गई। इससे मुझे उन पीड़ितों को बचाने की योजना की रूपरेखा खींचने में सहायता मिली। मैंने निर्णय किया कि अल्लाह पर उसी प्रकार अभियोग चलाऊंगी, जिस प्रकार एक अपराधी पर अभियोग चलाया जाता है।

अध्याय 8

"अल-जजीरा पर वह महिला कौन है?"

अरब में प्रत्येक व्यक्ति यही पूछ रहा है: "वह महिला है कौन जिसने अल-जजीरा पर एक पुरुष को कह दिया कि चुप रह, मुझे बोलने दे?" उस समय तो मुझे तनिक भी भान नहीं था कि मैंने कैसी आग लगा दी है। आज भी, जब मुझे अल-जजीरा पर पहली बार अपने दिखने का वह समय ध्यान आता है, तो मैं अचंभित हो जाती हूँ कि मैं उस दिन क्या कर बैठी थी। पहली बार जब मैं अलजजीरा टीवी चैनल पर आई, तो उस कार्यक्रम में एक मुस्लिम उलेमा से मेरी परिचर्चा हुई। वह उलेमा हमारे स्थानीय मस्जिद के मौलवी से कोई भिन्न नहीं था। कार्यक्रम के संचालक ने दो दिन पूर्व मुझे संपर्क कर पूछा था कि क्या मैं उसमें भाग लेना चाहूँगी। उसने मुझे बहुत विस्तार से कार्यक्रम की रूपरेखा नहीं बताई, केवल इतना बोला था, "हम इस्लामी शिक्षाओं और आतंकवाद के मध्य संबंध पर आपका विचार जानना चाहते हैं।" लगभग सोलह वर्षों से मैंने साहित्यिक अरबी भाषा में कोई संवाद नहीं किया था। उन दिनों मैं अपने लेखन में साहित्यिक अरबी का प्रयोग तो करती थी, परंतु कभी ऐसी अरबी बोली नहीं थी। मुझे यह पता नहीं था कि यह कैसा कार्यक्रम है, क्योंकि मेरे केबल पर अल-जजीरा नहीं आता था और मैं सामान्यत: टीवी में बहुत रुचि भी नहीं रखती थी।

अल जजीरा ने इस विषय पर बोलने के लिए मुझे चुना था, तो निश्चित ही इसके पीछे कोई कारण था। अरब संसार में सब स्थानों पर मेरे लेखों की चर्चा हो रही थी। इस विषय पर मेरा विचार स्पष्ट और सटीक था। यद्यपि, अलजजीरा ने मुझे इसलिए चुना था कि वह अरब संसार के समक्ष मुझे उथला, अयोग्य एवं अपनी बात रखने में अक्षम सिद्ध करके मेरे विचारों की

विश्वसनीयता कटघरे में खड़ा कर सके। वे यह मानकर चल रहे थे कि भले ही मैं लेखक के रूप में अपनी बात पाठकों तक अच्छे ढंग से पहुँचाने में सक्षम हूँ, किंतु टीवी पर बोलते समय मैं अत्यंत विचलित हो जाऊंगी और सामने वाला एक ही प्रहार में मुझे परास्त कर देगा। अरब संसार में पाठकों की तुलना में टीवी के दर्शकों की संख्या बहुत बड़ी है और इन दर्शकों में मुस्लिम अरब समाज के सभी वर्गों के जन होते हैं। उन्होंने सोचा कि यदि वे एक बार उनके सामने मुझे विफल दिखा पाएं, तो यह मेरा अंत सिद्ध होगा!

अरब संसार की सामान्य जनता किसी परिचर्चा का मूल्यांकन मुख्यत: उसी मापदंड पर करती है, जिस पर मेरी अम्मी स्थानीय मस्जिद में बोल रहे मौलाना की बातों को तोलती थीं। उस कार्यक्रम में दूसरे अतिथि एक ऐसे प्रतिभावान आलिम थे, जो चीखने-चिल्लाने और शब्द प्रहार करने में सिद्धहस्त थे। जब मेरी बोलने की बारी आती, तो वह मुझे बोलने ही न देते, और बहुत समय तो ऐसे ही निकल गया। उन्होंने मेरे उत्तर देने के अधिकार का सम्मान नहीं किया, और न ही यह ध्यान रखा कि उस कार्यक्रम में मुझे भी बोलने के लिए समय दिया गया है। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि हमलावर दर्शन का मूल सिद्धांत ही यही है कि न तो किसी के अधिकार का सम्मान करो और न ही किसी की निजता का सम्मान करो। उनकी चीख-चिल्लाहट में मेरा समय व्यर्थ होता जा रहा था। वह मेरा एक शब्द नहीं सुन रहे थे, न मेरे एक भी प्रश्न का उत्तर दे रहे थे, केवल अपनी रट लगाए जा रहे थे। तब भी शांति व धीरज के साथ मैंने अपने विचार दृढ़ता से रखे और अल्प समय में ही दर्शकों तक अपना मत स्पष्ट और सारगर्भित ढंग से पहुंचाया। इस्लाम के इतिहास में कभी किसी महिला ने मर्दों के चीखने, कोलाहल करने और हमला करने की प्रवृत्ति को चुनौती नहीं दी थी। किंतु यहाँ यह पहली बार हुआ कि किसी महिला ने अपने धीरज से किसी मर्द की चीख व कोलाहल को शांत कर दिया और अपनी वाकपटुता व आत्मविश्वास से उसके चिंघाड़ को छिन्न-भिन्न कर दिया। जिस हमलावर व्यवहार में मुस्लिम मर्द इतने दक्ष माने जाते हैं, वह व्यवहार इस्लाम के इतिहास में पहली बार विफल हुआ, और इस्लामियों को यह पराजय भी उस महिला के हाथों मिली जिसने सोलह वर्षों से साहित्यिक अरबी में संवाद

नहीं किया था और जो पहली बार करोड़ों मुस्लिम श्रोताओं के समक्ष बोलने जा रही थी।

हमारा समय समाप्त हो रहा था, तो कार्यक्रम संचालक ने मुझे अपनी बात पूरी करने के लिए कुछ समय और दिया, किंतु वह हमलावर अतिथि मेरे बोलने में बाधा उत्पन्न करता रहा। मेरे पास समय कम बचा था और उसकी टोका-टाकी में मेरा समय बहुमूल्य समय व्यर्थ निकला जा रहा था, तो अंततः मैं उस पर बरस पड़ी: "बहुत हुआ, शांत हो जा अब। मेरी बारी है बोलने की!" जब मैंने यह वाक्य कहा, तो मुझे कल्पना भी नहीं थी कि इससे अरब और मुस्लिम इतिहास में एक नया अध्याय लिख जाएगा। इस्लाम के इतिहास में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था कि किसी महिला ने स्पष्ट एवं दृढ़ शब्दों में किसी मुस्लिम व्यक्ति को कहा हो कि बंद कर बोलना, मेरी बारी है बोलने की। इस्लाम मजहब व मुस्लिम प्रथा में महिलाओं की कोई बारी नहीं होती है। इस्लाम में महिला अकेले में भी अपने लिए समय नहीं ले सकती है। इस्लाम में महिलाओं का अपनी आत्मा तक पर भी अधिकार नहीं होता, उन्हें अपने निर्णय लेने का अधिकार नहीं होता है।

इस घटना के पश्चात् मेरे मेलबॉक्स में पत्रों की बाढ़ आ गई। अधिकांश पत्रों में मेरे उसी कथन का उल्लेख होता कि "अब शांत हो जा, मेरी बारी है बोलने की"। जो दर्शक मेरी उस प्रतिक्रिया का समर्थन कर रहे थे, वो मेरी प्रशंसा कर रहे होते और कह होते थे कि उस परिचर्चा में सबसे सुंदर यही कथन था, किंतु मुस्लिम व्यक्तियों को मेरी वह प्रतिक्रिया उनके हमलावर स्वभाव एवं चीखने की प्रवृत्ति पर खतरा लगने लगी थी, और इसीलिए वो मुझे बुरा-भला कहते हुए मेरे साहस को असभ्यता व अशिष्टता बता रहे थे। इन सबमें मेरे लिए जो सबसे महत्वपूर्ण बात थी, वह यह थी कि मैंने एक वर्जना तोड़ी थी और मुस्लिम औरतों ने इसे देखा होगा। मैंने एक ऐसी वर्जना तोड़ी थी जिसे मैं मानती ही नहीं हूँ, और जिसे मैं पवित्र अथवा अलंघनीय भी नहीं मानती हूँ। मुझे आशा है कि मेरे इस कार्य से प्रोत्साहित होकर अन्य महिलाएं भी मेरे पदचिह्नों पर चलेंगी। मैंने अर्थात एक महिला ने किसी मुस्लिम शेख की निर्लज्जता व ढिठाई को चुनौती दी और उसके छिछलेपन व पाखंड को उजागर किया, और यह चौदह सौ वर्षों में पहली बार हुआ।

ऐसा साहसिक कार्य करने वाली मैं थी कौन? मैंने जो किया, उस पर अचंभित होकर मैं ही स्वयं से प्रश्न करने लगी कि मैं कौन हूँ और मैं क्या मानती हूँ। अल जजीरा पर वह महिला कौन थी? मैं एक मुस्लिम महिला हूँ। हां, मैं अपने को एक मुस्लिम ही मानती हूँ, भले ही मैं इस्लाम को मानूं या न मानूं। मुसलमान होना मेरा अपना चयन नहीं था, किंतु यह मेरे वश में नहीं था कि कुछ और हो पाती। हममें से प्रत्येक व्यक्ति बाल्यकाल में बिछाए गए जाल में फंसा हुआ है, और हम इस जाल में फंसे रहें अथवा इससे बाहर निकलें, हमारा शेष जीवन यही कटु संघर्ष बनकर रह जाता है। इसमें पड़े रहने अथवा इससे निकल जाने का निर्णय आपका अपना होगा, और हम कुछ भी करें, जीवन चुनौती तो देगा ही। यदि आप इसमें पड़े रहने का निर्णय करते हैं तो जीवन आपके समक्ष ऐसी चुनौतियां प्रस्तुत करेगा कि आप इसके जाल से बाहर निकलने को व्याकुल हो जाएँगे, और यदि इस से बाहर निकला जाने का निर्णय करेंगे तो यह अपनी और खींचकर और जकड़ने का प्रयास करेगा। किसी की स्वतंत्रता उसके रुके रहने अथवा निकल जाने के निर्णय पर निर्भर करता है।

मैं अपने बाल्यकाल के आरंभिक वर्षों में इस्लाम के जाल में फंसी। जब मैं सोचने-समझने योग्य हुई, तब इस जाल से निकल कर बाहर जाने का निर्णय किया। मेरी स्वतंत्रता मेरे निर्णय से आई। मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैं स्वयं को इस जाल से पूर्णत: मुक्त कर पाऊंगी और कोई ऐसा कर भी नहीं सकता है, किंतु ऐसा करने की मेरी असमर्थता मुझे अपनी स्वतंत्रता से दूर नहीं कर सकती है। मैं अब स्वतंत्र हूँ, और मैं चाहूँ तो स्वयं को पूर्णत: स्वतंत्र कर लूं अथवा आंशिक रूप में मुक्त हो जाऊं।

यही जीवन की क्रीड़ा है। प्रत्येक व्यक्ति जन्म के साथ ही कोई न कोई पहचान लेकर आता है और उसकी यह पहचान किसी दूसरे का बनाई होती है। जन्म के साथ ही मिलने वाले इस पहचान को पाने में व्यक्ति का अपना कोई हाथ नहीं होता है, वह यह भी नहीं जानता कि यह पहचान कैसी होगी अथवा इसमें कौन-कौन से तत्व होंगे, परंतु उसे इस पहचान को ढोना ही पड़ता है। जन्म के साथ ही बलपूर्वक थोपी गई यह पहचान जीवन भर उस पर अंकित रहती है, क्योंकि इसे न तो पूर्णत: नष्ट किया जा सकता है और न ही यह पूर्णत: लुप्त हो सकती है। जन्म की प्रत्येक पहचान में व्यक्ति के पारिवारिक

मूल्य, सिद्धांत व परंपराएं होती हैं। यही आपकी निधि होती है और आपको जीवन की चुनौतियों का सामना इसी के साथ करना पड़ता है। इसका कुछ भाग आपके पथ में बाधा उत्पन्न करेगा और कुछ भाग उस मार्ग को सुगम बनाएगा। यह निर्णय आपको ही करना होता है कि क्या रखें और क्या छोड़ दें। जीवन उतना सरल नहीं है। क्यों?

प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से मिली पहचान दूसरों से भिन्न होती है। मेरी नानी को जो पहचान मिली, वह भिन्न थी, जबकि मार्गेट थ्रैचर भी एक महिला ही थीं, पर उनको दूसरी पहचान मिली। जन्म के समय थ्रैचर को जो पहचान मिली, उसने उनके प्रधानंमत्री बनने का मार्ग प्रशस्त किया। यह वही पहचान थी जिसका मूलवाक्य था, "तुम जो चाहो बनो।" जीवन में श्रीमती थ्रैचर के समक्ष अनेक चुनौतियां उनके मार्ग की अवरोध बनकर खड़ी हुईं, परंतु जन्म के समय उन्हें जो पहचान मिली थी, उसने उन्हें आगे बढ़ने के योग्य बनाया और वो उन चुनौतियों को परास्त करने में सफल हुईं।

मेरी नानी के जन्म की पहचान थोड़ी भिन्न थी। यह वही पहचान थी जिसने उन्हें भीतर से दुख के मारे मरते हुए भी अपने शौहर द्वारा दूसरी बीवी लाने के लिए की जा रही शादी पर नाचने को विवश किया। उनके जन्म के पहचान का मूलवाक्य भिन्न था। यह मूलवाक्य था, "औरतों में दोष होता है। शादी से इस दोष का दसवां भाग छिप जाएगा, और अन्य नौ दोष तभी समाप्त होंगे जब वह कब्र में जाएगी।" मेरी नानी अपने शौहर की शादी में नाचने से मना कर सकती थीं, परंतु उन्होंने उनके आदेश का पालन करने और उनके अधीन रहकर बीवी बने रहने का निर्णय किया। जीवन ने मार्गेट थ्रैचर के साथ जो क्रीड़ा की, और जो खेल जीवन ने मेरी नानी के साथ खेला, दोनों में भिन्नता थी। थ्रैचर के साथ जीवन उतना क्रूर नहीं रहा, जितना कि मेरी नानी के साथ रहा। श्रीमती थ्रैचर को यह समझाया गया कि वह प्रधानमंत्री बनने के लिए उपयुक्त हैं, जबकि मेरी नानी को बताया गया कि वह केवल मेरे नाना की बीवी बनने योग्य ही हैं।

जीवन में इन दोनों ही महिलाओं के समक्ष चुनौतियां आईं कि वे अपनी धारणा त्याग दें, किंतु जब तुलना करेंगे तो पाएंगे कि मेरी नानी के समक्ष आई चुनौतियां ऐसी थीं कि उनके लिए अपनी धारणाओं को छोड़ पाना

कठिन था, पर थ्रैचर के समक्ष आई चुनौतियां ऐसी नहीं थीं। आइए, तर्क के लिए कल्पना करें कि चुनौतियों से परास्त होकर श्रीमती थ्रैचर मन का यह विश्वास हटा देतीं कि वो जो चाहें बन सकती हैं। तब अधिक से अधिक क्या होता, यही न कि वो उस पद तक नहीं पहुँचतीं, किंतु यह भी तो नहीं होता कि वह निराश्रय होकर रोड पर आ जातीं। उनकी वह इच्छा अवचेतन में कहीं दबकर रह जाती, और भले ही उनकी वो इच्छा कभी न जगती, परंतु जब कभी इससे मिलती-जुलती इच्छा मन में उभरती होती तो उन्हें पीड़ा होती।

अब आइए तर्क के लिए कल्पना करें कि मेरी नानी इस धारणा को तिलांजलि देने का निर्णय करतीं कि महिलाओं में दोष होता है और शादी से इस दोष का दसांश छिप जाता है, तो क्या होता। इस धारणा से मुक्त होते ही नानी के भीतर नाना के आदेशों को न मानने का साहस आ जाता और वो उनकी शादी पर नाचने की पीड़ा से बच जातीं। परंतु ऐसा करते ही उन्हें नाना का घर छोड़कर अपने पिता के घर चले जाना पड़ता। यह स्थिति उनके और पिता दोनों के लिए अपमानजनक होती।

जिस प्रकार थ्रैचर को अवचेतन में वह धारणा पीड़ा देती, उसी प्रकार मेरी नानी भी दुखी होती रही होंगी। इसलिए नानी के जीवन में जब स्थितियां अच्छी हुईं, तब भी वो वही दब्बू व भयाक्रांत औरत बनी रहीं जो बनने के लिए उन्हें जन्म से ही समझाया गया था।

जन्म के समय मिली पहचान हमारे अवचेतन मन में गहरे बैठ जाती है और हम उसे चाहे जितना हटाने का प्रयास करें, उसका बड़ा घाव बना ही रहता है और दुखी करता रहता है। इसलिए मैं पुनः कहती हूँः मैं मुसलमान हूँ। अपनी चैतन्य अवस्था में मैंने स्वतंत्रता का अनुभव किया, और इस्लाम छोड़ देने का निर्णय किया, किंतु यह प्रश्न आज भी बना हुआ है कि अपने अवचेतन मन में बैठे जन्म के पहचान से मुक्त होने में कितनी सफल हो पाई हूँ। आज भी एक बड़ा घाव मेरा पथ रोकता है।

मैं अपने आप से पुनः पूछ रही हूँ, "अल जजीरा पर वह महिला कौन है?" और मेरा उत्तर वही है, जो इस्लाम की शिक्षाओं के कारण मेरी नानी का होताः उसमें दोष है! वह अपने शौहर के प्रति कृतज्ञ है कि उन्होंने दोष के दसवें भाग को ढंक लिया और दोष के शेष भाग को छिपाने के लिए वह कब्र

में जाने के दिन की प्रतीक्षा कर रही हैं।" स्नायु जीवविज्ञान के आधुनिक अध्ययनों में यह निकलकर आया है कि जन्म के समय मिली पहचान के साथ ही मस्तिष्क की कोशिकाओं व उतकों में संरचनात्मक, रासायनिक व मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं। मुझे नहीं पता कि मैं अपने को पुननिर्मित कर सकती हूँ या नहीं, परंतु एक बात मैं भली प्रकार जानती हूँ: मैं नहीं चाहती कि मेरी बेटियों को भी उनके जन्म की पहचान उसी प्रकार प्रभावित करे, जिस प्रकार मैं उस पहचान से प्रभावित रही जो मेरी अम्मी ने मुझे जन्म के समय दिया था।

मैं आशा करती हूँ कि जो मैं यहाँ लिख रही हूँ, उससे मुसलमानों को उस पहचान के विषय में चिंतन करने में सहायता मिलेगी जो वे अपनी संतानों पर उनके संसार में आने से पूर्व ही थोप देते हैं। मैंने अपनी वंशानुगत पहचान के कारण जो कुछ सहा है और आज भी सह रही हूँ, वह मृत्युपर्यंत मेरे साथ रहेगा। किंतु कुछ सीमा तक मैंने अपनी बेटियों को उन पीड़ाओं से बचा रखा है। हो सकता है कि मेरी बेटियां मार्गेट थ्रैचर न बन पाएं, किंतु मुझे तनिक भी संदेह नहीं है कि वो श्रीमती थ्रैचर के पदचिह्नों पर चलेंगी, न कि मेरी नानी के समान बनेंगी। मुझे इस बात में भी कोई संदेह नहीं है कि यदि वो मार्गेट थ्रैचर बनना चाहेंगी तो बनेंगी। मैंने अपनी वंशानुगत पहचान को अस्वीकार किया तो ऐसा नहीं था कि केवल अपने प्रति संवेदना के कारण ऐसा किया, अपितु मैंने भावी पीढ़ियों के प्रति अपनी संवेदना के कारण ऐसा किया।

पुन: मैं स्वयं से पूछती हूँ, "अल जजीरा पर वह महिला कौन है? मेरे भीतर से स्वर फूटता है कि वह एक मुस्लिम महिला है। परंतु मुस्लिम महिला क्या होती है? वह जो भी है, पर इस्लाम उसको यही बताता है कि वह अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में है। इस्लाम ने उसकी जन्म की पहचान पर कैसा सिद्धांत पीड़ादायी ढंग से थोप दिया है? "कि "महिला होना एक दोष है, पाप है।" जन्म की पहचान पर थोपी गई यह हदीस, जिसे इस्लाम के रसूल मुहम्मद द्वारा कहा गया है, एक औरत से उसकी बेटी तक और उस बेटी से उसकी बेटी तक पहुँचाई जाती रही है, और यह क्रम निरंतर चलता रहता है। इसी क्रम में यह हदीस मुझ तक पहुंची है। इस एक हदीस के चारों ओर लाखों सुन्नत बना

दी गईं और इन सुन्नतों ने इसे न केवल थोथा बनाया, अपितु कुरूप भी बनाया है।

इस्लाम में यह हदीस और इसका दुष्प्रभाव भयानक है: हमारे लिए इस हदीस की अवहेलना करना, इस पर संदेह करना अथवा प्रश्न उठाना निषिद्ध किया गया है। किसी महिला के लिए धरती पर इससे भयानक धारणा दूसरी कोई नहीं होगी कि वह अपने आप में एक दोष है, और यह धारणा जितनी आहत करती है, उसके घाव को कोई तर्क कम नहीं कर सकता है। जिस दिन से मैं सोचने-समझने योग्य हुई, यह हदीस मेरे मन-मस्तिष्क में ठूंसा जाने लगा। ऐसा नहीं था कि केवल यही हदीस मन में बिठाया जा रहा था, और भी हदीसें बारंबार सुनाई जाती थीं, परंतु यह हदीस सबसे बुरी थी।

मुझे जब भी उन बातों का स्मरण होता है, जो मेरी शैशवावस्था में अम्मी मुझसे कहती थीं, तो ध्यान आता है कि वो मेरे नाम रखने के पीछे की क्या कहानी सुनाती थीं। जब भी वो वह कहानी सुनाती थीं तो हँसती थीं, परंतु मुझे बार-बार यही लगता था कि वह हँस नहीं रही हैं, भीतर ही भीतर क्रंदन कर रही हैं। वो मुझे बताती थीं कि जब मेरा जन्म हुआ तो वह प्रसन्न नहीं थीं, और बताने की आवश्यकता नहीं है कि मेरे पिता भी मेरे आने से प्रसन्न नहीं थे। मेरी चाची के पहले से ही दो पुत्र हो चुके थे। इस दबाव के कारण मेरा जन्म विपत्ति समान ही था और इसीलिए अम्मी सोच नहीं पा रही थीं कि मेरा क्या नाम रखें। एक दिन प्रात: चाचा मेरे घर के ओसारे में से जा रहे थे कि उन्होंने अम्मी की बांहों में मुझे देखा। चाचा ने सलाम कहा और पूछा: "इसका कुछ नाम-वाम सोचा कि नहीं?"

अम्मी ने कहा, "अभी तक तो नहीं। कोई नाम सुझाइए?"

मेरे चाचा ने बिना किसी संकोच के कहा, "इसे विष्ठा (टट्टी) बुलाया करो, यही नाम इसके लिए सबसे उपयुक्त होगा।"

मेरी अम्मी ने सैकड़ों बार यह कहानी सुनाई होगी और मैं दूर से सुनती रहती। वो पड़ोस की अपनी सहेलियों के मनोरंजन के लिए हास-परिहास में यह कहानी सुनाती रहतीं, इस बात से अनजान कि जब भी वो यह कहानी सुनाती हैं तो मैं भीतर तक आहत हो जाती हूँ। इस प्रकार चाचा के कहने पर अम्मी ने मेरे जन्म के पहचान में विष्ठा नाम जोड़ दिया। यद्यपि सदियों से

वंशानुगत चली आई उनकी अपनी पहचान ने मेरे साथ ऐसा व्यवहार करने के लिए उन्हें तैयार किया।

किसी भी मुस्लिम महिला के जन्म की पहचान का सबसे भयानक पक्ष वह है जो रसूल द्वारा अपनी बीवियों के विषय में बताई गई सुन्नत से निकलता है। यह सुन्नत ही प्रत्येक मुस्लिम महिला को इस जाल में फांसता है: मेरे जीवन में कोई भी पुरुष अपने रसूल से श्रेष्ठ नहीं हो सकता है, और मैं भी शौहर के प्रति उतनी ही आज्ञाकारी रहूँगी जितना कि रसूल की बीवियां शौहर अपने शौहर के प्रति थीं। मुस्लिम पुरुषों ने अपने रसूल के स्थान पर अपने को मान लिया है और मुस्लिम महिलाओं ने रसूल की बीवियों के स्थान पर स्वयं को रख लिया है।

इस्लाम के पुरुष व स्त्री इस जाल से बाहर कैसे निकल पाएंगे? मुझे नहीं लगता कि वे तब तक ऐसा करने में सफल हो पाएंगे, जब तक कि उनमें मुहम्मद की इन शादियों को आलोचनात्मक ढंग से देखने की इच्छा न जगे। उन्हें यह आलोचनात्मक दृष्टि मुहम्मद या उसकी बीवियों के प्रति तिरस्कार की भावना से नहीं, अपितु इस सोच के साथ लानी होगी कि मुहम्मद उनका आदर्श है, तब यह दृष्टि उन्हें महिलाओं के प्रति मुस्लिम पुरुषों की सोच व व्यवहार की व्याख्या करने में सहायता करेगी।

कुरआन कहती है: "अल्लाह के रसूल में श्रेष्ठ आदर्श है" (33:21)। रसूल ने आयशा से जब शादी की तो वह मात्र छह वर्ष की थी और वह 50 वर्ष से ऊपर का था। जब आयशा 9 वर्ष की हुई तो उसने उसके साथ यौन संबंध बनाया। रसूल मुहम्मद के जीवनवृत्त, बिंत अल-शाती के "मुहम्मद की बीवियां", में आयशा के शब्दों में उस दिन का वर्णन है:

> "रसूल ने मुझसे जब शादी की तो मैं 6 वर्ष की थी और जब वह 9 वर्ष की हुई तो सुहागरात मनाया। अल्लाह के रसूल मर्दों और औरतों के साथ मेरे घर आए। साथ आए लोग उनके अनुयायी थे। मैं पेड़ की शाखा पर पड़ा झूला झूल रही थी, कि अम्मी [मेरे पास] आईं और मुझे नीचे उतारा। उन्होंने मेरे केश ठीक किए, मुंह धोया और थोड़ा आगे आकर मुझे द्वार की ओर ले जाने लगीं। उन्होंने थोड़े समय के लिए मुझे बाहर ही रोक दिया, जिससे कि मैं तनिक संयत

हो जाऊं। अल्लाह के रसूल हमारे घर में एक बिछौने पर बैठे थे और अम्मी ने मुझे उनकी गोद में बिठा दिया। प्रत्येक व्यक्ति वहाँ से उठा और बाहर चला गया तथा हमारे घर में ही रसूल ने मुझसे शादी की।"

ऐसा नहीं है कि मेरी इस पुस्तक में सुन्नत की यह कहानी इसके ऐतिहासिक मूल्य के कारण दी गई है, अपितु इसे मैंने इसलिए दिया है कि मुस्लिम पुरुषों व महिलाओं के नैतिक व मानसिक बनावट को उजागर करने लिए आज तक चले आ रहे इसके नैतिक महत्व और प्रभाव पर परिचर्चा कर सकूं। पचास वर्ष से अधिक आयु का एक वृद्ध छह वर्ष की छोटी कन्या से शादी करता है और उस कन्या के नौ वर्ष की होने पर उसके साथ सुहागरात के नाम पर बलात्कार करता है। यह सीधा-सीधा आपराधिक कृत्य था। जब यह आपराधिक घटना हुई, तब मैं इस संसार में नहीं थी, परंतु अब समय आ गया है कि इस घटना को आपराधिक माना जाए। इस अपराध की नृशंसता इस घटना तक ही सीमित नहीं है, अपितु इस घटना को जो मजहबी विधिमान्यता व स्वीकार्यता दी गई है वह तो और भी जघन्य है। इस आपराधिक घटना का महत्व व गंभीरता इसके समय अथवा स्थान के कारण नहीं है, अपितु इसलिए है क्योंकि मुस्लिम व्यक्तियों में इसमें नैतिक आदर्श देखने की प्रवृत्ति होती है।

इस्लामी प्रथाओं में बचपन का कोई मोल नहीं होता है। बालक अथवा बालिका अपने पिता की ऐसी संपत्ति होता है जिसे वह पिता अपनी अन्य संपत्तियों की भाँति ही कैसे भी प्रयोग कर सकता है। जब कोई महिला अपनी छह वर्ष की अबोध बेटी को उसके दादा की आयु के व्यक्ति की बांहों में सौंप रही हो तो सीधे-सीधे उस बेटी के बाल्यकाल का ऐसा हनन होता है कि इस घाव को जीवन भर नहीं भरा जा सकेगा। जब उस महिला के इस घिनौने कृत्य को मजहबी व विधिक मान्यता मिल गई, तो यह चौदह सौ वर्षों से जीवन जीने की शैली बन गई।

मुस्लिम संसार में बालक अथवा बालिका का कोई अधिकार नहीं होता है। वह चल-अचल निर्जीव संपत्ति की भाँति संपत्ति का एक टुकड़ा है, न कि वह अपने माता-पिता का उत्तरदायित्व है। इस्लामी शिक्षा मुस्लिम शिशुओं के मन में यही भरती है कि उन्हें प्रत्येक स्थिति में अपने अभिभावकों की आज्ञा

का पालन करना है, क्योंकि वे ही उन्हें संसार में लाए हैं, किंतु यही मजहबी शिक्षा अभिभावकों को लेशमात्र भी यह नहीं बताती कि संतान के जीवन की गुणवत्ता व प्रकृति के प्रति उनका दायित्व क्या है। मुस्लिम शिक्षा का पूरा ध्यान केवल इस बात पर होता है कि शिशु को कैसे इस प्रकार तैयार किया जाए कि वह अंधा बनकर अपने अभिभावकों की आज्ञा का पालन करे। वह उनके प्रत्येक आदेश का पालन करता है और अभिभावक उसे उन बातों से दूर रहने को कहते हैं जो उसे अल्लाह की आज्ञा का पालन करने से रोकें। अल्लाह लोगों पर उनके अभिभावकों के माध्यम से पकड़ बनाए रखता है और अल्लाह नामक राक्षस का शिशु पर नियंत्रण बना रहे, इसके लिए इससे भी आगे जाकर वह आदेश देता है कि यदि अभिभावकों की आज्ञा उसके आदेश के अनुरूप नहीं है तो शिशु को उनकी भी आज्ञा नहीं माननी चाहिए।

इस्लामी विधि में शिशुओं के प्रति समाज के दायित्व के विषय में केवल एक ही स्थिति का वर्णन किया गया है, वह यह कि यदि शिशु के माता-पिता या अभिभावक इस्लाम का परित्याग कर दें तो समाज को आगे आकर उस शिशु को प्रत्येक स्थिति में मुसलमान बनाए रखना चाहिए। क्या है कि ऐसी विधियों का अभाव है जो मुस्लिम समाज शिशुओं को उनके अभिभावकों के अत्याचार से बचाए, इसलिए इस समाज में लोग अपने शैशव काल के आरंभ से ही अपने अभिभावकों के जाल में फंस जाते हैं और उनकी दया पर जीते हैं। जीवन भर उनकी स्थिति ऐसी ही बनी रहती है। मुस्लिम परिवार में जब तक अब्बा जीवित रहता है, उसकी दृष्टि में संतान शिशु ही बना रहता है, और जब उस संतान की शादी हो जाती है तो वह अपनी बीवी व संतान पर कड़ा नियंत्रण रखकर अपनी मर्दानगी दिखाता है।

जब तक आपको यह न पता चल जाए कि इस अत्याचार का आरंभ कहाँ से हुआ और इसका अंत कहाँ होगा, यह दमन चक्र चलता ही रहता है। जब कोई मुस्लिम महिला शादी करती है तो ऐसा नहीं है कि वह केवल किसी युवक से शादी करती है, अपितु मुस्लिम विधि अर्थात शरिया के अंतर्गत शादी के पश्चात् उस व्यक्ति के अब्बा और अम्मी का भी उनके जीवन में बड़ी भूमिका होती है। उस युवक के अम्मी-अब्बा छोटे-बड़े सभी विषयों में टांग अड़ाते हैं और युवक की अम्मी स्थिति का लाभ उठाते हुए उस भूमिका को ओढ़ लेती है,

जो उसे अपने जीवन में नहीं मिल पाया था। बहू के साथ सामान्यत: उसका व्यवहार क्रोधपूर्ण एवं प्रतिशोधात्मक हो जाता है और वह भी उसी प्रकार का अत्याचार करने लगती है, जो उसने तब सहा था जब वह स्वयं एक बहू बनकर आई थी। युवा शौहर को लगता है कि अपनी अम्मी की प्रत्येक बात को मानना उसका विधिक व पारंपरिक कर्तव्य है, और वह अपनी अम्मी को उसके अपने जीवन एवं उसके परिवार के जीवन में बिना किसी रोक-टोक के स्वेच्छाचारी व असंयमित ढंग से हस्तक्षेप करने का अधिकार दे देता है।

मुस्लिम व्यक्ति अनजाने में वही भूमिका धारण कर लेता है, जो उसके पिता की थी और वह एक ओर इसका अपराध बोध तो करता है कि युवावस्था में उसकी अम्मी ने उसके अब्बा के कितने अत्याचार सहे हैं, परंतु साथ ही वह अपनी बीवी पर वैसा ही अत्याचार करता है, जैसा कि उसके अब्बा ने उसकी अम्मी के साथ किया था। वह अपनी बीवी पर सास के अत्याचार को यह कहकर उचित ठहराता है कि अम्मी को प्रतिशोध लेने का अधिकार दे रहा है, क्योंकि उन्होंने भी अत्याचार सहा है। उसकी अम्मी अनजाने में अपनी सास की वही अत्याचारी भूमिका निभाने लगती है और अपनी युवावस्था में हुई पीड़ा को क्रोध के रूप में अपनी ही बहू पर उड़ेलने लगती है। यह चक्र चलता रहता है, क्योंकि इस्लाम महिलाओं को अन्य महिलाओं पर अत्याचार करने के उपकरण के रूप में प्रयोग करता है। इस प्रकार के समाज की स्त्रियां उन पुरुषों से तो प्रतिशोध नहीं ले पाती हैं, परंतु वे अपने दमित क्रोध को अन्य स्त्रियों पर उतारती हैं।

मेरे पास ऐसी मुस्लिम महिलाओं के बहुत पत्र आते हैं जो मुझे बुरा-भला कहती हैं। मैं आज तक यह नहीं समझ सकी कि किसी महिला की दूसरे महिला के प्रति ऐसी प्रतिक्रिया कैसे आ सकती है। मुझे तो लगता है कि ऐसी प्रतिक्रिया ईर्ष्यावश ही आ सकती है, और दुर्भाग्य यह है कि यही ईर्ष्या ही इन महिलाओं को भकोस रही है। जब ये महिलाएं मेरे लेख पढ़ती होंगी तो जाने-अनजाने अपने आप से पूछती होंगी: "मेरे पास तो अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता नहीं है, तो वफा सुल्तान के पास यह स्वतंत्रता क्यों है? क्यों वफा को ऐसे देश में रहने का सौभाग्य मिला जहाँ महिला जाति का सम्मान होता है, पर मेरा भाग्य ऐसा क्यों नहीं है?" जब उन्हें अपने प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता है तो

वे मुझ पर प्रहार करने लगती हैं, मुझे कोसने लगती हैं। मैं उनकी दशा समझती हूँ और उनका सम्मान करती हूँ। अपितु यूं कहूँ कि मेरी उनके प्रति सहानुभूति और बढ़ जाती है तो अनुचित नहीं होगा। मेरा हृदय चीत्कार कर उठता है, क्योंकि मुझे पता है कि उनका जीवन कितना भयानक है। किंतु उनके लिए मैं यही कर सकती हूँ कि लिखूं और बोलूं। संभवत: जिस ढंग से मैं इस्लाम के विरुद्ध मुखर होती हूँ, उससे मैं उन्हें उस जाल से बाहर निकलने में सहायता कर सकती हूँ जिनमें वो सब फंसी हुई हैं।

जिस दिन मुहम्मद ने आयशा से शादी की थी, उसी दिन से मुस्लिम महिलाओं पर अत्याचार का चक्र आरंभ हो गया था और वह अत्याचार आज तक चला आ रहा है। मेरी बहन ने अपनी बेटी की शादी अपनी मामी के बेटे से करने का निर्णय किया। उनकी बेटी मात्र 11 वर्ष की थी, जबकि वह व्यक्ति 40 वर्ष का था। उस समय मैं किशोरावस्था में थी, और मुझे आज भी ध्यान है कि जब पड़ोस की महिला ने मेरी बहन से पूछा कि इस शादी के विषय में बेटी क्या सोचती है तो उन्होंने कहा था: "वह अभी छोटी है, समय बीतने के साथ वह उसे प्रेम करने लगेगी। यह शादी अल्लाह व उसके रसूल के नियमों के अनुसार सही है।" आह! वह शादी कभी न हुई होती। वह शादी उस बालिका के लिए भयानक व कटु अनुभव वाली रही और वह जीवन भर इसकी पीड़ा से उबर नहीं सकी। प्राय: जब मेरी भतीजी अपने शौहर से पीछा छुड़ाकर अपने अब्बा के घर भागकर चली आती थी, पर यहाँ भी उसे ऐसा लगता था कि मानो बंदीगृह के एक कोने से छूटकर दूसरे कोने में पहुँच गई हो। उसके अब्बा उसे मनाते हुए समझाते कि एक औरत के लिए सबसे अच्छा स्थान उसके शौहर का घर होता है और मायके वालों के दबाव में वह "अल्लाह व उसके रसूल द्वारा नियत उस सर्वश्रेष्ठ स्थान" पर वापस लौट जाती। इस मकड़जाल से बाहर निकल पाने में स्वयं को असमर्थ पाकर मेरी भतीजी अंतत: निराश हो गई और छब्बीस वर्ष की आयु में उसने आत्महत्या कर ली। तब तक वह चार संतानों को जन्म दे चुकी थी।

मुस्लिम मर्द और औरत के मध्य संबंधों पर मुहम्मद और आयशा के शादी का एक और भयानक दुष्प्रभाव पड़ता है। इस कहानी में मुहम्मद नौ वर्ष की आयशा पर उसी क्षण टूट पड़ा था, जब आयशा की अम्मी ने अपने ही घर

के एक बिछौने पर उसे मुहम्मद की बांहों में फेंक दिया था। इस सुन्नत के आधार पर इस्लाम महिला के उस अधिकार का हनन करता है कि वह शादी के लिए उपयुक्त शारीरिक, बौद्धिक और भावनात्मक परिपक्वता प्राप्त करने तक रुकी रहे। यह सुन्नत मुस्लिम महिला को किसी समझदार मनुष्य से विवाह करने के अधिकार से वंचित करती है। वह छोटी सी बच्ची आयशा जो कुछ देर पहले तक बालसुलभ क्रीड़ा में झूला झूल रही थी, कुछ ही मिनट पश्चात् एक बुड्ढे की बांहों में आते ही परिपक्व महिला बन गई! यह कैसी नैतिकता है, इसे तो नैतिकता का कोई भी सिद्धांत उचित नहीं ठहराएगा! सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि इस आपराधिक कृत्य को मजहबी व धर्मनिरपेक्ष दोनों नियमों से स्वीकृति दे दी गई है, और यह जीवन शैली बन गई है।

इस नियम के कारण मुस्लिम संसार में न जाने कितनी छोटी कन्याओं का बाल्यकाल छीन लिया जाता है। अरब खाड़ी देशों के मुस्लिम पुरुषों द्वारा जार्डन, सीरिया और मिस्र आदि अरब देशों की अल्पवयस्क कन्याओं के विरुद्ध ऐसे अपराध सैकड़ों की संख्या में किए जाते हैं। इन अभागी मुस्लिम बालिकाओं का अपने जीवन पर कोई वश नहीं होता है। अंड-बंड धन और अनैतिकता की पोटली लिए घूमने वाले ये अरबी पुरुष इन देशों में व्याप्त निर्धनता का लाभ उठाते हुए अल्पवयस्क बालिकाओं को धन-बल से क्रय करते हैं। इन राक्षस सूअरों द्वारा क्रय की गई एक-एक बालिका दुख व पीड़ा के सागर में पहुँच जाती है, अल्लाह और उसके रसूल के नियम के नाम पर धन के कुछ टुकड़े देकर इन अभागी मुस्लिम बच्चियों का बचपन, उनका नारीत्व, उनका सम्मान और उनकी छवि छीन ली जाती है, और उनका भयानक शारीरिक शोषण व उत्पीड़न करके निर्जीव-सा बना देने के पश्चात् उन्हें उनके परिजनों को वापस लौटा दिया जाता है। ये अल्पवयस्क बालिकाएं एक ऐसे समाज में परित्यक्त स्थिति में छोड़ दी जाती हैं, जहाँ उनकी दुर्दशा की ओर देखा तक नहीं जाता है और इन बालिकाओं का जीवन नर्क बन जाता है। जीवन के शेष दिन वह दूसरों द्वारा निर्ममतापूर्वक एवं असंवेदनहीनता से दूसरों द्वारा चबाए जाने की स्थिति में काटती हैं।

मुहम्मद की दूसरी शादियां भी ऐसी हैं जो एक पुरुष व स्त्री के मध्य उचित संबंध को नष्ट करने वाली हैं। ऐसी ही एक शादी उसने जैनब के साथ

की थी। जैनब मुहम्मद की मौसेरी बहन थी और उसके दत्तक पुत्र जैद की बीवी थी। इस प्रकार जैनब मुहम्मद की पुत्र वधू थी। एक दिन रसूल मुहम्मद जैद व जैनब के घर गया। इसी समय घर में किवाड़ पर लटका ओट वायु के झोंके से हट गया और मुहम्मद की दृष्टि जैनब के खुले मुख पर पड़ गई। वह उसकी सुंदरता देखकर मुग्ध हो गया। जैनब ने उसे भीतर आने को कहा, परंतु उसने मना कर दिया और अपने पग पीछे खींचकर मन ही मन बुदबुदाने लगा: "उस अल्लाह का गुणगान हो जो हृदयों को परिवर्तित कर देता है।" जैद घर आया तो उसे इस घटना की जानकारी हुई। वह तुरंत मुहम्मद के पास जाकर बोला: "संभवतया जैनब को देखकर आप आनंदित हो गए थे, तो अब मैं उसे आपके लिए छोड़ देता हूँ।" मुहम्मद ने उससे कहा: "अपनी बीवी अपने पास रखो।" इस घटना पर तनिक विचार कीजिए, वह दत्तक पुत्र अपनी बीवी ससुर को ऐसे दे रहा था, मानो कि वह अपने किसी मित्र से कह रहा हो, "तुम्हें मेरे जूते अच्छे लग गए क्या? अच्छा रुको, मैं उतार देता हूँ, तुम पहन लो?" जबसे "दोषमुक्त बताई गई" यह शादी हुई, तब से लेकर आज तक सदियों से मुस्लिम समाज में औरतों को जूते की भाँति पहना और निकालकर फेंक दिया जाता है।

किंतु मुहम्मद अपनी वासना को रोक नहीं पा रहा था, तो अल्लाह का सिंहासन डोलने लगा और अल्लाह एक के पश्चात् एक आयत भेजकर मुहम्मद की वासना पूर्ति के लिए खुली छूट देता रहा, मुहम्मद की एक-एक दुविधा को दूर करने के लिए जिबराइल धरती और आकाश के बीच दौड़-भाग करने लगा। कुरआन की इन आयतों में जो सबसे पहली आयत आई उसमें अल्लाह ने मुहम्मद को झिड़का कि वह अपनी इच्छाएं मार क्यों रहा है: "तुम को मनुष्यों का भय है, अच्छा होता कि तुम्हें केवल अल्लाह का भय होता (33:37)।" इस्लाम के जन्म से पहले अरबी समाज में दत्तक पुत्र की पत्नी से विवाह वर्जित था, इसलिए मुहम्मद की सुविधा के लिए तीसरी आयत उतारकर जैद के दत्तक पुत्र होने को अमान्य कर दिया गया और जो लोग मुहम्मद द्वारा अपनी पुत्रवधू से शादी करने पर बुरा-भला कहने लगे थे, उनके मुंह बंद कर दिए गए। "मुहम्मद तुममें से किसी का अब्बा नहीं है। वह अल्लाह का रसूल है और अंतिम संदेशवाहक (पैगम्बर) है" (33:40)।

जैसा कि यहाँ देखा जा सकता है कि मुस्लिम आदमी इतने दुर्बल होते हैं कि अपनी वासनाओं पर नियंत्रण नहीं रख सकते हैं, इसीलिए उन्हें कुछ भी उचित-अनुचित करने का अधिकार है। जब अल्लाह के रसूल ने अपने दत्तक पुत्र की बीवी पर वासना भरी कुदृष्टि डाली, तो अल्लाह ने आदेश दिया कि वह अपनी इस वासना की पूर्ति करे और यह व्यवहार मजहबी व सांसारिक दोनों नियमों में मुसलमानों के लिए पवित्र बना दिया गया। मुहम्मद ने अपनी पुत्रवधू के साथ शादी को उचित ठहराने के लिए दत्तक ग्रहण (संतान गोद लेने) पर ही प्रतिबंध लगा दिया, जबकि तत्कालीन समय के नैतिक मानदंडों के अनुसार पुत्रवधू से साथ विवाह सामाजिक रूप से अस्वीकार्य कृत्य माना जाता था। इस प्रतिबंध ने उस सामाजिक प्रणाली का अंत कर दिया जो उस समय किसी कारणवश अनाथ हो गए शिशुओं का संरक्षण व सहायता करता था, और यह प्रतिबंध आज तक मुस्लिम समाज की आत्मा को दूषित व घिनौना बना रहा है।

इन मुस्लिम समाजों में ऐसे अनेक शिशु होते हैं, जिनके सिर से माता-पिता की छाया उठ जाती है और इन्हें ऐसे पीड़ित के रूप में जीना पड़ता है जिनका कोई माई-बाप नहीं होता है। मुस्लिम समाजों में पिता की नई बीवी अपनी संतान के आगे अपने शौहर की दूसरी बीवी से जन्मी संतानों का न तो सम्मान करती है और न ही उनके साथ ठीक व्यवहार करती है। दत्तक ग्रहण को प्रतिबंधित करने वाले मजहब में उसका विश्वास उसे जाने-अनजाने सौतेली संतानों के साथ अच्छा व्यवहार करने से रोकता है। नए शौहर भी अपनी बीवी के पहले की शादी से उत्पन्न संतानों के साथ ऐसा ही दुर्व्यवहार करते हैं। इन समाजों में अनाथालय एक ऐसे बाड़े से अधिक कुछ नहीं होते हैं, जहाँ मूल नैतिक सिद्धांतों की उपेक्षा होती है। समाज ऐसे शिशुओं को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है और इनमें से अधिकांश विवाहेत्तर संबंधों के परिणामस्वरूप जन्मे शिशु होते हैं। इन शिशुओं के माध्यम से इनके पिताओं से प्रतिशोध लिया जाता है और लोग अपनी इस्लामी मान्यताओं के कारण इन शिशुओं को गोद लेने से अस्वीकार कर देते हैं। इस्लाम मजहब ऐसे शिशुओं की व्यवस्था व भरण-पोषण के लिए कोई समाधान तो सुझाता नहीं हैं, हाँ, दत्तक ग्रहण को निषिद्ध अवश्य करता है। हम सभी को स्मरण होगा कि बोस्निया में युद्ध के

परिणामस्वरूप विश्व को किस प्रकार एक विपदा का सामना करना पड़ा था। इस युद्ध के समय अवैध रूप से बनाए गए यौन संबंधों के कारण 30,000 से अधिक शिशुओं का जन्म हुआ था और उनकी मुस्लिम अम्मियों ने अपने शिशुओं को अपनाने से मना कर दिया था। इन शिशुओं को पश्चिमी देशों में बांट दिया गया और इनमें से अधिकांश शिशु अमरीका लाए गए थे। किसी मुस्लिम देश ने इनमें से एक भी शिशु को नहीं लिया था।

मुहम्मद की सभी शादियों में सबसे भयानक साफिया के साथ हुई शादी थी। साफिया बिंत हयी एक यहूदी महिला थीं। खैबर जनजाति पर हमला करते समय मुहम्मद ने उनके पति, भाई और पिता की हत्या कर दी थी। मुहम्मद के एक आदमी साहम ने उस हमले के समय साफिया को बंदी बना लिया। मुहम्मद ने साफिया को उससे ले लिया और इसके स्थान पर उसे क्षतिपूर्ति के रूप में सात अन्य महिला बंदी दे दिए। जिस दिन मुहम्मद ने साफिया के पति, भाई और पिता की हत्या की थी, उसी दिन उसने बलपूर्वक साफिया से शादी की। एक बार पुन: महिला को अपनी शादी अथवा नियति के संबंध में निर्णय का कोई अधिकार नहीं दिया गया। मुहम्मद साफिया की इच्छा के विपरीत उन्हें बलपूर्वक अपनी बाहों में ले आया, और साफिया को कोई अधिकार नहीं था कि वह उनके साथ जो करे उसकी सहमति दें या मना कर सकें।

जब मुस्लिम संसार में महिलाओं की गिरती स्थिति की बात उठाई जाती है तो मुस्लिम विधि के कुछ समर्थक यह कहते हुए इस्लाम में महिला उत्पीड़न का बचाव करने लगते हैं कि इस्लाम में तो औरतों को सम्मान मिला है, पर इस्लाम मानने वाले कुछ लोग कुरआन व हदीसों को सही ढंग से नहीं समझ पाए हैं। किंतु मेरा प्रश्न आज भी अनुत्तरित है: क्या इस्लाम को मानने वाले यही लोग औरतों के साथ रसूल मुहम्मद के दुर्व्यवहार को भी सही ढंग से नहीं समझ पाए हैं? कुरआन की वो आयतें व रसूल की वो हदीसें कहाँ हैं, जो मुहम्मद के इस व्यवहार की कुरुपता को कम कर सकें? सच तो यह है कि ऐसी कोई आयत या हदीस है ही नहीं। पचास वर्ष के एक बुड्ढे और छह वर्ष की अबोध लड़की की शादी (तीन वर्ष पश्चात् बनाए गए यौन संबंध) को बलात्कार के अतिरिक्त कुछ और कह सकते हैं क्या? इन प्रश्नों के उत्तर कभी नहीं मिलेंगे।

किसी व्यक्ति द्वारा अपने ही बेटे की बीवी से शादी करने को हम उचित कृत्य कैसे ठहरा सकते हैं? इन प्रश्नों से बचा नहीं जा सकता है। हम कैसे नहीं कहेंगे कि किसी व्यक्ति द्वारा किसी महिला के पति, भाई, पिता और पूरे कुल की हत्या करने के पश्चात् उसे बंदी बनाकर शादी कर लेना अपराध नहीं था? हम तो मुहम्मद की इन शादियों को अपराध कहेंगे, क्योंकि ऐसी कोई आयत या हदीस है ही नहीं, जो कि इन शादियों के अच्छे होने का कोई उचित तर्क दे सके।

महिलाओं के प्रति इस्लाम के व्यवहार के समझने के लिए आपको उस मरुस्थलीय वातावरण पर गंभीर चिंतन करना होगा जिसने इस्लाम को उत्पन्न किया। मरुस्थलीय जनजातियां रात को सोने जाती थीं और प्रात: जब आंख खुलती है तो पाती थीं कि उनसे शक्तिशाली जनजाति के लोग तलवार लेकर उन पर चढ़े हुए हैं। भूमि, धन और संपत्ति का भूखा हमलावर कबीला आंधी की भाँति आता और दूसरे कबीले को नष्ट करके सब छीन लेता। वे कबीलों के कुछ आदमियों की हत्या कर देते थे, और कबीले के शेष आदमी घर-बार छोड़कर भाग जाते थे। हमला समाप्त होने के पश्चात् विजेता कबीले के आदमी पराजित कबीले की औरतों को उसी प्रकार आपस में बांट लेते, जिस प्रकार वे उनके पशुओं, धन व संपत्ति को बांटते। अरब के इतिहास में हमले और इसके प्रभावों से कोई कबीला सुरक्षित नहीं था।

अरब के मरुस्थल में पुरुष भूख व प्यास से मरने के भय के अतिरिक्त एक और भय था और इस भय की स्रोत औरतें थीं। वो भयभीत रहते थे कि उनकी औरत किसी और मर्द के हाथ पड़ गई, तो उन्हें बड़ा अपमान सहना पड़ेगा। जहाँ तक उस समय व स्थान के मर्द का संबंध है, औरत उस मर्द की विफलता व अपमान का निरंतर स्मरण कराने का स्रोत होती थी, क्योंकि जब उसके कबीले पर हमला हुआ तो वह आदमी उस औरत की रक्षा करने में विफल रहा था। यदि वह औरत किसी और मर्द की बांहों में चली गई तो उस पर कलंक लग जाएगा। औरत के प्रति इस व्यवहार का मूल उस मर्द की उस भावना में थी कि वह उसकी रक्षा कर पाने में असमर्थ है। उसकी घृणा अपने कलंक के उत्तरदायी उस वास्तविक अपराधी की ओर नहीं होती थी, क्योंकि वह स्वयं एक दिन हमलावर होने की स्थिति में आएगा, किसी अन्य व्यक्ति को पराजित करेगा और उसकी औरत को उठा लेगा। अपितु उसकी घृणा उस

औरत की ओर होती थी, जो हो सकता है कि उसकी अम्मी रही हो, बहन रही हो अथवा बीवी रही हो। तभी से मुस्लिम आदमी सम्मान मापने का एक ही मापदंड अपनाते हैं: कि वह औरत के घुटनों एवं नाभि के बीच के क्षेत्र की रक्षा कितनी अच्छी प्रकार से कर सकता है। वह इस बोझ के लिए भी औरत को ही उत्तरदायी ठहराता है; लज्जावश वह अपमानित अनुभव करता है और औरत के साथ उसके व्यवहार पर विकृत प्रतिशोध की छाया पड़ने लगती है।

इस्लाम का जन्म ऐसे वातावरण में हुआ जिसने महिलाओं को बंदी बनाने और उनके साथ बलात्कार करने को स्वीकृति प्रदान की, तथा अपराध करने वाले व्यक्ति को उत्तरदायी न ठहराकर महिला को ही इसका दोषी बता दिया। जो बुराइयां चल रही थीं, इस्लाम ने उन्हें निषिद्ध नहीं किया। इसके विपरीत इस्लाम ने उन बुराइयों को विधिक मान्यता दे दी और उन्हें मजहबी नियम का रूप दे दिया। मुसलमान पुरुष अपने मजहबी आधार पर यह मानता है कि महिलाएं ही कलंक का स्रोत हैं, इसलिए उसके मन में महिलाओं से इसका प्रतिशोध लेने की भावना पनपने लगी, और उसके अल्लाह रूपी राक्षस ने इस आवश्यकता को संतुष्ट करने के लिए इस पाप को पुण्य के रूप में विधिक स्वीकृति दे दी। रसूल के पास महिलाओं से संबंधित आयतें बड़ी संख्या में आईं। महिलाओं के सिरों को फोड़कर उनके मानव रूप को विकृत करने के लिए आयत के रूप में ये बड़े-बड़े पत्थर सीधे अल्लाह के पास से आए। कोई मुहम्मद के हमलों और लूट का माल बांटने का वर्णन करने वाले अरबी साहित्य को पढ़े तो उस जाल की प्रकृति को समझ पाएगा जिसमें मुस्लिम आदमी और उनकी बीवियां फंसी हुई हैं। मुस्लिम आदमी मुहम्मद के जीवन से प्रेरणा लेते हैं और उसी के समान बनने का प्रयास करते हैं, जबकि मुस्लिम औरतों से अपेक्षा की जाती है कि वे उसकी बीवियों के के उदाहरणों को अपने जीवन में उतारें।

चौदह सौ वर्षों से मुसलमान पुरुष अपने को रसूल के प्रभाव से मुक्त कर पाने असमर्थ रहे हैं और मुस्लिम महिलाएं अपने को रलूल की बीवियों से उत्तम बनने में सफल नहीं हो पाई हैं। मुहम्मद एक आयत गढ़कर बोला कि यह सीधे अल्लाह के पास से उसकी गोद में आकर गिरा है, और इसी आयत के आधार पर उसने अपने और अपने आदमियों के लिए हमले में पकड़ी गई

महिलाओं के साथ बलात्कार को वैध बना लिया। कुरआन की यह आयत कहती है: "जो औरत तुम्हें अच्छी लगे, उससे शादी करो: दो के साथ या चार के साथ करो। किंतु यदि तुम्हें भय हो कि उन सबके साथ समानता नहीं निभा पाओगे तो एक ही शादी करो" (4:3)। औरत जो तुम्हें अच्छी लगे? मुस्लिम आदमी के लिए निकाह (शादी) अपनी इच्छा की पूर्ति का साधन मात्र है, उसे इससे कोई सरोकार नहीं है कि इस निकाह को लेकर उस औरत की भावनाएं क्या हैं। मुस्लिम पुरुष अपनी इच्छाएं नहीं दबाता है, वह जिस भी महिला को पा सकता उसके साथ इस इच्छा की पूर्ति कर लेता है, मानो कि वह महिला हांड़-मांस से बनी जीती-जागती प्राणी न होकर कोई चल संपत्ति हो।

शादी के लिए महिलाओं की संख्या इस बात पर निर्भर करती है कि पुरुष के पास कितना धन है। कुरआन महिलाओं के दो भेद बताता है: स्वतंत्र महिला और दासी अर्थात गुलाम। दास बनाई गई महिला का कोई अधिकार नहीं होता है। इस्लाम ने यह संख्या चार तक सीमित तो कर दी कि यदि सभी बीवियों के साथ समान व्यवहार कर सकें तो व्यक्ति एक समय में व्यक्ति चार औरतों से शादी कर सकता है, और यदि ऐसा नहीं कर सकता है तो एक ही शादी करे। किंतु दासी बनाई गई महिला के संबंध में ऐसा नहीं है और मुसलमान पुरुष कितनी भी क्रय की गई या बंदी बनाई गई महिलाओं को दासी बनाकर उनके साथ जो चाहे और जैसे चाहे कर सकता है। तब इस्लाम की इस बात का क्या अर्थ रह जाता है कि सभी बीवियों के साथ समान व्यवहार किया जाए? इस संबंध में समानता का इस्लामी अर्थ यह है आदमी को अपना वीर्य और धन समान रूप से अपनी चारों बीवियों में बांटना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता है, तो उसे एक ही बीवी रखनी चाहिए। अल्लाह रूपी यह राक्षस मुसलमान आदमियों और उनकी उन बीवियों को लेकर कितना समतावादी है न!

इस जटिल "न्यायसंगत" सांसारिक दृष्टि से मुस्लिम पुरुषों और मुस्लिम महिलाओं को जो मिला है, वह यह है कि इससे पुरुषों को अपनी वासना पूर्ति की खुली छूट मिल जाती है, और यह महिलाओं को पुरुषों की इच्छाओं की पूरा करने के लिए क्रय किए जाने वाले वस्तु में परिवर्तित कर देता है? तब भला इस्लाम के शब्दकोश में "परिवार" और "संतान" की अवधारणा

कहाँ से आएगी? इस्लामी शब्दकोश में इन दोनों शब्दों की कोई परिभाषा है क्या कहीं? उस पुरुष के उत्तरदायित्वों का क्या, जिसकी काम-वासना के परिणामस्वरूप संतानों की पूरी पंक्ति बन जाती है। कुख्यात आतंकवादी ओसामा बिन लादेन के परिवार के साथ ऐसा ही था। उसके अब्बा ने इतनी औरतें रखीं थीं कि उसे स्वयं नहीं पता था कि उसके कितने भाई-बहन हैं।

भले ही कोई मुस्लिम व्यक्ति अपनी चारों बीवियों या अपने पास रखी गई किसी अन्य औरत को संपत्ति और वीर्य का समान भाग देने में समर्थ हो, परंतु वह उन संतानों में अपना समय और ऊर्जा समान रूप से कैसे बांट पाएगा जो उसकी अनियंत्रित काम-वासना के परिणामस्वरूप इस संसार में आ जाते हैं? हम मुस्लिम पुरुषों और स्त्रियों ने सातवें आकाश से गिरे उस पत्थर के लिए कैसा मूल्य चुकाया है? इसने हमें छिन्न-भिन्न कर दिया और "विवाह" एवं "परिवार" के सच्ची अवधारणा को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए पूरी की पूरी जाति का अंग-भंग कर दिया।

मुस्लिम पुरुष अपने को केवल धन व वीर्य को देने की सामर्थ्य के संबंध में ही देखता है। वहीं मुस्लिम स्त्री अपने को उसके वीर्य को अपने में रखने वाली मानती है, मानो कि वह उसके शौहर द्वारा धन देकर क्रय की गई ऐसी कोई फर्नीचर है जिसमें वस्तु रखे जाएँ। पुरुष अकेले ही यह निर्णय करता है कि उस फर्नीचर को कब क्रय करे और एक ऐसा संबंध बनाते हुए अपने वीर्य को उस फर्नीचर अर्थात स्त्री में रखे जिसमें मानव भावनाओं का कोई स्थान नहीं होता है।

सच्ची मानवीय भावनाओं का अवमूल्यन करने वाले संबंध के कारण मुस्लिम परिवार अपनी संतानों के साथ स्नेह के अभाव के संकट का अनुभव कर रहा है और इसके पहले पीड़ित शिशु ही होते हैं। जब अब्बा ने मेरी अम्मी को लुभाया तो वो पहले से ही विवाहित थे और चार बेटियों व एक बेटे सहित उनकी पांच संतानें थीं। दूसरी शादी करने के लिए उन्होंने कारण बताया कि उनकी बीवी को असाध्य तपेदिक रोग था। नाना मेरी अम्मी की भावनाओं को सोचे बिना इस शादी के लिए तैयार हो गए। उस समय मेरी अम्मी मात्र सोलह वर्ष की थीं, जबकि मेरे अब्बा की अवस्था चालीस की थी। नाना का तर्क था कि मेरे अब्बा प्रतिष्ठित परिवार के धनी व्यक्ति हैं और इसलिए उन्होंने मेरी

अम्मी व नानी के विचारों को महत्व नहीं दिया। उनका मानना था कि जिस प्रकार कोई अपने फर्नीचर से नहीं पूछता है कि उसका उपयोग कहाँ और कैसे करे, उसी प्रकार स्त्री से भी नहीं पूछा जाना चाहिए कि उसका निर्णय क्या है।

बताया जाता है कि मेरे अब्बा की पहली बीवी नगर से दूर एक चिकित्सालय में तपेदिक रोगियों के एकांत वार्ड में उपेक्षा व विस्मृति में मर गईं। मेरी अम्मी उनके साथ रहने चली गईं। उनकी बड़ी बेटी मेरी अम्मी से आयु में एक वर्ष बड़ी थी। इस भंवर से मेरी अम्मी का मानसिक संतुलन अस्थिर हो गया, और अब उन्हें यह भी ध्यान न रहता कि वो मेरे अब्बा की बीवी और उनकी पहले की पांच संतानों की अम्मी हैं, न कि उनकी संतानों में से एक हैं। वो संतान भी उनको ऐसे ही देखते कि मानो वो उनके भाई-बहनों में से एक हैं।

आठ वर्ष की अवधि में उन्होंने आठ संतान जन्म दिए। यद्यपि मेरे अब्बा शांतचित्त और सरल स्वभाव के थे तथा अम्मी के साथ अच्छा व्यवहार करते थे, परंतु मैंने अम्मी को कभी प्रसन्न मुद्रा में नहीं देखा। वो घर के कामों ढंग से संभाल नहीं पाती थीं और इसी बात को लेकर चारों सौतेली बेटियों से उनकी दिन-रात तू-तू मैं-मैं होती रहती थी।

अशांति व कोलाहल के ऐसे वातावरण में मेरा जन्म हुआ और बाल्यकाल बीता। अम्मी और मेरी सौतेली बहनों के मध्य जिस प्रकार का कटु संबंध था, उससे मैं प्राय: दो पाटों में पिसती थी और यह मुझे भीतर से दुखी कर देता था। मेरी अम्मी के दुर्व्यवहार से बचने के लिए मेरी सौतेली बहनें विवाह करके चली गईं। मेरी सबसे छोटी सौतेली बहन के विवाह के पश्चात् ऐसा लगा कि अब जीवन में शांति आ गई, किंतु अभी एक वर्ष ही बीता था कि एक दिन सहसा कार दुर्घटना में अब्बा संसार छोड़कर चले गए और अम्मी में जो किंचित मात्रा में समझ शेष थी, वह भी चली गई।

मैं अपने अब्बा की पहली बीवी से कभी नहीं मिली थी। मेरी अम्मी ने भी उन्हें नहीं देखा था, पर मैं समझ नहीं पाती हूँ कि मेरा हृदय उन्हें बार-बार क्यों स्मरण करता है। मुझे तो यह भी नहीं ज्ञात नहीं है कि उन्हें गाड़ा कहाँ गया है, और न ही मुझे ध्यान है कि वो कभी अपनी संतानों से मिलने आई हों। पर हां, मेरी चाची अम्मी को प्राय: उनके विषय में कुछ न कुछ बताती

रहती थीं और मैं सुनती थी। वो बतातीं कि कैसे उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दो वर्ष अपने घर से बहुत दूर राजधानी के एक चिकित्सालय में अकेले घुटते हुए बिताया था।

जब मैं बहुत छोटी थी तो रसूल मुहम्मद और उसकी एक बीवी की शादी की कहानी सुनी थी कि कैसे शादी के पश्चात् वह उस बीवी के साथ सोने जा रहा था कि तभी उसे उसकी नाभि के नीचे के भाग में एक श्वेत चिह्न (दाग) दिख गया और उसने उसे छोड़ दिया। रसूल की इस शादी की यह कहानी सुनकर मेरा बाल-मन सोचने लगा कि ऐसे ही तो मेरे अब्बा ने भी रोग से मर रही अपनी बीवी को छोड़ दिया था और वो अकेले निर्जन रहते हुए दो वर्ष में मर गईं, अपनी संतानों का मुख तक दोबारा नहीं देख पाईं। मेरे मन अब्बा के प्रति घृणा पनपने लगी, यद्यपि रसूल को लेकर मन में कोई मैल नहीं आया, क्योंकि आपको तो पता ही है कि उस राक्षस अर्थात अल्लाह ने मुझे बंदी बनाकर रखा था।

मुहम्मद के मरने के सदियों पश्चात् भी वह पत्थर महिलाओं का सिर कुचलता आ रहा है। आज सऊदी शेख हैं जो प्रतिदिन सैकड़ों फतवे देते हैं। बड़ी संख्या में कुरआन की आयतें और हदीसें औरतों से जुड़ी हैं, परंतु कोई शेख इन आयतों और हदीसों द्वारा उत्पन्न संकट की उग्रता को कम करने का प्रयास नहीं करता है। एक आयत कहती है: "तुम्हारी औरतें तुम्हारी खेती हैं: उसमें जाओ और जैसे चाहो जोतो" (2:223)। कुरआन पर अल-जलालैन की टीका के अनुसार, इस आयत का भावार्थ है कि औरत वह स्थान है जहाँ तुम अपनी संतान बोते हो और जैसा चाहो वैसा करो। इसी टीका के अनुसार इस आयत का तात्पर्य है कि "पौधरोपण प्रक्रिया" के समय आदमी जिस प्रकार चाहे औरत में अपना बीज डाल सकता है। इस प्रकार औरत एक मैली (गंदी) जोत की भाँति है, जबकि आदमी वह कृषक है जो उस भूमि को जोतता है और उसमें बीज बोता है। जब कृषक हल चला रहा हो तो उस मैली जोत को विरोध करने का अधिकार नहीं है और न ही उसके पास बीज रोपण का समय या स्थान निश्चित करने का अधिकार है। यह पूरी प्रक्रिया आदमी के नियंत्रण के अधीन और उसकी इच्छा के अनुसार चलती है। ऐसे में क्या वह मैली जोत (भूमि) आदमी का विरोध कर सकती है? क्या वह मैली जोत इसका निर्णय कर

सकती है कि उसे कैसे जोता जाए और उसमें कैसे पौधरोपण किया जाए? चौदह सौ वर्षों से मुस्लिम औरतों की स्थिति इस्लाम में ऐसी मलिन प्राणी की है जिसे मुस्लिम आदमी कुचलते आ रहे हैं और स्वयं को उसे जोतने वाला किसान समझते आ रहे हैं।

इस्लाम में महिला अपनी भूमिका की सीमाओं से बाहर जा नहीं सकती है और पुरुष अपने अधिकारों पर अतिक्रमण करने नहीं देता है। इस अस्वाभाविक संबंधों ने न जाने ऐसी कितनी पीढ़ियों को जन्म दिया है जो अपने रचयिता पुरुष व स्त्री के मध्य प्रेम से नहीं उपजे हैं। किसी स्त्री और पुरुष के मध्य स्वस्थ व प्रेमपूर्ण संबंध को किसी भी रूप में किसान और उसके खेत के मध्य संबंध की उपमा नहीं दी जा सकती है। जो संबंध एक-दूसरे की भावनाओं के प्रति समान आदर भाव पर आधारित न हों, वो मानसिक, शारीरिक, आत्मिक व भावनात्मक रूप से स्वस्थ संतानों को जन्म नहीं दे सकते हैं। महिला भूमि का कोई टुकड़ा नहीं होती है कि कोई पुरुष उसे हल चलाकर जोते। महिला हांड़-मांस से निर्मित जीती-जागती ऐसी मनुष्य होती है जिसमें मन, आत्मा और भावनाएं होती हैं। किसी पुरुष को यह अधिकार नहीं मिलना चाहिए कि वह स्वयं को किसान और स्त्री को निर्जीव भूमि मानकर जिस प्रकार चाहे उसका उपयोग करे।

कैसा ईश्वर है यह अल्लाह, जो अपनी सीमित कल्पनाशीलता से आदेश देता है कि पुरुष और स्त्री के मध्य वही संबंध होना चाहिए जैसा कि एक किसान और उसके खेत के मध्य होता है? मुझे तो यह अल्लाह कुछ और नहीं, अपितु एक ऐसा विफल कवि लगता है जिसकी आयतें न होतीं तो हम अधिक सुखी होते। यह अल्लाह कुछ और नहीं, अपितु गाँव का वही राक्षस है जो जब अधिकारों और कर्तव्यों की बात आती है तो आदमी और औरत के साथ एक समान व्यवहार नहीं करता है। क्यों? अरब मरुस्थल के पुरुषों ने अपने भय से पार पाने के लिए इस राक्षस को उत्पन्न किया था। इसीलिए इस राक्षस ने अपनी विफलता व कलंक का दोष महिलाओं पर मढ़ते हुए उन्हें दंडित करने के लिए समानता को अस्वीकार कर दिया।

जीवन में पहली बार जब मैंने पढ़ना प्रारंभ किया तो पहली पुस्तक कुरआन थी जिसे मैंने खोला था। मुझे नहीं ध्यान आता है कि किसी ने मुझे इन

आयतों को उतने दयापूर्ण व सहिष्णु ढंग से कभी समझाया हो, जितने अच्छे ढंग से आज मैं इन आयतों को समझती हूँ। आज अधिकांश मुसलमान मुझ पर निर्दयता से प्रहार करते हैं। वो मुझ पर आरोप मढ़ते हैं कि मैं कुरआन से आयतें अपनी सुविधानुसार लेती हूँ, मानो कि कुरआन आयत रूपी चेरी से भरा हुआ कोई डब्बा है और उसमें से मैं अपनी इच्छानुसार सड़ी हुई छोड़कर सबसे अच्छी चेरी उठा लूं। वैसे, मुझे यह उपमा स्वाभाविक रूप से प्रिय लगती है, और इस आरोप में मुझे कुछ भी ऐसा नहीं दिखता है जो मेरी विश्वसनीयता को प्रभावित करे। यदि कोई डब्बा ईश्वर के पास से आया है, तो उसमें सड़ी हुई चेरी तो होनी ही नहीं चाहिए। यदि वास्तव में कोई अल्लाह है, तो सबसे मूल बात यह है कि वह अल्लाह सम्पूर्ण अर्थात त्रुटिहीन होना चाहिए। जहाँ तक मैं सोचती हूँ, सम्पूर्णता में किसी प्रकार की कमी अल्लाह की प्रामाणिकता को घटाती है। ऐसा अल्लाह, जो महिलाओं को यथासंभव कुरूपतम ढंग से परतंत्र बनाता है, निश्चित ही पूर्णता के लिए आवश्यक गुण को धारण नहीं कर सकता है। यदि मुझे सीधे अल्लाह के पास से आई हुई पुस्तक में विकृतियां, त्रुटियां व हानिकारक तत्व मिल रहे हैं, तो मुझे पूरा अधिकार है कि ऐसे अल्लाह की प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाऊं।

मुस्लिम देशों में महिलाओं की बुरी स्थिति ऐसी मानव आपदा है जिसकी उपेक्षा विश्व सदियों से करता आ रहा है और अब इसके लिए भारी मूल्य चुका रहा है। सताई हुई और पराधीन महिला भावनात्मक व मानसिक रूप से संतुलित संतान नहीं जन सकती है। सदियों पहले से लेकर आज तक अदृश्य मुस्लिम महिलाएं वह मुर्गी बनी हुई हैं, जो आतंकवाद के अंडे को सेती है और उस अंडे से आतंकवादी निकालने के लिए आवश्यक उष्मा प्रदान करती है। जब एक औरत टीवी कैमरे के सामने खड़ी होकर विश्व को बताती है, "मेरे तीन बेटे शहीद हो गए और मैं चाहती हूँ कि चौथा भी अल्लाह के मार्ग में शहीद हो जाए", तो इसका अर्थ यह है कि उस महिला में ममता नहीं है। जब वह यह कहती है, "मेरे बेटे अब जन्नत में कुंवारी हूरों के साथ शादी का आनंद ले रहे हैं", तो हमें यह समझ लेना चाहिए कि उसमें विवेक और आत्मा भी नहीं रह गई है! कौन है वह जिसने इस महिला की ममता, बुद्धि-विवेक और आत्मा को हर लिया है? मुस्लिम पुरुष और महिला दोनों ही उन दुष्टों के बिछाए

जाल में फंस जाते हैं, जो उन्हें जीवन के आरंभिक वर्षों में सिखाते-पढ़ाते हैं। लोग वैसे ही बन जाते हैं, जैसा उन्हें बताया जाता है। व्यक्ति पहचान धारण करता है और उस पहचान की व्याख्या उन्हीं मान्यताओं के आधार पर करने लगता है, जो उस वातावरण में व्याप्त होते हैं जहाँ उसका जन्म होता है। अवचेतन में वह इस पहचान और इनके लक्षणों की वैधता को स्थापित करने का प्रयास करने लगता है।

जीवन के आगे के वर्षों में स्वयं के विषय में किसी व्यक्ति की मान्यताओं को परिवर्तित कर पाना यदि असंभव न भी हो, तो भी यह काम कठिन तो होता ही है, विशेष रूप से तब जब वह व्यक्ति उसी वातावरण में रह रहा हो जहाँ उसकी मान्यताओं को पोषण मिल रहा हो। मैंने एक मनोवैज्ञानिक द्वारा किए गए रोचक प्रयोग के विषय में पढ़ा था। वह मनोवैज्ञानिक एक नवजात मादा वनमानुष (चिंपांजी) को अपने घर ले गया और अपनी पत्नी व शिशुओं के साथ रखकर उसे भी परिवार की भाँति पालने रखने लगा। वह वनमानुष वैसा ही व्यवहार करने लगी, जैसा कि परिवार के अन्य सदस्य करते थे। परिवार के सदस्य भी उसके साथ ऐसा ही व्यवहार करते थे कि मानो वह उन्हीं में से एक हो। जब वह वनमानुष बड़ी हुई, तो उस मनोवैज्ञानिक ने उसे चित्रों का संग्रह दिया और कहा कि वह उसे दो समूहों में पृथक करे। एक समूह में अमानव यथा पुस्तक, टोपी, पुष्प अथवा चिड़िया आदि रखना था और दूसरे समूह में मनुष्यों के चित्रों को रखना था। मनोवैज्ञानिक ने उसे जो चित्र दिए थे, उसमें उस वनमानुष का भी एक चित्र था। वनमानुष चित्रों को पृथक करने लगी और उसने अपने चित्र को उस समूह में रखा जिसमें मनुष्य थे, क्योंकि वह स्वयं को मनुष्य ही मानती थी। पर ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि जन्म के समय से ही उसके साथ मनुष्यों-सा व्यवहार हुआ था। मुस्लिम देशों की महिलाओं की स्थिति भी उसी वनमानुष के समान है, वो भी ऐसे ही भ्रम में फंस जाती हैं और समाज उनके साथ जैसा व्यवहार करता है, उससे भिन्न अपने अस्तित्व की कल्पना तक नहीं कर पाती हैं; यही धारणा बनाकर जीने लगती हैं कि वो बुद्धि में पुरुषों से कम हैं और पुरुषों की तुलना में निकृष्ट हैं। वो यह मान बैठती हैं कि वो निकृष्ट प्राणी हैं और यहाँ तक कि स्वयं को निकृष्ट कहे जाने का बचाव करने लगती हैं।

इस्लामी शिक्षा ने महिलाओं को इतना बौना बना दिया है कि उनकी बुद्धि व आत्मा छिन गई है। मुस्लिम पुरुषों और महिलाओं दोनों पर इस शिक्षा का एक समान और गहरा दुष्प्रभाव पड़ा है। ऐसा नहीं है कि मुस्लिम पुरुष ही मुस्लिम महिलाओं की इस बुरी स्थिति के उत्तरदायी नहीं हों; मुस्लिम महिलाएं स्वयं इसी स्थिति में बने रहने का समर्थन करती हैं। मुस्लिम महिलाओं ने स्वयं को पुरुषों के पालतू पशु के रूप में देखा है। उन्होंने अपनी इस नियति को स्वीकार कर लिया है और इसी में पड़ी रहना चाहती हैं।

कुरआन की आयतों और रसूल की सुन्नत के साथ-साथ फतवा, व्याख्याएं और इनसे संबंधित टीकाएं अपने आप में पर्याप्त थीं कि ये महिला की अपनी छवि विकृत कर दें और उनके मन में यह भर दें कि यह विकृत छवि ही पवित्र है। इस्लाम महिलाओं को विकारयुक्त प्राणी के रूप में देखता है, और महिलाएं जो इस्लामी शिक्षा ग्रहण करती हैं, वह उनके मन में यह भर देता है कि उनमें ही दोष है और वो वास्तव में इस दोष को अल्लाह की इच्छा के रूप में देखकर इसे उसका आदेश मान लेती हैं। पर ऐसा नहीं हे कि इस्लामी शिक्षा ही केवल एक समस्या है। समस्या यह भी है कि महिला को विकार के रूप में देखने का यह अपराध मुस्लिम महिलाओं द्वारा किया जा रहा है। जब तक इसमें फंसी महिलाएं स्वयं नहीं समझेंगी और परिवर्तन के लिए आगे नहीं बढ़ेंगी, स्थिति ठीक नहीं होगी।

कोई कीड़ा धरती पर रेंगते हुए जीवन बिताता है और बहुधा किसी न किसी के पांव के नीचे कुचला जाता है। क्योंकि वह इससे अनजान है कि कहाँ रह रहा है, इसलिए वह विद्रोह नहीं करता है। मुस्लिम देशों में महिलाएं ऐसे कीड़े-मकोड़े की भाँति जीती हैं, जो पुरुष के पांव के नीचे कुचली जाती हैं। वो यह मानकर जीने लगती हैं कि यही उनकी नियति है और इसीलिए वो इसे अस्वीकार करने की कल्पना तक नहीं कर पाती हैं। जिन रसूली सुन्नत को मैंने उद्धृत किया है, उसने महिलाओं को बौद्धिक व नैतिक रूप से निकृष्ट बताते हुए कलंकित किया है। एक हदीस में मुहम्मद ने अपने अनुयायियों से कहा है: "अरे औरतों, तुम उन लोगों में हो जो जहन्नुम में सड़ेंगे, क्योंकि जब तुम कुछ लेती हो तो कृतज्ञता नहीं प्रकट

करती, जब कष्ट में होती हो तो धीरज नहीं रखती और जब मैं तुम्हें अपने से दूर रखता हूँ तो तुम शिकायत करती हो।" एक क्षण के लिए कल्पना कीजिए कि क्या होता होगा जब बार-बार आपको ये वाक्य सुनना पड़े, और जब तक यह आपकी आत्मा में न बैठ जाए, मन-मस्तिष्क में ठूंसा जाता रहे। मुस्लिम मजहब के अनुसार, महिलाएं कृतज्ञता व धीरज आदि गुण धारण करने में असमर्थ होती हैं और उन्हें नाक-भौं सिकोड़ना एवं दुखड़ा रोना प्रिय होता है। मतांध बना दी गई ये मुस्लिम स्त्रियां किस प्रकार की महिला होती हैं कि इस निकृष्ट स्तर के आरोपों को स्वीकार करने को तैयार हो जाती हैं?

इस्लाम में महिलाएं न केवल अपनी इस सड़ी हुई मान्यताओं की बंधक बन चुकी हैं, वरन् वे पुरुषों की कठपुतली बनकर उनकी भी बंधक बन गई हैं। मुहम्मद ने एक और हदीस में कहा है, "किसी भी स्थिति में औरत को अपने शौहर से अनुमति लिए बिना किसी भूखे को भोजन नहीं कराना चाहिए, हां यदि भोजन सड़ रहा हो तो बात दूसरी है। यदि वह उसकी सहमति से भोजन कराएगी तो वही पुण्य प्रतिफल पाएगी जो शौहर पाएगा, किंतु यदि उसने शौहर की अनुमति के बिना भोजन करा दिया तो शौहर को तो इसका पुण्य मिलेगा, परंतु उसे उस पाप का दंड मिलेगा।" यह मतांध बना दी गई स्त्री कैसी महिला है, जिसे अपने ही घर में इतना भी अधिकार नहीं है कि अपने मन से किसी भूखे को एक रोटी दे सके? ये कैसा मजहब है जिसका रसूल कहता है कि किसी अभावग्रस्त को रोटी देने के पहले औरत शौहर से अनुमति ले लेगी, तभी अल्लाह उसे अच्छा प्रतिफल देगा? इन्हीं इस्लामी शिक्षाओं ने न केवल महिलाओं को बंधुआ बनाने को मजहबी मान्यता देने में सहायता की है, अपितु पुरुष-अहंकार को भी पवित्र दिखाकर स्थापित किया है।

मुस्लिम पुरुष अहंकारी होता है। उसके राक्षस ने उसे अपना प्रतिनिधि बना लिया है और उसे असीमित अधिकार दे दिए हैं। ऐसा अधिकार जिसकी सीमा नहीं है और जो महिलाओं की बुद्धिमत्ता एवं

भावनाओं का कोई सम्मान नहीं करता है। यहाँ तक कि सहवास करने आदि नितांत निजी व व्यक्तिगत विषयों में भी इस्लाम महिलाओं को कोई अधिकार नहीं देता है। मुहम्मद ने एक और हदीस में कहा है, "यदि कोई व्यक्ति बीवी को संभोग के लिए बिछौने पर बुलाता है और वह संभोग करने से मना कर देती है, तो फरिश्ते उसे रातभर कोसेंगे।" यह कैसा अल्लाह है जो सब काम छोड़कर अपने फरिश्तों को इस काम पर लगाता है कि शौहर के साथ सोने से मना करने वाली औरतों को कोसें? क्या यह अल्लाह राक्षस के समान नहीं है? जब कभी शौहर और बीवी में इस बात पर मत भिन्नता हो कि शौहर की बात मानें या अल्लाह की आज्ञा मानें, तो औरत का कर्तव्य है कि वह अपने शौहर की आज्ञा का पालन करे। इसका तात्पर्य यह है कि औरत को अपने शौहर की सहमति के बिना रोजा रखने या नमाज पढ़ने की अनुमति नहीं होती है, जैसा कि इस्लाम के रसूल ने एक हदीस में कहा है: "औरत शौहर की सहमति के बिना न तो रोजा रखे और न ही नमाज पढ़े।"

मुस्लिम महिलाएं मर्दों की गुलाम बनकर जीती हैं और वे तब तक इसी दलदल में फंसी रहेंगी, जब तक कि अपने को इस्लाम की मिथ्या धारणाओं से मुक्त न कर लें। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि यदि कोई औरत अपने रसूल की इस हदीस पर चले तो उसकी परतंत्रता किस स्तर की होगी: रसूल मुहम्मद ने इस हदीस में कहा है, "मर्द को यह अधिकार है कि वह अपनी बीवी से अपेक्षा करे कि यदि उसकी नाक से रक्त निकल रहा हो, अथवा मैल या मवाद बह रहा हो, तो बीवी उसे अपने जिह्वा से चाटे।" तनिक सोचिए, उस आदमी का अहंकार कैसा होगा जो यह मानता है कि उसके अल्लाह ने उसे इस स्तर तक अधिकारसम्पन्न बनाया है कि उसकी बीवी को उसकी नाक से बहकर निकलने वाली मैल चाटनी चाहिए!

वर्ष 2005 में सीरिया की मेरी अंतिम यात्रा के समय मेरी बाल्यकाल की एक सहेली ने मुझे अपने घर भोजन पर आमंत्रित किया। वह सहेली राजधानी दमाकस के उपनगरीय क्षेत्र में रहती थी। भोजन में मेरे

साथ वह, उसके परिवार के सदस्य और हलीमा नाम की उसकी एक सहेली बैठी हुई थी। हलीमा की आयु यही कोई चालीस वर्ष रही होगी। दुख से भरे मुख पर उनके जीवन की कटु कथा स्पष्ट झलक रही थी। उन्होंने कहा, "जब मैंने सुना कि रीमा ने तुम्हें अपने घर बुलाया है, तो उसे फोन करके कहा कि किसी भी स्थिति में मुझे तुमसे मिलवाए। मैंने तुम्हारे लेख पढ़े हैं और मैं बहुत अच्छे से जानती हूँ कि तुम कौन और क्या हो। मुझे तुमसे कुछ चाहिए नहीं। मैं इतना ही चाहती हूँ कि तुम मेरी कहानी सुनो, क्योंकि यहाँ और किसी को लगता ही नहीं है कि मेरी कहानी बताने योग्य है।"

उन्होंने मुझे अपने जीवन की कहानी सुनाई, वह कहानी जो दुर्भाग्य से उस स्थान के सामाजिक बुनावट का अंग बन गई है, वह कहानी जो उन संस्कृतियों में मिलती है जहाँ आदमी औरत को एक निर्जीव वस्तु सा समझकर उपभोग करता है, वह कहानी जिसमें कुरआन का एक भिन्न प्रकार का तड़का है। यह वह कहानी है जिसे सुनते हुए पीढ़ियों से लोग बड़े हुए हैं, पर दुर्भाग्य से अब उन्हीं लोगों को इस कहानी में कुछ भी अनुचित नहीं दिखता है।

हलीमा की तीन संतानें थीं। उन्होंने बाल्यकाल व किशोरावस्था अपने अब्बा के घर पर बिताए। उनके अब्बा ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने उसे महिला का सम्मान देना तो दूर, कभी मनुष्य तक नहीं समझा। किशोरावस्था में ही उमर नाम की एक व्यक्ति से उनकी शादी हो गई और उन्हें लगा कि अब उनके बुरे दिन चले जाएँगे, पर यहाँ तो उनकी स्थिति और भयावह हो गई। शादी के पश्चात् उमर नित्य रात में मदिरा पीकर धुत होकर आता और उन्हें पीटता। जैसे वह मदिरापान का अभ्यस्त था, वैसे ही वो प्रतिदिन पिटाई की अभ्यस्त हो गईं।

परंतु हलीमा कोई साधारण महिला नहीं थीं। वो एक शिक्षिका थीं, तो उनसे यह अपेक्षा करना उचित ही था कि वो संतुलित और सजग होंगी। परंतु ऐसा नहीं था। एक दिन वह आया और कहने लगा कि उस पर बहुतों की उधारी हो गई है और लोग उससे अपना पैसा वापस मांग रहे हैं।

वह उन पर अपने वेतन के आधार पर बैंक से ऋण लेने का दबाव बनाने लगा। हलीमा ने यह जानने का भी प्रयास नहीं किया कि उमर ने जो कहा, वह सच भी है या नहीं, और यह सोचकर उससे उन उधारदाताओं का नाम पूछने लगी कि वो अपने पैसे से उधार चुका देंगी जिससे कि उसके शौहर को बैंक से ऋण लेने की आवश्यकता न पड़े। परंतु उसने उनके नाम नहीं बताए।

उमर के विचार से औरत को बिना चूं-चपड़ किए शौहर के आदेश को मानना चाहिए और मर्दों के काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वह हलीमा को अपनी चमड़े की पेटी से पीटते हुए कहता जाता था, "रे, अभागी, क्या तू अल्लाह के रसूल (उन पर शांति हो) के शब्द भूल गई: 'यदि मैंने किसी को [अल्लाह के अतिरिक्त] किसी के सामने झुकने का आदेश दिया होता, तो मैंने औरत को आदेश दिया होता कि वह अपने शौहर के आगे झुके, क्योंकि औरत पर मर्द का पूरा अधिकार है।' मैंने तुझे अपने आगे घुटनों के बल झुकने का आदेश नहीं दिया है, पर मैं तुझे आदेश दे रहा हूँ कि अपना वेतन दिखाकर बैंक से ऋण ले!" हलीमा ने ऋण लिया और उसमें मिला सारा रुपया उमर ने रख लिया। इसके पश्चात् उमर ने हलीमा से यह कहते हुए घर छोड़ दिया कि उसने अपने अल्लाह की कृपा प्राप्त करते हुए अपने रसूल और अपने शौहर की आज्ञा का पालन किया है।

हलीमा का धन लेने के पश्चात् वह बहुधा और रहस्यमयी ढंग से घर से लुप्त रहने लगा, तो हलीमा को संदेह हुआ। एक दिन उनके पड़ोसी सलीम ने उसका किवाड़ खटखटाया और बोले: "हलीमा, कैसी हैं आप? सुनिए, मुझे आपको कुछ बताना है। अबकी जब उमर घर से बाहर निकले तो देखें कि उसकी जेब में पासपोर्ट तो नहीं रखा है।" तत्पश्चात्, अभी हलीमा उनसे कुछ पूछ पाती कि वह वहाँ से एक झटके में निकल गए।

उस दिन हलीमा को पीटने के पश्चात् उमर घर से चला गया और लौटकर नहीं आया। उमर दमाकस नाइटक्लब में एक नाचने वाली से मिला था और उससे संबंध बना लिया था। वह उस नाचने वाली के साथ अपने

संबंध को "बंधुत्व" बताता था। जब उस क्लब के साथ उस नाचने वाली की संविदा समाप्त हो गई, तो वह अपने देश वापस लौट गई, परंतु उमर यह बहाना करके उसके संपर्क में बना रहा कि "उस पर एक भाई की भाँति दृष्टि रख रहा है और यह सुनिश्चित कर रहा है कि वह ठीक से रहे।" जैसे ही बैंक ऋण से मिला धन उमर के हाथ आया, उसने हलीमा और संतानों को ऋण में छोड़कर मोरक्को का टिकट कटा लिया। हलीमा अपने वेतन से ऋण की किश्त चुकाती रही और उसके पश्चात् जो कुछ उनके पास बचता था, उससे उनकी संतानों के पालन-पोषण करने के लिए पर्याप्त नहीं था।

पर बात यहीं नहीं रुकी। जब हलीमा को पता चला कि टेलीफोन का बीजक (बिल) 70,000 सीरियाई पाउंड (लगभग दस मास की वेतन राशि) हो गया है, तो उनका वेतन पूरा का पूरा इसी को भरने में उड़ गई। टेलीफोन बिल की इतनी बड़ी राशि इसलिए हो गई थी, क्योंकि उमर अपनी उस तथाकथित "बहन" का कुशल-क्षेम जानने के लिए मोरक्को में लंबी-लंबी अंतर्राष्ट्रीय कॉल करता रहा था। हलीमा चाहतीं तो वह बिल न भरतीं, क्योंकि उन्हें फोन की आवश्यकता नहीं थी, और टेलीफोन कंपनी फोन काट देती तो भी उन पर प्रभाव नहीं पड़ता। यद्यपि कहानी में एक और मोड़ आ गया जिसका हलीमा के जीवन के एक और पुरुष ने लाभ उठाया। वह फोन हलीमा के अब्बा के नाम से लिया गया था। उनके अब्बा ने सहायता तो की नहीं, हां यह अवश्य कहा कि यदि वह फोन लाइन उनके घर में स्थानांतरित कर दी जाए तो उसका बिल भर देंगे।

वह तो अच्छा हुआ कि दमाकस टेलीफोन कंपनी ने दया दिखाते हुए यह सुविधा दे दी कि बिल की राशि उनके मासिक वेतन से काटते समय कुछ राशि उनके खाते में छोड़ दी जाएगी, जिससे कि वो अपनी संतान का पालन-पोषण कर सकें। हलीमा दिनभर विद्यालय में खटती रहती थी कि अपने शौहर की उधारी चुका सके। विद्यालय से आकर वह घर-घर जाकर निजी ट्यूशन पढ़ातीं थी कि कुछ अतिरिक्त धन जुटा सकें जिससे वो अपनी तीन संतानों को पेट भर सकें। हलीमा के सुंदर नेत्रों में अश्रुधारा

निकल पड़ी, यह देखकर मेरा हृदय द्रवित हो उठा। मैं उनके कंधे पर हाथ रखा और मन ही मन कहने लगी, "दुखी न हो हलीमा। अपने अल्लाह और रसूल को प्रसन्न करने के लिए तुमने भयानक मूल्य चुकाया है। यहाँ के संसार की यही रीत है, यह सुख लील लेता है। धीरज धरो हलीमा, अच्छे दिन भी आएंगे!" मैंने हलीमा से एक शब्द नहीं कहा। मैं उनसे कहती भी क्या। वो तो इतना ही चाहती थीं कि मैं उनकी जीवन गाथा सुनूं।

हलीमा ने मुझे एक उपहार दिया। जब मैंने वह खोला तो उसमें सीरिया का बना हुआ सूती वस्त्र (शर्ट) था। उनका यह उपहार देखकर मैं आनंदित हो उठी, यह मेरी मातृभूमि का सुंदर स्मृतिचिह्न था, और उस महिला के दुखों का साक्ष्य था जिसके आंसू देखकर मैं अपने असहाय पा रही थी। मेरा स्वभाव बन गया था कि मुझे जब भी किसी प्रियजन से कोई उपहार मिलता था तो मैं उस पर देने वाले का नाम व तिथि लिख देती थी, और उस पर एक वाक्य भी लिखती थी जिससे कि जब भी उसे पढ़ूं तो मुझे उस विशेष क्षण का सुखद स्मरण हो। मैंने उसमें से एक शर्ट को मोड़कर उस पर लिखा: हलीमा, सीरिया, 12 अप्रैल 2005 और जब मैं उस क्षण का स्मरण दिलाने वाला वाक्य सोचने लगी तो उस परिस्थिति का वर्णन करने के लिए एलनर रूजवेल्ट की इस टिप्पणी कि "आपकी सहमति के बिना कोई आपको नीचा नहीं दिखा सकता है", से अधिक उपयुक्त कुछ नहीं मिला।

हलीमा के शौहर ने उन्हें अपमानित किया, उन्हें नीचा दिखाया, पर यह भी सही है कि इसमें हलीमा की सहमति थी। इस्लामी शिक्षा ने एक मुस्लिम पुरुष के रूप में उसके शौहर में जो अहंकार और अत्याचारी प्रवृत्ति भरी थी, वह तो हलीमा के इस दुखभरी स्थिति का कारण था ही, किंतु इसके पीछे एक और बड़ा कारण यह भी था कि उनके शौहर के रसूल ने औरतों को दास गुलाम बनकर रहने का आदेश दिया था, और हलीमा ने दास बनकर जीना स्वीकार किया था। हलीमा को ही पुनर्शिक्षित होने की आवश्यकता है। उनमें परिवर्तन आ गया, तो यदि कभी उसका शौहर उस

मोरक्को की नाचने वाली औरत को छोड़कर उनके पास आया तो उसमें भी परिवर्तन आएगा। हम तब तक उमर को अहंकार से मुक्त नहीं कर पाएंगे, जब तक कि वह यह हदीस पढ़ता और विश्वास करता रहेगा: "मर्द को यह अधिकार है कि वह अपनी बीवी से अपेक्षा करे कि यदि उसकी नाक से रक्त निकल रहा हो, अथवा मैल या मवाद बह रहा हो, तो बीवी उसे अपने जिह्वा से चाटे।" हलीमा ने अपने मन में स्वयं की जो छवि बना रखी है, उसमें सुधार करके हम उन्हें उनकी शक्ति पुन: उन्हें लौटा सकते हैं। यदि ऐसा हो जाए, और वो दास की भूमिका वाले सदियों पुराने जिस जुए में जकड़ी हुई हैं उसे निकाल फेंके, तो उमर से सीधे-सीधे कह पाएगी कि वह अपने मन-मस्तिष्क में बैठी विकृति को दूर करे और यह अपेक्षा करना बंद कर दे कि वो उसकी गंदगी को चाटेंगी।

यद्यपि हलीमा जैसी महिला को तब तक अपने भीतर परिवर्तन लाने के लिए नहीं समझाया जा सकता, जब तक कि उन्हें अपनी स्थितियों और दूसरों की स्थितियों से तुलना करने का अवसर न मिले। पश्चिमी देशों में महिला का अधिकार संरक्षित होता है, और जब कोई मुस्लिम महिला पश्चिमी देश में जाती है, तो उसे तुलना का यह अवसर मिलता है। ऐसे प्रकरणों में अधिकांशत: यही होता है कि मुस्लिम महिला उस पश्चिमी देश में अपने आसपास के वातावरण को जब देखती है, तो उसके परिणामस्वरूप अपनी स्थिति में परिवर्तन करने का प्रयास करती है। यद्यपि पश्चिमी देशों में रहकर जो महिलाएं पश्चिमी जीवन शैली का आनंद उठा रही हैं, और अपने उस दत्तक समाज की महिलाओं के समान ही महिला अधिकारों का उपभोग कर रही हैं, वो कभी अपने ऊपर उस नए समाज द्वारा किए गए उपकारों के प्रति कृतज्ञ नहीं होती हैं। उल्टे ये मुस्लिम महिलाएं डींगें हांकती हैं कि पश्चिम ने जो अधिकार उन्हें दिए हैं, उसमें कुछ नया नहीं है, इस्लाम ने ये सारे अधिकार उन्हें पहले से दे रखा है। कभी-कभी तो ये मुस्लिम महिलाएं यह कहने लग जाती हैं कि पश्चिम महिलाओं को केवल यौन-सुख के लिए प्रयोग करता है, उनके मानव अधिकारों को कोई स्थान

नहीं देता है। मैंने ऐसी अनेक मुस्लिम महिलाओं से बात की है, जो अमरीका में रहती हैं और उनके पास अमरीकी महिलाओं के समान ही अधिकार हैं। इनमें से अधिकांश महिलाएं यही कहती रहती थीं कि अमरीका में मिला जीवन उससे कोई भिन्न नहीं है, जो कि उनके अपने देश में मिलता था। यह सुनकर मैं बारंबार अचंभित हो उठती थी, उनकी बातें सुनकर मैं अपना सिर पकड़ लेती थी और सोचने लगती थी कि मैं और ये महिलाएं भिन्न-भिन्न ग्रह पर रहती हैं क्या?

मैं न्यूजर्सी से पेंसिलवेनिया जा रही थी, दूसरी रेलगाड़ी पकड़ने के लिए ट्रेटन में उतरी, अन्य यात्रियों के साथ स्टेशन हाल में बैठकर दूसरी रेलगाड़ी पकड़ने की प्रतीक्षा कर रही थी। मेरे दाहिने बादाम और अखरोट से भरी ट्रॉली थी और इसके पास चौड़े कंधे और मध्यम ऊंचाई का अश्वेत व्यक्ति खड़ा था, पहली बार में तो मुझे लगा कि वह अमरीका का मूल निवासी है। उसने अपनी ट्रॉली छोड़ी, दो डग आगे बढ़ाए, और अरबी में अजान देने लगा:"अल्लाहू-अकबर। अल्लाहू-अकबर। नमाज का समय हो गया है। नमाज का समय हो गया है।"

मेरी अपनी मातृभाषा में किसी को बोलते सुनकर मैं प्रसन्न हो गई, मैं उससे दो शब्द बतियाने चली गई। उत्साह में मैंने कहा, "अल-सलामु अलैकुम! " ("तुम पर शांति हो!")

चौंककर वह बोला, "वा अलैकुमल-सलाम!" ("और तुम शांति से रहो!")

मैंने उससे अंग्रेजी में पूछा, "तुम्हें अरबी आती है क्या?"

वह बोला, "मैं अरबी पढ़ सकता हूँ। अरबी मेरे कुरआन की भाषा है।"

मैंने पूछा, "और तुम अरबी समझते भी हो क्या?"

उसने बात टालते हुए कहा, "क्या तुम इस्लाम में आना चाहती हो?"

मैंने उससे कहा, "मैं पहले से ही मुस्लिम हूँ।"

उसकी आंखें अंगारे के समान दहकने लगीं और वह बोला, "तुम मुसलमान नहीं हो, तुम्हारा इस्लाम से कुछ लेना-देना नहीं है!"

उसका उत्तर सुनकर मैं चौंक गई, और मैंने उससे कहा, "मैं क्या हूँ, क्या नहीं हूँ, तुम कौन होते हो यह निर्णय करने वाले?"

वह रूखेपन से दांत पीसते हुए बोला, "विक्षिप्त हो क्या? मुस्लिम महिला हिजाब पहने रहती है, घर में रहती है और संतान पालती है। वह काफिरों की धरती पर पुरुषों के बीच ऐसे नहीं घूमती है! अल्लाह का भय करो, घर जाओ और अपनी संतान की देखभाल करो!"

मैंने उसकी आँखों में देखा और चीख पड़ी, "हां, मैं विक्षिप्त हूँ, क्योंकि मैं तेरे जैसे एक मजहबी उन्मादी से कुछ अच्छा सुनने की आशा कर बैठी। मूर्ख कहीं का! यदि तुम्हारी अम्मियों ने अपनी संतानों को ठीक से पाला होता, तो पाकिस्तान इस्लाम का स्विटजरलैंड होता, तुम्हें भिखारियों की भाँति यहाँ पश्चिम में मुंह मारने नहीं आना पड़ता।" इतना कहकर मैं अरबी में बड़बड़ाते हुए वहाँ से निकल गई। वह न तो अरबी न पढ़ सकता था, न समझ सकता था, जितना उसे सिखाया गया था वही रट्टू तोते की भाँति बोल रहा था। मैंने कहा, "तुम लोगों की मूर्खता देखकर मुझे अचंभा नहीं होता है। मुझे तो उस अमरीका के लिए दुख होता है, जो तुम जैसे मूर्खों को अपने देश का वातावरण दूषित करने की छूट देता है।"

मुझे पश्चिम में रहने वाले मुस्लिम पुरुषों व स्त्रियों को लेकर कोई आशा नहीं है। ये लोग महाढोंगी हैं। ये लोग पश्चिम और मुस्लिम दोनों संसारों से लाभ उठाने का प्रयास कर रहे हैं। ये लोग उन्मुक्त पश्चिमी जीवनशैली में रहते हैं और इसका पूरा लाभ उठाते हैं, जबकि अंदर ही अंदर अपने मूल मुस्लिम देश में रह रहे संबंधियों को ऐसा दिखाते हैं कि ये निष्ठापूर्वक इस्लाम की शिक्षाओं का पालन कर रहे हैं और पश्चिम में इस्लाम का प्रसार व क्रियान्वन कर रहे हैं।

अमरीका प्रवास के पश्चात् 2003 में मैं पहली बार सीरिया गई। संयोग से वहाँ मुझे एक ऐसी सीरियाई महिला मिल गई, जो अमरीका में रह

रही थी। मैं एक सामाजिक कार्यक्रम में गई थी, जहाँ वो भी आई थी। अभी मेरा उससे परिचय नहीं हुआ था, कि मैंने महिलाओं के एक समूह में उसे कहते सुना, "अमरीका में अनेक विद्वान व मनोवैज्ञानिक मानसिक विकार को ठीक करने के लिए कुरआन की आयतें सुनाने का आश्रय ले रहे हैं।" उसके आसपास की महिलाएं उससे प्रश्न पर प्रश्न पूछे जा रही थीं, और वह बिना किसी योग्यता के ही उनको समझा रही थी कि अमरीका का जीवन कैसा दिखता है; कैसे वहाँ लोग धर्म से दूर होकर लोभ-लालच और भौतिकता में लिप्त हो गए हैं, कैसे वे लोग अब जीवन का अर्थ ढूंढ़ रहे हैं और इस्लाम की ओर आकर्षित हो रहे हैं। ऐसे मुसलमान न केवल संयुक्त राज्य अमरीका के लिए खतरा हैं, अपितु अपने मूल देश के लिए भी खतरा हैं।

इस्लामी देशों में लोग भयानक मानसिक झंझावात का सामना कर रहे हैं। जब वे पश्चिम के विकास व सुंदर जीवन के विषय में सुनते हैं, तो अचंभित हो जाते हैं। वे अपने इस्लामी देश के जीवन से असंतुष्ट रहते हैं। पर पश्चिमी देशों में रहने चला गया कोई मुसलमान उन्हें इस प्रकार भ्रमित करता है, तो वे यह निश्चित कर पाने में कठिनाई का अनुभव करने लगते हैं कि क्या ठीक है, अपनी वह संस्कृति जिसने उनका जीवन नर्क बना दिया है अथवा वह पश्चिमी संस्कृति जिसकी बुराई उसी संस्कृति में रहने वाले मुसलमान करते हैं। जब मैं उनके बीच पहुंची, और उस महिला से पूछा कि यदि अमरीका इतना ही बुरा है तो वह वहाँ रह क्यों रही है, क्यों नहीं अपने तीनों संतानों को लेकर अपने इस "धार्मिक" समाज में वापस लौट आती है। उसने मुझे घूरा और ऐसे मुंह बनाई, मानो कह रही हो कि मैं तो यहाँ लौटकर आ ही जाती, पर मेरे इस मातृदेश की राजनीतिक व आर्थिक स्थिति अभी मुझे ऐसा करने से रोक देती है।

मुझे समझ में आ गया कि उस महिला से आगे बात करना व्यर्थ है, और मैंने बात वहीं समाप्त कर दिया। मैंने इस प्रकार के मानसिक द्वंद्व वाले बहुत से दृश्य देखे हैं, ऐसे बहुत से लोगों की बातें सुनी हैं। इनमें से

एक घटना मुझे कभी नहीं विस्मृत होगी। इजराइल और फिलिस्तीन के मध्य हुई ओस्लो संधि के विरोध में राष्ट्रपति गद्दाफी ने फिलिस्तीनी युवाओं के एक समूह को लीबिया से निष्कासित कर दिया था। वे युवा लीबिया और मिस्र की सीमा पर यह सोचकर एकत्र हुए कि संयुक्त राष्ट्र उन पर दया दिखाते हुए उनकी समस्या का समाधान करेगा। मुझे ध्यान है कि फिलिस्तीनियों का वह समूह गद्दाफी के इस निर्णय के विरोध में प्रदर्शन कर रहा था, और अचंभे की बात यह थी कि उनमें से कुछ युवा लीबिया के स्थान पर अमरीका का ध्वज जला रहे थे, एक युवक जल रहे अमरीकी ध्वज को लहरा रहा था। उस युवक ने जो टी-शर्ट पहन रखी थी, उस पर बने लोगो में शिकागो बुल्स लिखा था।

पश्चिम में रह रही मुस्लिम महिलाओं के ढोंग से अनजान मुस्लिम देशों की भोली-भाली महिलाएं यह तो समझती ही हैं कि पश्चिम की महिलाओं को अधिकार और स्वतंत्रता मिली और प्रबुद्ध बनाने वाली शिक्षा मिली, इसलिए उन्होंने इतनी सारी उपलब्धियां अर्जित की हैं। मुस्लिम देशों की महिलाओं को यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि पश्चिमी संस्कृति के उन्नत व सफल होने के पीछे का कारण यह है कि उसमें महिला और पुरुष समान रूप से साथ-साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करते हैं। ये मुस्लिम महिलाएं यह भी भली-भाँति समझती हैं कि जिन समाजों में अपनी आधी जनसंख्या अर्थात नारी को सताया और नीचा दिखाया जाता है, वो किसी भी स्तर पर सफल नहीं हो सकते और न ही कोई प्रगति कर सकते हैं। इस्लामी शिक्षा ने इन महिलाओं के मुंह पर ताला जड़कर प्रगति के जो सारे द्वार बंद कर रखे हैं, उसे खोलने की कुंजी यही है कि इनकी अज्ञानता को दूर किया जाए। एक बार इनके मुंह से ताला हटाने में सफल हो गए, तो समझ लीजिए हमने इस्लामी आतंकवाद को कुचलने का पहली डगर बढ़ा दी है।

जिस दिन मुस्लिम महिलाओं को यह समझ में आ गया कि निर्णय और चयन में क्या भेद है, वो अपनी दासता का महिमामंडन करने की

अपेक्षा अपनी स्वतंत्रता का सम्मान करना आरंभ कर देंगी। हिजाब ने मुस्लिम महिलाओं को समूचे संसार से काटकर कर रखा है, और इसने एक ही समाज में रहने वाली मुस्लिम महिलाओं और मुस्लिम पुरुषों के मध्य लोहे की बाड़ लगा रखी है, किंतु जब भी मैं इस हिजाब की बात छेड़ती हूँ, ये महिलाएं ही लड़ने आ जाती हैं कि हिजाब पहनने का निर्णय उनका अपना है, इसलिए संसार को उनके निर्णय का सम्मान करना चाहिए। हो सकता है कि यह उनका निर्णय हो, किंतु यह उनका चयन तो नहीं कदापि नहीं हो सकता है। भय के कारण अरब देशों की महिलाएं इन दमनकारी इस्लामी शिक्षाओं की बेड़ियों से जकड़ी हैं।

रसूल मुहम्मद ने एक हदीस में अपने चचेरे भाई अली से कहा है: "जिस रात वह फरिश्ता मुझे जन्नत की यात्रा पर ले गया था, तो मार्ग में जहन्नुम भी पड़ा था, वहाँ से होते हुए निकल रहा था तो देखा कि औरतों को भयानक यातना दी जा रही थी, विलाप कर रही उन औरतों में चीख-पुकार मची हुई थी, वो सब की सब इतना भयानक कष्ट भोग रही थीं। मैंने देखा कि एक औरत को बालों से बांधकर उल्टा लटकाया गया था और उसका माथा खौलते जल में उबल रहा था, मैंने देखा कि एक औरत को उसके स्तनों से लटकाया गया था, मैंने एक औरत ऐसी भी देखी जिसका सिर सूअर का था और शेष शरीर गधे का था। मैंने देखा कि फरिश्ते श्वान (कुतिया) की भाँति दिखने वाली एक औरत को आग के लुक्कारे से पीट रहे थे और आग उसके मुंह से भीतर जाकर उसके नितंबों से निकल रही थी।" भय व आतंक से भरे चलचित्र बनाने का विशेषज्ञ कोई हॉलीवुड फिल्म निर्देशक भी क्या इससे अधिक भयभीत करने वाले दृश्यों की कल्पना कर सकता है? मुस्लिम महिला यह मानती है कि अल्लाह उसे स्तनों से बांधकर लटकाएगा, उसके मुंह में लुक्कारा डालकर नितंबों से उसकी आग को बाहर निकालेगा, और ऐसे में भला कोई मुस्लिम महिला हिजाब पहनने से कैसे मना कर देगी? जब तक वह स्वयं को अपने इस भय से मुक्त नहीं करेगी, न

तो अपने को हिजाब से मुक्त कर सकती है, और न ही ऐसा करने में समर्थ हो पाएगी।

जब हम उस महिला को उसके राक्षस के चंगुल से मुक्त करा पाने में सफल होंगे, तभी वह अपने को उसके भय से मुक्त कर पाने में समर्थ होगी और तभी वह उन इस्लामी शिक्षाओं की कुरुपता की ओर देख पाएगी, जिसने उसे मानव होने के अधिकार तक से वंचित कर रखा है। यह तो इस समस्या का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष यह है कि यदि हिजाब पहनना मुस्लिम महिलाओं का अपना निजी निर्णय है और संसार के उनके इस निर्णय का सम्मान करना ही है, तो यह प्रश्न उठता है: जो स्त्रियां सिर नहीं ढंकती हैं, क्या इस्लाम उनके निर्णय का सम्मान करता है? ऐसा क्यों है कि लॉस एंजेल्स के मार्गों पर मुस्लिम महिलाएं तो अपने मजहब का पालन करते हुए सिर से पांव तक बुर्के में ढंकी रहकर घूम सकती हैं, पर सऊदी अरब की यात्रा करने वाली पश्चिमी देशों की अ-मुस्लिम महिलाओं को सार्वजनिक स्थानों पर जाने के लिए बुर्का पहनना अनिवार्य है?

जो मुस्लिम महिला अपना सिर ढंकने से मना कर देती है, उसके साथ मुस्लिम समाज सम्मानजनक व्यवहार करता है क्या? अथवा उसे अपनी स्वतंत्रता के इस निर्णय के लिए भारी मूल्य चुकाना पड़ता है? दो वर्ष पूर्व जब मैं अपनी अमरीकी सहेली जेसिका के साथ सीरिया गई थी, तो उसके साथ तार्तस के सीरियाई नगर के समीप एक द्वीप पर घूमने गई थी। हमारा गाइड 25-30 वर्ष का एक युवक था। उसके साथ हम उस द्वीप की पगडंडियों पर चलने लगे। वहाँ स्थानीय लोग व यात्री भरे हुए थे। जेसिका बोली: "अन्य सीरियाई नगरों की तुलना में यहाँ पर तो महिलाएं कुछ अधिक ही हिजाब पहने हुए दिख रही हैं।"

मैं गाइड की ओर मुड़ी और उससे पूछा, "इस द्वीप की सभी महिलाएं हिजाब पहनती हैं क्या?"

वह बिना किसी हिचक के बोला, "हां, कुछ वेश्याओं को छोड़कर।" उसकी प्रतिक्रिया वही थी, जो किसी अन्य सामान्य मुस्लिम

पुरुष की होती, और इसीलिए मुस्लिम समाज में रहने वाली प्रत्येक महिला प्रयास करती है कि उसे अपने लिए ऐसी किसी टिप्पणी का सामना न करना पड़े। मुस्लिम महिलाओं द्वारा हिजाब पहनने के पीछे एक बड़ा कारण यह भी है। महिला या तो सिर ढंकने के लिए हिजाब पहने अथवा वेश्या कहलाए जाने को तैयार रहे।

जब मैं चिकित्सा के चौथे वर्ष की छात्रा थी, तो जिस चिकित्सालय में मैं प्रशिक्षण ले रही थी, एक दिन उसी के समीप बस स्टॉप पर छह व आठ वर्ष के दो बालकों को देखा। दोनों बालकों के हाथ में छोटी-छोटी चिड़िया थी और वे उसके पंख नोंच रहे थे। वो चिड़िया पीड़ा के मारे निरंतर चहचहा रही थीं और उनके हाथ से निकल भागने का प्रयास कर रही थीं। वह दृश्य देखकर मुझसे रहा नहीं गया, और मैं उनके पास जाकर बोली, "बालकों, यह नहीं करना चाहिए। न करो ऐसा।" उनमें जो बड़ा था, वह मुझे ऐसे घूरने लगा कि मानो खा ही जाएगा, वह उग्र होकर बोला, "चिड़िया का पंख नोंचने में कोई बुराई नहीं है। बुराई इसमें है कि तुम्हारी जैसी महिलाएं हिजाब से सिर ढके बिना ही सबके बीच में घूम रही हैं। निकलो यहाँ से, घर में जाकर धंसो!"

आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध आरंभ करने के लिए हमें मुस्लिम शिशुओं को उस शिक्षा से बचाना होगा, जो उन्हें राक्षस बना देती है। आइए इस पर तनिक विचार करें: आठ वर्ष का बालक उचित और अनुचित इस दृष्टि से देखता है, तो निश्चित ही यह समस्या है और इस पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। जहाँ तक उस बालक का संबंध है, तो उसके मन में बिना हिजाब के बाहर निकली महिला का सम्मान उस श्वान से भी कम था जो पट्टा छुड़ाकर इधर-उधर घूम रहा हो। इस बालक को इस महिला के विषय में कुछ जानने की आवश्यकता नहीं लगती, न ही इसकी दृष्टि में इस बात का कोई महत्व है कि यह महिला एक होनहार चिकित्सा विद्यार्थी है, उसने तो इसे बिना हिजाब के देखा और वेश्या घोषित कर दिया। उस छोटी-सी चिड़िया के साथ वह कितनी क्रूरता कर रहा था, पर उसे इस बात

का तनिक भी आभास नहीं हो रहा था कि वह कितना अपराध कर रहा है, यह भी समस्या का ही लक्षण है और इससे हमें चिंतित होना चाहिए।

मुहम्मद अता रातोंरात आतंकवादी नहीं बन गया था। वह अचानक कहीं से प्रकट नहीं हुआ था, न ही वह करौंदे की झाड़ियों से एकाएक निकल पड़ा था। जब वह आठ वर्ष का रहा होगा, तो उसने भी बिना किसी अपराध बोध के छोटी चिड़िया के पंख नोंचे होंगे। बिना हिजाब की महिला को लेकर उसकी भी धारणा उस बालक से भिन्न नहीं रही होगी, जिसने कि बिना जाने-समझे एक झटके में मेरे चरित्र पर अनर्गल टिप्पणी कर दी थी। वह जिस समाज में जन्मा था, वहाँ के नैतिक-सिद्धांतों, शिक्षाओं व संस्कृति को अपने भीतर पाल रखा था। छोटी आयु में ही उसने कुरआन की यह आयत पढ़ ली होगी कि: "जो अल्लाह और उसके रसूल से युद्ध करते हों, तथा धरती पर फित्ना करने के लिए ताकत और प्रमुखता से आगे बढ़ रहे हों, उनका दण्ड यह है कि उनकी हत्या कर दी जाए, तथा उन्हें मारकर लटका दिया जाए, अथवा उनके हाथ-पांव काटकर उन्हें बीच से फाड़ दिया जाए... (5:33)।" जो बालक यह सीखेगा कि अल्लाह लोगों के हाथ-पांव काटकर बीच से फाड़ देता है, वह चिड़िया के पंख नोचने और बड़ा होकर अवसर मिलने पर "काफिरों" को ले जा रहे विमान का अपहरण करने अथवा "काफिरों" से भरी किसी अट्टालिका पर आक्रमण करने में संकोच नहीं करेगा। वह बालक अपने अल्लाह को अपने में उतारेगा और एक दिन वह वही अल्लाह बन जाएगा। दुर्भाग्य यह है कि बालकों के मन-मस्तिष्क में जिहाद का विष भरने का काम बढ़ता ही जा रहा है।

लगभग दो वर्ष पूर्व कैलीफोर्निया राज्य के ऑरेंज कंट्री में अनाहीम की मस्जिद में विद्यार्थियों के लिए कुरआन-स्मरण प्रतियोगिता आयोजित हुई थी, जिसमें पुरस्कार की व्यवस्था थी। मैं हतप्रभ थी। अमरीकी सरकार ने आतंकवाद से लड़ने के नाम पर ईराक और अफगानिस्तान में अपनी सेना को खतरे में उतार दिया था, परंतु अमरीकी सरकार और अमरीकी लोगों ने

यहाँ इस तथ्य पर से आंख बंद कर रखा है कि उनके अपने ही घर में अमरीकी बालक आतंकवाद सीख रहे हैं। सितम्बर के आतंकवादी हमले के कुछ ही दिन पश्चात्, लॉस एंजेल्स यूनाइटेड स्कूल डिस्ट्रिक्ट के एक इस्लामी केंद्र ने लॉस एंजेल्स यूनाइटेड स्कूल डिस्ट्रिक्ट में "पवित्र कुरआन का अर्थ" नामक पुस्तक लगाई; यद्यपि यहूदियों व मुसलमानों के स्थानीय नेताओं की आपात बैठक के पश्चात् यह पुस्तक विद्यालयों से हटा ली गई और उस इस्लामी केंद्र को लौटा दी गई, क्योंकि उस पुस्तक में अन्य समुदायों की धार्मिक भावना आहत करने वाली सामग्री थी। लॉस एजेल्स टाइम्स ने 12 फरवरी, 2002 को "वापस ली गई कुरआन के स्थान पर नया संस्करण आएगा" शीर्षक से समाचार प्रकाशित किया था।

उस समाचार में उमर इब्न अल खत्तब फाउंडेशन के प्रमुख दाफेर दखील की प्रतिक्रिया भी दी गई थी, जिसमें कहा गया था: "आज के ऐसे समय में जब इस्लाम और मुसलमानों के विषय में भ्रम व दुष्प्रचार चरम पर है, हमारे इस उपहार का उद्देश्य यह था कि इस्लाम और मुसलमानों के विषय में लोगों की समझ बढ़ाई जाए, तथा शिक्षकों व विद्यार्थियों को बाइबिल व अन्य धर्मों के ग्रंथों से साथ-साथ कुरआन को भी समझने का अवसर दिया जाए।" दखील ने पहले ही यह कहते हुए क्षमायाचना कर ली थी: "हमारी ऐसी मंशा नहीं थी कि अन्य धर्मों के अनुयायियों की भावना आहत की जाए या उनके समुदाय के सदस्यों को दुख पहुंचाया जाए।" मुस्लिम सार्वजनिक प्रकरण परिषद के प्रवक्ता सलाम अल-मरायती ने कहा: "सद्भावना एवं सदाशयता के हित में देखते हुए और लोगों की चिंताओं के प्रति संवेदनशील होते हुए हम सहमत हुए कि इस पुस्तक का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।" लॉस एंजेल्स टाइम्स के उस समाचार के अनुसार, "अल-मरायती एवं अन्य मुस्लिम नेता उस बैठक में इस पर सहमत हुए थे कि शिक्षा विभाग के अधिकारियों के साथ काम करके कुरआन का दूसरा संस्करण यथाशीघ्र तैयार किया जाएगा।"

तब से लेकर आज तक, मेरे मन में अनेक प्रश्न उठते रहे हैं: कुरआन के अन्य संस्करण से उनका क्या तात्पर्य था? अल-मरायती अपने नए संस्करण में कुरआन की उस आयत की व्याख्या कैसे करेंगे, जो पृष्ठ 148 पर दिया गया है? क्या वो कह पाएंगे कि वर्तमान समय में यह आयत व्यर्थ व अनुपयोगी है और लागू नहीं है? तब से मैं समाचार निरंतर देखती आ रही हूँ, परंतु आज तक नहीं सुना कि मरायती उस कुरआन से भिन्न कोई संस्करण ला पाए हों। मुझे यह भी नहीं पता चला कि जब उन्होंने कहा "यथाशीघ्र" तो इसका आशय कितने समय से था। उस समाचार में लिखा था कि वह बैठक बंद कक्ष में हुई थी। उस बैठक में जो बात हुई, वह सार्वजनिक रूप से क्यों नहीं की जा सकती है? क्या अल-मरायती अमरीका और मुस्लिम देशों दोनों स्थानों के मुसलमानों को वह वास्तविक कारण समझा पाए हैं कि क्यों लॉस एजेंल्स के विद्यालयों से उस पुस्तक का वह संस्करण हटाया गया? क्या अल-मरायती ने उस पुस्तक को विश्वभर के विद्यालयों से हटवाने का प्रयास किया? जो कुरआन लॉस एंजेल्स में नैतिक रूप से अस्वीकार्य है, वह अन्य किसी भी स्थान पर भी अस्वीकार ही होनी चाहिए, यहाँ तक कि मध्य पूर्व में भी यह पुस्तक अस्वीकार्य होनी चाहिए, क्योंकि नैतिकता प्रत्येक काल और प्रत्येक स्थान पर एक समान होती है। अल-मरायती ने लॉस एंजेल्स के विद्यालयों से वह कुरआन हटा ली, पर उन्होंने अनाहीम के मस्जिद से संबद्ध इस्लामी विद्यालय में इसे रटकर सुनाने वाले मुस्लिम बच्चों को पुरस्कार स्वरूप वही अस्वीकार्य पुस्तक बांटने की अनुमति क्यों दी?

यह कोई अनोखी घटना नहीं है कि जहाँ मुसलमान अंग्रेजी बोलने वाले लोगों से कुछ और कह रहा हो और उसी बात के संबंध में अरबी बोलने वालों से दूसरा कुछ कह रहा हो। सितम्बर 11 के हमले को देखते हुए एक अध्ययन कार्यक्रम आयोजित हुआ था, जिसमें मुख्य व एकमात्र वक्ता जो था वह मुस्लिम समुदाय से था। उस वक्ता ने अपना भाषण समाप्त किया, तो लोगों ने प्रश्न पूछना आरंभ किया। मैंने उससे पूछा, "डॉक्टर,

क्या आपको लगता है कि जो इस्लामी पुस्तकें हमारे पास हैं, वो शांतिप्रिय व अहिंसक पीढ़ियां तैयार करने में योगदान दे सकती हैं?" वह वक्ता भली-भाँति जानता था कि मैं कौन और क्या हूँ; इसलिए उसने मुझे उत्तर दिया, "निश्चित रूप से नहीं!" इसका तात्पर्य यह था कि इस्लामी ग्रंथों में सुधार किया जाना चाहिए और यदि ऐसा नहीं किया जाता तो इन ग्रंथों पर सतर्क दृष्ट रखी जानी चाहिए। परंतु जब लॉस एंजेल्स के अरबी भाषा के समाचार पत्र के संवाददाता ने इसी वक्ता से पूछा कि उसने जो उत्तर दिए हैं, उसे अक्षरश: प्रकाशित कर दिया जाए, तो उसने कहा कि नहीं। मैंने उसे कहते हुए सुना, "नहीं, नहीं... ऐसा न करना, पर हां, यदि आप यह लिखो कि 'इनमें से कुछ ग्रंथों का पुनर्परीक्षण एवं उनमें सुधार किए जाने की आवश्यकता है', तो मुझे आपत्ति नहीं होगी। संवाददाता ने उस वक्ता के विचार प्रकाशित करने से पूर्व उसकी सहमति लेने का प्रयास इसलिए किया, क्योंकि वह अच्छे से जानता था कि उस वक्ता ने एक निजी मंच पर जो कहा है, उसे वह सार्वजनिक मंच पर नहीं कह पाएगा और सार्वजनिक मंच पर वह दूसरे ढंग से बात करेगा।

पश्चिम के देश मुसलमानों को अपने देश में रहने की अनुमति क्यों देते हैं भला, जबकि मुसलमान उनके बीच रहकर जब पश्चिम की भाषा में बात करते हैं तो उदारवादी बनने का नाटक करते हैं, किंतु जब अपनी मातृभाषा में मुस्लिम संसार के लोगों को संबोधित करते हैं तो आतंकवादी इस्लामी विचारों की आलोचना नहीं करते हैं? यह उस सच्चाई की छोटी सी झलक है कि किस प्रकार पश्चिम और विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमरीका में इस्लामीकरण बढ़ रहा है।

*-कुरआन के अध्ययन के लिए अल-जलालैन सर्वाधिक महत्वपूर्ण तफ्सीरों (टीकाओं) में से एक है।

अध्याय 9

इस्लाम एक बंद फ्लास्क

इस्लाम एक बंद फ्लास्क है। यहाँ खुलकर सांस लेने की अनुमति नहीं होती। इसका अस्तित्व बचा रहे और आगे चलकर भी बना रहे, यह सुनिश्चित करने के लिए यह मतांध व्यवस्था अपने लोगों को मानसिक बेड़ियों में बांधकर रखती है। मानसिक परतंत्र बनाए रखने के लिए इस्लाम समाज और व्यक्ति के मध्य उत्पीड़नकारी व स्वेच्छाचारी संबंध निर्मित करता है। इस्लामी समाज में व्यक्ति को कोई स्वतंत्रता नहीं होती, कोई निजता नहीं होती है। उसे अपने समाज के आगे झुकना ही होता है और उसे विचार प्रकट करने की क्षमता से वंचित कर दिया जाता है, विशेष रूप से तब जब उसका विचार कुछ हटकर हो। इस्लाम ने अपने अनुयायियों से स्वतंत्रता के सबसे मूल तत्व अर्थात अपने को प्रकट करने की स्वतंत्रता छीन ली है, और इसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की इच्छा ही मार दी है। व्यक्ति पर अपनी अधीनता बनाए रखने के लिए यह जीवन के प्रत्येक पक्ष, चाहे छोटा हो या बड़ा हो, में नाक घुसेड़ता है, हस्तक्षेप करता है और सबमें अपना आदेश पारित करता है। यह उसकी प्रत्येक गतिविधियों को नियंत्रित करता है, और जीवन के अंतरंग पलों पर भी नियम-कानून थोपता है। यह यहाँ तक पराधीन बनाने का प्रयास करता है कि स्नानगृह में प्रवेश करते समय पहले कौन सा पांव आगे बढ़ाना चाहिए, दाहिना या बायाँ।-*

इस्लामी समाज में व्यक्तियों के मध्य संबंध इस प्रकार बनाया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति एक ही साथ स्वामी (मालिक) और दास (गुलाम) दोनों बनकर रहे। जब वो अपने से दुर्बल व्यक्ति के साथ होता है तो स्वयं को स्वामी समझने लगता है, और जब अपने से सबल व्यक्ति के साथ होता है

तो वह दास होता है। इस्लाम में अल्लाह और मनुष्य के मध्य संबंध की प्रकृति भी वैसी ही होती है, जो शासक व शासित के मध्य होता है, आदमी और औरत के मध्य होता है, अब्बा और उसके बच्चे के मध्य होता है और मालिक व गुलाम के मध्य होता है। यह संबंध ऐसा अत्याचारी होता है कि यह उस सीमा से बाहर जाने की अनुमति नहीं देता जिसे सर्वोच्च अधिकारी अर्थात अल्लाह ने निश्चित किया है। औरत आदमी की संपत्ति है, बच्चा उसके अब्बा की संपत्ति है, गुलाम अपने मालिक की संपत्ति है, और श्रमिक अपने नियोजक की संपत्ति है। ये सब के सब उस शासक की संपत्ति हैं, जो अल्लाह के अधीन है।

जब तक गुलाम अपने मालिक के अधिकारों को मान्यता देना निरंतर रखेगा और अपने अस्तित्व को नकारता रहेगा, यह अत्याचारी दमनकारी आदेश बना रहेगा और अपराध होता रहेगा। मुस्लिम समाज में सभी सामाजिक संस्थाएं दमनकारी मालिकाना संबंध के आधार पर स्थापित की गई हैं। अस्तित्व में आने के साथ ही मुस्लिम समाज गुलाम समाज रहा है और आज तक गुलाम ही है। किसी अनुसंधानकर्ता अथवा मानव अधिकार कार्यकर्ता को इस्लामी समाज की इन सामाजिक कुरुपताओं को समझना हो, तो उसे मुस्लिम समाज के बीच जाकर रहना होगा। ऐसा करके वह मुस्लिम समाज के ताने-बाने को गढ़ने वाले संबंध की प्रकृति को ठीक से समझ सकेगा। जब आप देखेंगे कि मुस्लिम समाज में एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ क्या संबंध होता है-यहाँ कि तक कि निजी संबंधों में उनका एक-दूसरे से क्या संबंध होता है- तो पाएंगे कि यह संबंध स्वामी और दास का संबंध होता है। तनिक ध्यान से देखेंगे, तो समझ पाएंगे कि इन दो पक्षों के बीच क्या होता है।

मानव मन की संरचना कुछ ऐसी होती है कि वह प्रत्येक पक्ष की स्थिति के अनुसार दासभाव अथवा स्वामीभाव का अनुभव करता है। जब दो पक्ष मिलते हैं, तो उनमें से प्रत्येक मन ही मन यह जानने का प्रयास करता है कि उनमें से कौन सबल है। जो अपने को दुर्बल पाता है, वह

अपने अधिकार छोड़ देता है और जो सबल है, वह नियंत्रण करने लगता है और अपनी बातें थोपने लगता है। मुस्लिम समाज में ऐसे पारस्परिक संबंध न के बराबर होते हैं, जो एक-दूसरे के सम्मान के आधार पर बने हों। यहाँ तक कि व्यक्तिगत मित्रता के स्तर पर भी, दोनों पक्ष को यह भान रहता है कि उनमें से कौन सबल है और कौन दुर्बल है। जब दो लोग मिलें और गुणा-गणित लगाने की सामान्य प्रक्रिया में यह जानें कि एक-दूसरे में कौन सबल है, तो दोनों स्वाभाविक रूप से अपनी-अपनी क्षमतानुसार स्वामी व दास की भूमिका निभाने का झुकाव रखने वाले होंगे।

मुसलमानों का यह स्वभाव मैंने उनके सामाजिक सम्मिलनों में भी देखा। अमुक व्यक्ति किसी व्यक्ति से मिलता है, और कुछ मिनटों में दोनों यह जान जाते हैं कि सामने वाला क्या करता है, किस परिवार से आता है, कितना धनी है और किस धार्मिक मान्यता अथवा फिरके (मत) से उसका संबंध है। यह आरंभिक भेंट ही यह निश्चित करता है कि दोनों एक-दूसरे से कैसा व्यवहार करेंगे। यद्यपि इन दोनों व्यक्तियों में छोटा सा ही अंतर क्यों न हो, परंतु इनमें से एक स्वामी की भाँति व्यवहार करेगा और दूसरा दास की भाँति, इसके अतिरिक्त बीच का कोई मार्ग नहीं होता।

किसी संबंध में कोई व्यक्ति या तो स्वामी होता है अथवा दास होता है। किसी व्यक्ति का बल ही यह निश्चित करता है कि वह इन दोनों में से कौन सी भूमिका निभाएगा। मेरे एक संबंधी सीरिया के गुप्तचर विभाग में उच्च पदस्थ अधिकारी के सहायक के रूप में कार्य करते थे। जब मैं उनसे मिलने उनके कार्यालय गई, तो वहाँ उनके व्यवहार का प्रत्यक्ष अनुभव किया। उस कार्यालय में कुछ ही मिनट बिताकर मुझे यह दिख गया कि वह एक ओर स्वयं को सबसे बड़े अधिकारी समझकर भूमिका निभा रहे थे, तो वहीं दूसरी ओर वो दीनहीन दास के रूप में भी व्यवहार कर रहे थे। जब टेलीफोन की घंटी बजी और उन्होंने पाया कि सामने दूसरी ओर उनका अधिकारी है, तो वो अपनी पीठिका छोड़कर खड़े हो गए, और कार्यालय में उपस्थित अन्य लोगों को शांत रहने का संकेत किया। उनके मुख पर

भयग्रस्त चिंता स्वेद (पसीने) की बूंदों के रूप में उभर आई थी और वो फोन पर कह रहे थे, "जी श्रीमान्, मैं तो आपका विश्वस्त सेवक हूँ, आदेश कीजिए। मैं पत्र में आपके आदेश को डाल देता हूँ और ध्यान से समस्त विवरण आपको बताता हूँ।" फोन का रिसीवर रखकर वो कार्यालय के द्वार पर खड़े एक व्यक्ति की ओर मुड़े और उस पर चीखते हुए बोले: "रे, रंडी की औलाद, सुन, मैं तुझे यह काम सौंप रहा हूँ, इसे उस पत्र में जोड़ दे। यदि यह काम नहीं हुआ, तो समझ लेना कि तेरा काल आएगा!" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "जी श्रीमान्! मैं तो आपका विश्वस्त सेवक हूँ, आदेश कीजिए। आपको लग सकता है कि विश्व में कहीं भी किसी गुप्तचर संगठन में हो ऐसी घटनाएं होती ही रहती हैं, किंतु यह घटना निश्चित रूप से मुस्लिम समाज की वास्तविकता दर्शाने वाली है। अरब स्रोतों से संबंधित मुस्लिम इतिहास को पढ़ने वाला कोई भी व्यक्ति इस समाज में दो पक्षों के मध्य संबंधों की दमनकारी प्रकृति को समझ सकता है।

जब अमरीकी सेना ने ईराक में प्रवेश किया था, उसके पश्चात् मैं अनेक मास तक अमरीकी और अरब दोनों के समाचारों को ध्यान से पढ़ती रही। लॉस एंजेल्स टाइम्स में ईराक की स्थिति पर प्रकाशित ऐसी ही एक रिपोर्ट में मैंने एक अमरीकी सैनिक का साक्षात्कार पढ़ा। साक्षात्कार में उस अमरीकी सैनिक ने कहा, "मैं ईराकियों को तनिक भी नहीं समझ पाता हूँ।" "लोग काम मांगने आते हैं। मैं उनकी सहायता करते हुए विनम्रता से पंक्ति में खड़ा करता हूँ, पर वो सब के सब पंक्ति तोड़कर भेंड़-बकरी की भाँति गोल-गोल घूमने लगते हैं और कोई नियम-निर्देश नहीं मानते हैं। पर ज्यों ही कोई ईराकी सैनिक आगे बढ़कर उन्हें डंडे मारता है, वो तुरंत ठीक से पंक्ति में खड़े होकर अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगते हैं। मुझे समझ नहीं आता कि यह उनकी कैसी बुद्धि है! ऐसा लगता है कि वो केवल डंडे की ही भाषा समझते हैं।" सच यही है कि मुस्लिम समाज में संबंधों के विनियमन के लिए एक पक्ष को सबल और दूसरे को दुर्बल बनकर व्यवहार करना होता है।

जब आप किसी मुसलमान से शांतिपूर्वक बात करेंगे, तो वह आपको दुर्बल समझेगा। जब मुसलमानों से आपको निपटना हो, तो दुर्भाग्य से अमरीकी कहावत "बोली मीठा, हाथ में सोंटा" किसी काम नहीं आता। अपितु (जब तक हम मुसलमान अपने आचरण-व्यवहार में सुधार न लाएं) यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि "चीखते रहो और हाथ में मोटा डंडा रखो"; अन्यथा दुर्बल समझ लिए जाओगे और परास्त हो जाओगे। इस प्रकार के समाजों में लोकतंत्र तब तक नहीं पनप सकता, जब तक कि इसके लोगों को पुनर्शिक्षित न कर दिया जाए, क्योंकि ये लोग जब तक स्वामी अथवा दास की भूमिका में लिप्त रहेंगे, इनका समाज ढंग से काम नहीं कर सकते हैं। इन समाजों में लोगों को स्वामी अथवा दास भाव से मुक्त होकर अपने को अथवा किसी और को पराधीन बनाए बिना एक मनुष्य के रूप में जीना सीखना होगा। इन लोगों को यह सीखना होगा कि दो पक्षों में अच्छा संबंध तभी हो सकता है, जब दोनों में एक-दूसरे के प्रति सम्मान हो, दोनों एक-दूसरे के अधिकारों व दायित्वों को समान महत्व दें, दूसरों के अधिकारों पर अतिक्रमण से बचें और अपने-अपने पारस्परिक कर्तव्य छोड़कर भागने का प्रयास न करें।

मुहम्मद ने, अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए, अपनी आज्ञा को अल्लाह की आज्ञा का नाम देकर अपने अनुयायियों के मन में अशांति का बीज डाला था। इसके पश्चात् उसने शासक के रूप में इस "पवित्र द्वंद्व" में तीसरा पक्ष जोड़ा, जिसके माध्यम से वह अपने अनुयायियों पर नियंत्रण कर सकता था।

मुहम्मद भली-भाँति समझता था कि वही शासक उसके और जनता के मध्य का सेतु है, और इसीलिए उसने एक हदीस में शासक के आदेश के पालन की आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित करते हुए कहा: "जो कोई मेरी आज्ञा का पालन करता है, वह मेरी आज्ञा का पालन करता है, और जो कोई मेरे अमीर (शासक) की आज्ञा का पालन करता है, वह मेरी आज्ञा का पालन करता है। जो कोई मेरी अवज्ञा करता है, वह अल्लाह की

अवज्ञा करता है, और जो कोई मेरे अमीर की अवज्ञा करता है, वह मेरी अवज्ञा करता है।" इस हदीस की पुष्टि करने के लिए उसने आयत गढ़ी, जिसमें लिखा है: "अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा का पालन करो और तुममें से जो अमीर (शासक) है, उसकी आज्ञा का पालन करो (4:59)।" कुरआन की टीकाओं के अनुसार, "तुममें से जो अमीर है" का तात्पर्य है "तुम्हारे अमीर"।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि मुस्लिम संसार निर्विवाद रूप से और पूर्वाग्रह के बिना अपने अमीरों के आदेशों का पालन करे, मुहम्मद ने एक हदीस में कहा: "अपने अमीर की आज्ञा का पालन करो, चाहे वह तुम्हें कोड़े ही क्यों न मारे, तुम्हारी संपत्ति ही क्यों न छीन ले।" उसे भय था कि कुछ मुसलमान इस प्रकार के मनमाने आदेशों के विरुद्ध विद्रोह कर देंगे, तो उसने एक और हदीस में यह कहते हुए इसे उचित ठहराया: "यदि कोई अमीर ठीक से सोच-विचार कर कोई आदेश निर्गत करता है और उसका निर्णय सही होता है, तो उसे दोहरा पुरस्कार मिलेगा। यदि कोई अमीर ठीक से सोच-विचार कर कोई आदेश निर्गत करता है और उसका आदेश ठीक नहीं निकलता है, तो उसे एक ही पुरस्कार मिलेगा।"

मुहम्मद मुसलमानों को यह समझाने का प्रयास कर रहा था कि अमीर सोच-विचार में समय लगाता है और गंभीर चिंतन करके ही किसी निर्णय पर पहुँचता है। हो सकता है कि उसका निर्णय ठीक हो अथवा हो सकता है कि उसका निर्णय त्रुटिपूर्ण हो, किंतु दोनों ही स्थितियों में अल्लाह उसे पुरस्कृत करेगा, क्योंकि निर्णय करते समय उसने निश्चित ही मुस्लिम हितों का पूरा ध्यान रखा होगा। जब उसने उचित निर्णय किया, तो अल्लाह ने उसे दोहरा पुरस्कार दिया, और जब उसका निर्णय त्रुटिपूर्ण अथवा अनुचित हुआ, तो अल्लाह ने उसे एक ही पुरस्कार दिया।

जब सद्दाम हुसैन ने उत्तरी ईराक में रासायनिक शस्त्र चलाकर कुर्दों को जला डाला और दक्षिण में शिया समुदाय का नरसंहार किया, तो उसने मुस्लिम धार्मिक विधियों के अनुसार कोई अपराध नहीं किया। मुस्लिम

विधि शरिया के अनुसार, उसने शासक के रूप में रासायनिक शस्त्र चलाने का निर्णय करने से पूर्व गहन मंथन किया था। मुहम्मद के कानून के अंतर्गत मानवता के विरुद्ध किए गए उसके इस अपराध का दंड केवल यही था कि अल्लाह ने इस निर्णय के लिए उसे केवल एक ही बार पुरस्कार दिया। इस्लामी विधि ऐसी ही है, और यदि उसने अनुचित निर्णय लिया भी था, तो यह बात कहे कौन? ईराक के कुर्दों को जीवित जला डालना और उन्हें पूर्णतया नष्ट कर देना संभवत: इस्लाम और मुसलमानों के हित में था। इस्लाम के इतिहास में कभी किसी मुस्लिम धार्मिक नेता ने किसी मुस्लिम शासक के अत्याचारी निर्णय का विरोध नहीं किया है, ऐसा इसी मान्यता के कारण हुआ है कि अमीर की आज्ञा का पालन अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा पालन का ही एक आयाम है। हां, इसमें अपवाद केवल इतना है कि कोई मुस्लिम धार्मिक नेता तब किसी मुस्लिम शासक अर्थात अमीर के आदेश अथवा कार्यों का विरोध कर सकता है, जब वह अमीर उसके फिरके का न होकर किसी दूसरे इस्लामी फिरके का हो।

जब कोई मुसलमान मन से यह मानता हो कि अमीर की आज्ञा का पालन करना उसकी आवश्यकता है, तो वह उस अमीर के चंगुल से बाहर कैसे निकल सकता है भला? वह अपना बुद्धि-विवेक बंधक रखकर आज्ञाकारी रहने के इस आदेश का विरोध भला कैसे कर सकता है, क्योंकि अमीर के उचित-अनुचित सभी आदेशों का पालन करने का अर्थ है अपने रसूल के आदेशों का पालन करना और अपने अल्लाह के आदेशों का पालन करना? वह विरोध नहीं कर सकता है।

इस्लाम वास्तव में एक दमनकारी सत्ता है। यह अपने जन्म से ही ऐसा ही रहा है और आज भी ऐसा ही है।

क्या एक शासक और उसकी प्रजा के मध्य दासता का इससे भयानक और कुरूप संबंध कोई और हो सकता है कि जहाँ शासक प्रजा को कोड़े मारता है और उसकी संपत्ति हड़प लेता है, परंतु प्रजा को शासक के इस दमनकारी व अत्याचारी व्यवहार का विरोध करने का अधिकार नहीं है?

वह शासक अल्लाह के आदेश से काम करता है, और प्रजा को अल्लाह के उस आदेश का पालन करना ही होता है। मुस्लिम संसार में निरंकुश शासन संयुक्त राज्य अमरीका ने नहीं स्थापित किया है। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि अमरीका ने अनेकों दमनकारी मुस्लिम सत्ताओं का समर्थन किया है, उदाहरण के लिए सद्दाम हुसैन की अत्याचारी सत्ता का समर्थन पहले अमरीका द्वारा ही किया गया था, परंतु यह भी सच है कि इन इस्लामी दमनकारी सत्ताओं को अमरीका ने जन्म नहीं दिया था। सद्दाम हुसैन इस्लामी संस्कृति की कोख में पला था। उसे मुसलमान जनता द्वारा सत्ताधारी बनाया गया था, और मुसलमान अपने नेता मुस्लिम धार्मिक विधि एवं अपनी आवश्यकतानुसार बनाते हैं। विश्व में कहीं भी कोई शासक अपनी जनता को तब तक नहीं सता सकता है, जब तक कि वह जनता शैक्षणिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक रूप से स्वयं ही उत्पीड़ित होने को न तैयार हो। मुस्लिम घर में शिशु के साथ अत्याचार तभी आरंभ हो जाता है जब वह संसार में पहली बार आंख खोलता है। उसके मन-मस्तिष्क को परतंत्र बनाने प्रक्रिया जीवन भर चलती रहती है और उसे मानसिक रूप से इस स्तर तक परतंत्र बना दिया जाता है कि यदि कभी वह अपने शासक के सामने आ भी जाए, तो वह स्वयं को इस सीमा तक पराजित अनुभव करता है कि विरोध में चूं तक नहीं कर पाता है।

इस्लाम में संतान संपत्ति होती है, न कि दायित्व। इस्लाम अभिभावक और शिशु के मध्य संबंध को परिभाषित करते हुए इस बात पर बल देता है कि शिशु को आंखें मूंदकर अभिभावक की आज्ञा का पालन करना चाहिए।

किसी मुस्लिम बच्चे का अपने अब्बा से ये जो संबंध होता है, उसकी झलक उस बच्चे का अपने आसपास के दूसरे वयस्क व्यक्तियों से संबंध में दिखती है। वह अपने अब्बा के साथ के इस संबंध को घर से उठाकर सार्वजनिक स्थानों पर, मस्जिद में, अपने विद्यालय में और अपने समाज की अन्य सभी संस्थाओं में लेकर आता है, और इन स्थानों पर भी

ऐसा ही संबंध निर्मित करता है कि जहाँ वह अपने से अधिक आयु वाले व्यक्ति अथवा अपने से अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति की आज्ञा का पालन करना अपनी बाध्यता मानता है।

मुस्लिम बालक अथवा बालिका अपने अध्यापक, अपने पड़ोसी और अपने संबंधियों का दास होता है, और जब वह बड़ा हो जाता है तो वह अपने अधिकारी और अपने आसपास के अन्य प्रभुत्वसम्पन्न व्यक्तियों का दास अर्थात गुलाम होता है। जाने-अनजाने वह इस दासता को स्वीकार कर लेता है, क्योंकि ऐसा करना अल्लाह, उसके रसूल और उस पर शासन कर रहे लोगों के प्रति उसके आज्ञाकारी होने के समान होता है। मुस्लिम बालक घर से निकलकर विद्यालय पहुँचता है, और वहाँ भी उत्पीड़ित रहता है एवं विरोध करने अथवा "ना कहने" के मूल अधिकार से वंचित रहता है। विद्यालय में वह प्रतिदिन वही सुनता है, जो वह घर पर सुन रहा था: कि अल्लाह ने आदेश दिया है कि अभिभावकों और अमीरों की आज्ञा का पालन प्रत्येक दशा में किया जाना चाहिए, और वह ऐसा ही करता है, क्योंकि उसने घर पर यही सीखा होता है। उसमें आज्ञापालन का भाव इस प्रकार कूट-कूट कर दिया जाता है कि वह कभी उस आज्ञा की वैधता को चुनौती देना तो दूर, कभी ऐसा करने की कल्पना करने का साहस तक न कर सके। इस्लाम अपने को संतानों पर पिताओं के उत्तरदायित्व से तभी जोड़ता है, जब यह मजहबी कर्तव्य व दायित्व से जुड़ा हो। मुहम्मद ने एक हदीस में कहा: "अपनी संतानों को सात वर्ष की आयु से ही नमाज पढ़ना सिखाओ और यदि वे दस वर्ष की आयु तक आते-आते नमाज न पढ़ें, तो उनकी पिटाई करो।"

यहाँ एक बार पुन: हम मनुष्य और अल्लाह के मध्य अत्याचारी संबंध देख सकते हैं: यदि मनुष्य अपनी इच्छा से नमाज न पढ़े, तो उसे बलपूर्वक नमाज पढ़वाओ! यहाँ अमरीका में मेरा एक ईरानी मित्र है। वह गंभीर अवसाद व अनेक असाध्य मनोवैज्ञानिक समस्याओं से जूझ रहा है। वर्तमान में उपलब्ध किसी भी उपचार से उसकी समस्या का समाधान नहीं

हो रहा है। एक बार वह अपनी समस्याओं पर मुझसे बात कर रहा था, तो उसने कहा: "मेरे बाल्यकाल की घटनाएं आज भी मेरा पीछा करती हैं। जब मैं सात वर्ष का था, तो अब्बा फज़र की नमाज के लिए प्रात: पांच बजे ही जगा दिया करते थे। हमारे घर में स्नानगृह नहीं था, और वो मुझे बलपूर्वक धकियाते हुए लगभग शून्य डिग्री सेल्सियस तापमान में हांड़ कंपा देने वाली ठंड में घर से बाहर वजू करने के लिए भेज दिया करते थे। मुझे ध्यान आता है कि एक बार मैंने बावड़ी से एक बाल्टी पानी निकाला, अपने हाथ उस बाल्टी में डालकर निकाल लिए और अब्बा को यह विश्वास दिलाने के लिए घर के भीतर दौड़कर गया कि मैंने निर्धारित ढंग से वजू किया है। पर वो झंरोखे से मुझे देख रहे थे। उन्होंने अपनी चमड़े की बेल्ट निकाली और निर्ममता से मुझे पीटने लगे, मैं चीखता रहा और अम्मी दूर से ही देखती रहीं, रोती रहीं।"

मेरा वह ईरानी मित्र कहने लगा: "मैं जितनी घृणा अपने अब्बा से करता हूँ, उससे कहीं अधिक घृणा अल्लाह से करता हूँ। मैं और अब्बा दोनों ही अल्लाह नामक उस अपराधी के सताए हुए हैं।"

सद्दाम हुसैन भी उसी अपराधी अल्लाह का सताया हुआ था।

क्या सद्दाम हुसैन यह नहीं मानता था कि वह धरती पर अल्लाह और उसके रसूल का प्रतिनिधित्व करता है? क्या वह यह नहीं मानता था कि कुर्दों और शियाओं को कुचल दिया जाना चाहिए, क्योंकि अल्लाह ने उन्हें अपने अमीर अर्थात शासक की आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया था, पर उन्होंने उसकी आज्ञा नहीं मानी थी? तो हमने उस "अल्लाह" से पहले सद्दाम हुसैन पर अभियोग क्यों चलाया? क्यों सद्दाम हुसैन कारागार में सड़ता रहा, जबकि वह "अल्लाह" हमारे गाँव की उस पहाड़ी पर सुख-चैन से बैठकर दूसरे आखेट की घात में बैठा है? मुसलमानों द्वारा संयुक्त राज्य अमरीका पर आरोप लगाया जाता है कि वह उनके देशों में आतंकवाद का समर्थन करता है और अपनी स्वार्थ सिद्धि एवं अपने अहंकार की तुष्टि के लिए अमरीका ने सद्दाम हुसैन की सत्ता को तहस-नहस करने का निर्णय

किया। परंतु उसकी सत्ता चले जाने के पश्चात् भी उसका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ था। ईराकी जनता अभी भी उस "अल्लाह" के दु:स्वप्न से भयभीत हो जाती है, जो उसे अपने अमीरों की आज्ञा का पालन करने का आदेश देता है। अमरीका का आंकलन ठीक नहीं रहा, और अब यह प्रश्न उठता है: क्या अमरीका इस राजनीतिक स्थिति का समाधान कर सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर केवल यह नहीं है कि अमरीका यह कर सकता है, अपितु उसे यह करना ही चाहिए! मैं यहाँ राजनीतिक अथवा सैन्य पक्ष की बात नहीं कर रही हूँ, क्योंकि मैं न तो कोई राजनीतिज्ञ हूँ और न ही सैन्य बाध्यताओं के विषय में बहुत कुछ नहीं जानती हूँ। किंतु मेरा स्पष्ट मत है कि संतुलन स्थापित करना अमरीका के हित में है, क्योंकि जहाँ तक व्यवहारमूलक विज्ञान और मानसिक स्वास्थ्य का संबंध है तो आज के समय में तो यह समय की मांग है। यदि अमरीका अरब देशों में निरंकुश तंत्र के समर्थन के अपने कार्यों में सुधार के लिए अरब देशों में लोकतंत्र के प्रसार में सहायता के लिए ईराक के अपने युद्ध के उपयोग की मंशा होती, तो हमें निम्नलिखित प्रश्न पूछना चाहिए: क्या हम उन लोगों से लोकतंत्र लाने की आशा कर सकते हैं, जो विगत चौदह सौ वर्षों से यह मानते चले आ रहे हैं कि अल्लाह के आदेश से अपने अमीरों की आज्ञा मानना अनिवार्य है, भले ही वह अमीर निरंतर उनके अधिकारों का हनन करता रहे? हम ईराक में जो कुछ भी होता हुआ देख रहे हैं, उसी में इस प्रश्न का उत्तर छिपा हुआ है।

इस समस्या में किसी लोकतांत्रिक नेता का हाथ नहीं है। यह एक ऐसे राष्ट्र और मजहबी नियम की समस्या है, जिसके आदेश और शिक्षाएं मस्तिष्क की शिराओं में घुस गई हैं और उस राष्ट्र की जनता की आनुवंशिकी में अंकित हो चुकी हैं। यहाँ एक और प्रश्न खड़ा होता है: समाधान क्या है, और अमरीका के पास ईराक युद्ध में विकल्प क्या थे? दो टूक में इसका सीधा उत्तर है: इसके पास एक ही विकल्प है कि इस राक्षस (अल्लाह) को सत्ताविहीन कर दे! मजहबी नेताओं के वर्ग को उनके राक्षस से मुक्त करा दे, उस मजहबी वर्ग के शासक को मुक्त कर दे, जनता को उनके शासक से

मुक्त करा दे, औरतों को मर्दों के चंगुल से मुक्त करा दे, गुलामों को उनके मालिकों से मुक्त करा दे- कुल मिलाकर यह कि जनता को भय से मुक्त करा दे! एक राक्षस की इबादत करने वाले व्यक्ति के पास स्वतंत्रता कहाँ होगी भला? यदि संयुक्त राज्य अमरीका मुसलमानों को उनके शासकों की निरंकुशता से मुक्त कराना चाहता है, तो उसे सबसे पहले उन्हें उनके राक्षस की निरंकुशता से मुक्त कराने के लिए आगे बढ़ना होगा।

किसी देश की सेना और नौसैनिक बेड़ा ही मुसलमानों को उनके भय से मुक्त करा लेगा ऐसा नहीं है, इसके लिए जिसकी आवश्यकता है, वह से इसके आगे जाकर कुछ और है। इसके लिए व्यापक स्तर पर चिकित्सीय व वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं और व्यवहारवादी विज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान व समाजशास्त्र के विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ेगी। डॉ. वैन डायर ओर डॉ. फिल मैक्ग्रा आदि विख्यात मनोवैज्ञानिकों से लेकर महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में कार्यरत शोधार्थियों को लगाना पड़ेगा कि वे मुसलमानों को उनके राक्षस से छुटकारा दिलाने के उपायों को ढूंढ़ने पर काम करें। व्यवहार संबंधी विज्ञान व मनोविज्ञान के इन विशेषज्ञों को अपना राजनीतिक औचित्य किनारे रखकर वैज्ञानिक व नैतिक सटीकता के साथ काम करना होगा।

अमरीका में अनेक मनोवैज्ञानिकों व व्यवहारवादी विज्ञान के विशेषज्ञों ने अध्ययन किया है कि टेलीविजन पर दिखाई जाने वाली हिंसा का शिशुओं पर क्या प्रभाव पड़ता है और इन लोगों ने यह पता लगाया है कि उस हिंसा और शिशुओं के व्यवहार के मध्य क्या संबंध है। यद्यपि इनमें से अनेक विशेषज्ञों ने अपने अध्ययन की जो विषयवस्तु चुनी है, उसे ध्यान से देखने पर मैंने पाया है कि ये लोग जिस गंभीरता से टीवी पर हिंसा के दृश्यों को देखकर होने वाले मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभावों का अध्ययन करते हैं, उतनी गंभीरता से यह पता लगाने में नहीं दिखाते हैं कि मनुष्य हिंसक सामग्री पढ़े तो उस पर क्या मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव होता है।

किसी व्यक्ति की धारणा बनाने में टीवी की क्या भूमिका होती है, इस पर अतीत में बहुत कुछ बताया गया है और भविष्य में भी बहुत कुछ बताया जाएगा, परंतु मेरा मानना है कि धारणा बनाने में पुस्तकों ने जो भूमिका निभाई है, अथवा भविष्य में जो भूमिका निभाएंगी, उसकी तुलना में टीवी का प्रभाव कुछ भी नहीं है। और जब वह पुस्तक मजहबी हो, और जब इसे पढ़कर चौंधियाए लोगों के ज्ञान का एकमात्र स्रोत हो, तो यह बात और सच दिखने लगती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अमरीका अथवा किसी अन्य पश्चिमी समाज में शिशुओं में हिंसा अत्यंत खतरनाक परिघटना है और इस पर गंभीर अध्ययन व चिंतन होना चाहिए। किंतु जब इस्लामी आतंकवाद से उत्पन्न खतरों से इसकी तुलना करते हैं, तो पश्चिमी समाज की यह हिंसा बहुत छोटी लगने लगती है। अमरीका और समस्त सभ्य संसार को इस्लामी आतंकवाद की ओर गंभीरता से ध्यान देकर इसे उत्पन्न करने वाले कारकों व कारणों पर अध्ययन करना होगा और इससे निपटने के उपाय ढूंढ़ने होंगे, जिससे कि वे न केवल अपने को खतरनाक इस्लामी आतंकवाद से सुरक्षित कर सकें, अपितु मुसलमानों को भी इससे बचा सकें।

अरब की विरासत को अरब की पुस्तकों से जानना होगा। मैंने "अरब" विरासत कहा है, न कि "मुस्लिम" विरासत, और ऐसा इसलिए कहा है, क्योंकि अध्ययनकर्ता इस्लाम के प्राथमिक स्रोत को जान सकें। क्योंकि, यदि कोई शोधार्थी इस्लाम को उन इस्लामी पुस्तकों से समझना चाहेगा, जो अ-अरबी (गैर-अरबी) भाषा में लिखे गए हैं, तो वह सत्य नहीं जान पाएगा। यद्यपि मैंने इस्लाम को जानने के लिए कोई अ-अरबी इस्लामी पुस्तक नहीं पढ़ी है, परंतु अनेक अ-अरबी मुसलमानों को जितना मैं जानती हूँ और कुरआन के अंग्रेजी अनुवाद को जितना पढ़ा है, उसके आधार पर मैं कह सकती हूँ कि अ-अरबी भाषा की पुस्तकों को पढ़कर इस्लाम की सच्चाई ठीक से नहीं जानी जा सकती है। अमरीका में रहते हुए मैं अनेक अ-अरबी मुसलमानों से व्यावसायिक व सामाजिक संपर्क में आई हूँ और उनके संपर्क में रहते हुए मैंने इस्लाम को लेकर उनकी समझ और इस्लामी

शिक्षाओं के उनके ज्ञान को गहराई से समझा है। मुझे यह स्पष्ट समझ आ गया है कि अरबी और अ-अरबी मुसलमानों में बड़ी भिन्नता है।

कुरआन एक अरबी पुस्तक है, और इस्लाम इसका अनुवाद किसी और भाषा में करने को वर्जित मानता है। इसका तात्पर्य यह है कि अ-अरबी मुसलमान अरबी भाषा को समझने का प्रयास किए बिना इस अरबी पुस्तक को पढ़ता है। मुसलमान कुरआन की आयतों का अर्थ समझे बिना ही उसे पढ़ते हैं; जहाँ तक इन आयतों का संबंध है, तो ये अस्पष्ट ध्वनि वाली होती हैं। कहीं-कहीं वे अरबी कुरआन को अपनी भाषा में लिप्यांतिरत करके पढ़ते हैं, वैसे ही जैसे कि कोई अमरीकन व्यक्ति मदरसा शब्द को लैटिन अक्षरों में पढ़ता है, परंतु उसे कुछ अनुमान नहीं होता है कि इस शब्द का अर्थ क्या है। यद्यपि कुरआन का अन्य भाषाओं में अनुवाद किया गया है, किंतु ये अनुवाद पूर्णत: विश्वसनीय नहीं होते हैं, और जैसा कि मैंने ऊपर उल्लेख किया है कि इस्लाम कुरआन के अनुवाद की अनुमति नहीं देता है। इस निषेध के कारण, अनुवादक अपने अनुवाद कार्य को "कुरआन के अर्थ का अंग्रेजी अनुवाद" कहते हैं। ऐसे में स्वाभाविक है कि ये लोग अनुवाद में कुरआन के अर्थ को वास्तविक ढंग से न देकर राजनीतिक सुविधानुसार देते हैं।

जब आप कुरआन अंग्रेजी या अन्य किसी भाषा में पढ़ते हैं, तो आप शब्दश: अनुवाद नहीं पढ़ रहे होते हैं, अपितु आप वह पढ़ रहे होते हैं, जो अनुवादक आपको पढ़ाना चाहता है। मुहम्मद के जीवन, आचरण और विचार से संबंधित सभी अरबी ग्रंथों का अनुवाद अ-अरबी भाषाओं में नहीं हुआ है। जिन ग्रंथों का अनुवाद किया भी गया है, वो मूल ग्रंथ के तत्वों से भिन्न रूप में सामने आते हैं। ये अनुवाद मूल तत्वों में कांट-छांट कर प्रस्तुत किया गए हैं, जिससे कि अनुवादक वही दिखा सके जो उसकी दृष्टि में नैतिक रूप से उपयुक्त व स्वीकार्य हो। मैं एक बार तीन अ-अरबी महिला चिकित्सकों के संपर्क में आई। कार्य के संबंध में मैं उनके साथ घंटों बिताती थी, और प्राय: उनके साथ इस्लाम और इसकी शिक्षाओं को लेकर परिचर्चा

होती थी। परिचर्चा में उनसे मुझे जो जानकारियां मिलतीं, वह मुझे अचंभित कर देती थीं।

इस्लामी शिक्षाओं को लेकर उनका ज्ञान न केवल सीमित था; अपितु मैं जो जानती थी, उससे अत्यंत भिन्न था। वो मुझसे कहीं अधिक उन्मादी मजहबी वातावरण में पली-बढ़ी थीं, मेरा बाल्यकाल उनके जीवन से भिन्न प्रतीत होता था। अ-अरबी मुसलमान अरबी में नमाज पढ़ते हैं, और अर्थ को समझे बिना इसे पढ़ते रहते हैं। वे रट्टू तोते की भाँति कलमा दोहराते जाते हैं। वो कुरआन पढ़ते समय यही करते हैं। मुझे तनिक भी संदेह नहीं है कि अरब संसार में रह रहे बहुत से ईसाई इस्लाम के विषय में उन मुसलमानों से अधिक जानते हैं, जो अ-अरबी हैं। इसके अतिरिक्त अ-अरबी मुसलमानों की तुलना में अरब देशों में रह रहे ईसाई मुस्लिम संस्कृति से व्यवहारिक रूप से और बौद्धिक रूप से कहीं अधिक प्रभावित होते हैं।

इससे बहुत सीमा तक समझा जा सकता है कि इस्लामी आतंकवाद अरब की मुख्य भूमि का उत्पाद क्यों है। अरबी मुस्लिमों में कुरआन और रसूल मुहम्मद के जीवन व कथन की गहरी समझ होती है और वे मुहम्मद के विषय में लिखी गई बातों को अच्छे से समझते हैं। परिणामस्वरूप, किसी अ-अरबी की तुलना में वे इस्लामी शिक्षाओं को अपने व्यवहार में उतारने के अधिक निकट होते हैं। जब कोई अरब भाषी मुसलमान नमाज पढ़ता है, तो वह नमाज में कहे जाने वाले शब्दों के अभिप्राय को समझता है, जबकि अ-अरबी मुसलमान उन शब्दों का अभिप्राय समझे बिना ही दोहराता रहता है।

मुसलमान दिन में पांच बार नमाज पढ़ता है, और प्रत्येक बार वह कुरआन की पहली आयत फातिहा बार-बार दोहराता है। इस आयत में ईसाइयों को कहा गया है कि "वो पतित हो गए हैं" और यहूदियों को कहा गया है कि "यही हैं जिन पर तेरा (अर्थात अल्लाह का) कोप है।" हम देखते हैं कि मुसलमान एक ही नमाज में ईसाइयों व यहूदियों को कितनी बार कोसते हैं, और वे दिन में पांच बार नमाज पढ़ते हुए उन्हें ऐसे ही

कोसते ही रहते हैं। अ-अरबी मुसलमानों को यह भान नहीं होता है कि वे नमाज में ईसाइयों व यहूदियों को बुरा-भला कह रहे हैं, क्योंकि वे नमाज में क्या कह रहे हैं, यह समझे बिना अरबी में नमाज पढ़ते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वो लोग नमाज पढ़ते समय मन में उतनी घृणा नहीं पाल रहे होते हैं, जितनी घृणा वह अरबी मुसलमान एकत्र कर रहा होता है जो यह जानता है कि वह नमाज में क्या कह रहा है।

मैं अमरीका में जिन अ-अरबी मुसलमानों से मिली हूँ, वे इस आयत का अर्थ नहीं जानते थे, जबकि वे प्रतिदिन नमाज पढ़ते समय दर्जनों बार इस आयत को दोहराते हैं। यद्यपि, आप यदि प्राथमिक कक्षा के किसी अरबी बालक से भी पूछेंगे, तो वह तपाक से इस आयत का अर्थ बताते हुए कहेगा कि ईसाई वो होता है जो पतित हो गया है और यहूदी वो होता है जिस पर अल्लाह का कोप होता है। आतंकवाद का जन्म अरब की धरती पर हुआ था और अरबों की वैचारिक व वित्तीय सहायता से इसका प्रसार सऊदी अरब से बाहर दूसरे देशों में भी हुआ। इस्लामी आतंकवाद का नेतृत्व सऊदी अरब करता है, और जो अ-अरबी इस आतंकवाद के नेतृत्व की इच्छा पाले हुए हैं, वे अरब द्वारा प्रशिक्षित किए गए हैं।

अफगानियों में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है, "हम शांतिप्रिय तभी तक हैं, जब तक कि हम युद्धरत हैं।" अफगानी समाज की कबीलाई प्रकृति के कारण अफगानियों में रक्तपात और कलह की यह प्रवृत्ति गहरी बैठी है। वैसे अफगानी तब तक वैश्विक इस्लामी आतंकवादी गतिविधियों के केंद्र नहीं बने थे, जब तक तक कि वे अरब मुजाहिद्दीनों के साथ विनाशकारी संपर्क में नहीं आए थे। अरब मुजाहिद्दीन ही आतंकवाद के वो स्रोत हैं, जो अपने साथ आतंकवादी विचार और अरबी धन लेकर आए। जब मैंने "आज के इस्लाम का संकट" नामक पुस्तक की लेखिका इरशाद मांझी से इस विषय पर चर्चा की, तो भारतीय मूल की इस लेखिका को अच्छा नहीं लगा, और कुढ़न में वो बोलीं, "अब क्या मैं आपकी यह बात मानूं कि अरबी मुसलमानों की तुलना में अ-अरबी मुसलमान कम इस्लामी होता है?"

मैंने तुरंत कहा, "नहीं, ऐसा नहीं है। हां, यह अवश्य है कि अ-अरबी-मुसलमान इस्लामी आतंकवाद से उतना विकृत नहीं हुए हैं।"

यदि दीन और मजहबी आस्था से तुलना की जाए, तो अ-अरबी मुसलमान अरबी मुसलमानों से तनिक भी कम नहीं दिखेंगे, परंतु यदि हम इस्लामी शिक्षाओं से होने वाली मानसिक व मनोवैज्ञानिक विकृति को आधार मानकर तुलना करेंगे, तो निश्चित ही पाएंगे कि अरबी मुसलमानों की तुलना में अ-अरबी मुसलमान इस्लाम का पालन कम करता है। क्योंकि, सामान्यत:, अ-अरबी मुसलमान इस्लाम की इन हिंसक शिक्षाओं के दलदल में उतना नहीं फंसा होता है, जितना कि एक अरबी मुसलमान इन्हें आत्मसात् किए रहता है। मैं इस तथ्य को अस्वीकार करने का प्रयास नहीं कर रही हूँ कि बहुत से ऐसे अ-अरबी मुसलमान हैं, जो इस्लाम की शिक्षाओं को भली-भाँति जानते हैं और बहुत से अरबी मुसलमानों की तुलना में कहीं अधिक गंभीरता व उग्रता से उन शिक्षाओं को अपने व्यवहार में उतारते हैं, मैं तो सीधा-सीधा केवल इतना ही कहने का प्रयास कर रही हूँ कि अधिकांशत: यही पाया जाता है कि अ-अरबी मुसलमानों की तुलना में अरबी मुसलमानों के मन में इस्लामी शिक्षा कहीं अधिक गहराई से बैठी होती है। इस्लामी आतंकवाद से निपटने के लिए रणनीति बनाते समय यह तथ्य ध्यान में रखा जाना चाहिए। वैसे तो अरब के मुसलमान विश्व की मुस्लिम जनसंख्या का 20 प्रतिशत भी नहीं है, किंतु इस्लाम में सुधार अरबी मुसलमानों से ही संभव हो सकता है। अ-अरबी मुसलमानों में सुधार के कार्य की तुलना में अरबी इस्लाम में सुधार करना कहीं अधिक कठिन कार्य है, परंतु यह किया जाना अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि अरबी इस्लाम ही मूल इस्लामी जनसंख्या के स्रोत हैं। जैसा कि अरब द्वारा वित्त-पोषित अरबी-कृत इस्लाम ने अफगानिस्तान में जो कुछ किया, वैसा कुछ वह पूरे विश्व में करे, उससे पूर्व ही सुधार का यह कार्य करना होगा।

अब मैं पुन: पुराने बिंदु पर लौटती हूँ: हिंसा और पठन सामग्री के मध्य संबंध का पता लगाने के लिए व्यवहारवादी मनोविज्ञान की

प्रयोगशालाओं में आतंकवाद का अध्ययन करना समय की आवश्यकता है। अरब से आरंभ मुस्लिम संस्कृति ने प्रत्येक स्तर पर हिंसा को विधिक मान्यता व स्वीकार्यता दी है। भाषा वह साधन होती है, जिससे संस्कृति का निर्माण होता है, और किसी समुदाय के सदस्य एक भाषाई उत्पाद होते हैं तथा इस प्रकार वे एक सांस्कृतिक उत्पाद भी होते हैं।

मैं भाषा विज्ञान की विशेषज्ञ नहीं हूँ, किंतु मेरा मानना है कि विश्व की प्रत्येक भाषा में ऐसे भाव व शब्दावलियां होती हैं, जिससे कि उसको बोलने वाले व्यक्ति एक-दूसरे की बात समझ सकें और अपनी बात एक-दूसरे को समझा सकें। प्रत्येक भाषा में सकारात्मक व नकारात्मक दोनों भाव होते हैं। मुस्लिम संस्कृति भाषा का प्रयोग जिस ढंग से करती है, उसमें नकारात्मक भाव अधिक होता है, और इस प्रकार वह लोगों में नकारात्मक व्यवहार उत्पन्न करती है। जब भी कोई व्यक्ति कुरआन अथवा रसूल के कथनों को भाषाई शोधार्थी की दृष्टि से पढ़ता है, तो उसे यह स्पष्ट रूप से समझ में आता है।

आइए, कुरआन का कोई अध्याय लें, पढ़ें और इसके वाक्यांशों की छान-फटक करें। यदि हम सबसे लंबे अध्याय "बकरा" (2:1-286) देखें, तो क्या मिलेगा? "वे काफिर थे... वे विश्वास नहीं करते हैं... घोर यातना... उन्होंने अल्लाह से छल किया... उनके मन में रोग (मैल) है... वे मिथ्या (झूठ) बोलते हैं... वे भ्रष्टाचारी हैं... वही हैं जो मूर्ख हैं... उनके अत्याचार में... उन्हें ही सीधा पथ नहीं दिखाया गया है... अल्लाह ने उनका प्रकाश छीन लिया है... गूंगे, बहरे और अंधे... उनकी दृष्टि छीन लिया है... जहन्नुम की आग से सावधान... अल्लाह से किया गया समझौता तोड़ा... अल्लाह में विश्वास करने के अस्वीकार किया... रक्तपात करेंगे... शैतान ने उनको गिरा दिया... आग में जलना उनकी नियति... मेरा भय रखो... अल्लाह की ओर से बड़ी परीक्षा... हमने फिरऔन के लोगों को डुबो दिया... तुम अनुचित कर रहे हो... तुम पर बिजली आ गिरी... अल्लाह का कोप... तुम लोग उनमें से ही हो गए होते जो गंवाए... तुम्हारे हृदय चट्टान

की भाँति कठोर हो गए.... उन पर संताप हो... अपमानजनक दंड... तुम अनुचित कार्य करने वाले हो..." आदि। इस अध्याय के कम से कम 50 पृष्ठों में हत्या और इससे संबंधित शब्द, कम से कम, 25 बार आया है।

यदि हम कुरआन के सकारात्मक तत्व को एक ओर रखकर उन तत्वों पर ध्यान दें जिनमें नकारात्मक अवधारणाएं हैं, तो इसमें वही भाषाई शैली बचेंगी जिनका इस्लामी शिक्षाओं में प्रभुत्व है और जिसने इसके सर्वाधिक सकारात्मक पक्षों में भी हिंसा-ग्रस्त नकारात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में योगदान दिया है। यदि व्यवहारवादी विज्ञान का कोई विशेषज्ञ अरब मुसलमानों के दैनंदिन संवाद का अध्ययन करे, तो वह यह देखकर अचंभित हो उठेगा कि उनके संवाद में कितनी अधिक नकारात्मक शब्दावलियों का प्रयोग होता है। जब कोई अरब मुस्लिम आपसे यह कहना चाहे कि आज कितना अच्छा दिन है, तो वह कहेगा: "कल का मौसम आज से बुरा था।" तनिक सभ्य शब्दों में कहें, तो हमें यह कहना पड़ेगा कि कुरआन में ऐसे सकारात्मक शब्दों की कमी है, जो कानों को अच्छा लगे। उदाहरण के लिए, उपरोक्त उल्लिखित अध्याय की यह आयत कहती है: "उनके मन में रोग है, जिसे अल्लाह ने और बढ़ा दिया है (2:10)।" कोई मुसलमान यह कहकर मेरी टिप्पणियों पर आपत्ति कर सकता है: "पर इस आयत में अल्लाह मिथ्या वचन बोलने पर दंड पर बल देकर सत्य वाचन का महत्व दर्शाने का प्रयास कर रहा है।" उनको मेरा उत्तर होगा: "क्या अल्लाह सत्य वाचन का महत्व प्रकट करने के लिए सकारात्मक भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता है?"

इस्लाम में ब्याज (सूद) लेना वर्जित (हराम) है। मुहम्मद की जिस हदीस में इसे वर्जित बताया गया है, उसका परीक्षण करें तो क्या मिलता है? "जो कोई भी सूदखोरी में लिप्त है, वह वैसा ही है कि जैसे वह अपनी अम्मी के साथ यौनाचार कर रहा है।" "जो कोई भी सूदखोरी में लिप्त है, वह वैसा ही है कि तैतीस बार व्यभिचार किया हो।" "जो कोई भी सूदखोरी में लिप्त है, वह वैसा ही है कि जैसे कि सांप निगला हो।" "जो कोई भी सूदखोरी में

लिप्त है, उसके साथ कयामत के दिन एक दलाल समझकर व्यवहार किया जाएगा और वह शैतान की भाँति घृणित बनकर भटकेगा।" मैं यहाँ प्रयुक्त भाषा को देखती हूँ और अपने आप से पूछती हूँ कि क्या मनोवैज्ञानिक रूप से, नैतिक रूप से और मानसिक रूप से स्वस्थ कोई व्यक्ति ऐसे शब्दों और भावों का प्रयोग कर सकता है? क्या मात्र यह संदेश देने के लिए कि सूदखोरी वर्जित है, "अपनी अम्मी के साथ संभोग करता है", "व्यभिचार करता है", सांप निगलता है" और "एक दलाल जो शैतान की भाँति घृणित होकर भटकेगा" आदि शब्दावली का प्रयोग करना आवश्यक था? मुस्लिम जो पढ़ते हैं, उसके अपरिवर्तनीय उत्पाद बनते हैं। मुसलमान नकारात्मक होते हैं और जीवन के प्रत्येक पक्ष में उनकी नकारात्मकता झलकती है।

मैं अम्मान से न्यूयार्क लौट रही थी, तो विमान में मेरे से लगी सीट पर एक अरब महिला बैठी थी। समय बिताने के लिए कुछ नहीं सूझा, तो उस अरबी महिला से मैंने एक पुस्तक ली और उसके पृष्ठ पलटने लगी। उस पुस्तक का शीर्षक था "अरब के प्रेमी" और उसमें मुस्लिम युग की पहली सदियों के अरबों के प्रेम व अनुराग की कहानियां थीं। यह बड़े-बड़े मुद्रण वाली मध्यम आकार की पुस्तक थी। मुझे लगा कि इसमें सुंदर भाषा में उत्कृष्ट कहानियां होंगी, जिसे पढ़ने में आनंद आएगा। किंतु उसमें बार-बार यह वाक्यांश "तब उसने तलवार निकाली और अपने प्रतिद्वंद्वी का सिर काट दिया" देखकर मेरा माथा ठनका, और मैं यह देखकर हतप्रभ हो गई कि पुस्तक के पहले 60 पृष्ठों में यह वाक्यांश 25 बार आया था। यदि प्रेम और अनुराग की पुस्तक में मुसलमान इस प्रकार बात करते हैं, तो कल्पना कीजिए कि जब वे जिहाद, अल्लाह के दीन की रक्षा करने और उसके प्रभुत्व को बनाए रखने की बात करेंगे तो कैसी भाषा का उपयोग करेंगे! अरब मुस्लिम संसार के प्रत्येक पक्ष में हिंसा और कलह की भाषा प्रवेश कर गई है। सद्दाम हुसैन के ईराक में प्राथमिक विद्यालय के कक्षा तीन की गणित की पुस्तक में निम्नलिखित प्रश्न थे: "हमारे साहसी सैनिकों ने शत्रु ईरानी सेना के 1500 सैनिकों को मार डाला, 1800 सैनिकों को घायल कर

दिया और 150 सैनिकों को बंदी बना लिया। शत्रु सेना को मृतक, घायल और बंदी बनाए गए कुल कितने सैनिकों की हानि हुई?" क्या तीसरी कक्षा के बालक-बालिकाओं को मृत शरीरों की गणना किए बिना गणित नहीं पढ़ाया जा सकता है?

1973 के अरब-इजराइल युद्ध में सीरियाई सेना से साथ-साथ मोरक्को की एक ईकाई भी युद्ध कर रही थी। युद्ध समाप्त होने के पश्चात्, मोरक्को के सैनिकों की वीरगाथाओं वाली अनेक कहानियां सुनाई जाने लगीं; यद्यपि ये कहानियां निराधार थीं, और केवल इसलिए गढ़ी गई थीं कि युद्ध में मोरक्को के साथ का बखान किया जा सके। सभी कक्षाओं में अध्यापक विद्यार्थियों के समक्ष उनकी वीरगाथा सुनाते। मुझे स्मरण होता है कि कैसे हमारे मजहबी शिक्षा के अध्यापक ने उस सैन्य ईकाई की वीरताभरी कथाओं का वर्णन किया था और कैसे वो कहते थे कि उन्होंने इस ईकाई के सदस्य को अपनी जेब में शत्रु की उंगलियां, कान, जीभ और आंखें रखी थीं, जो उसने युद्ध में मारे गए इजराइली सैनिक के शरीर से काट लिया था। अध्यापक हमारे सामने जब इन "साहसपूर्ण कार्यों" का बखान करते, तो हम विद्यार्थीगण आनंदविभोर होकर तालियां पीटने लगते थे।

कुछ लोग आरोप लगाते हैं कि हालीवुड हमारी संस्कृति में अधिकाधिक हिंसा ला रहा है। पर मुझे तो लगता है कि मुस्लिम अरब विरासत में जितनी हिंसा भरी हुई है, उसकी तुलना हिंसा के उन दृश्यों से की जाए जो हालीवुड केंद्रित अमरीकी फिल्म उद्योग ने, अपने पूरे इतिहास में, निर्मित किए हैं, तो दिखेगा कि अमरीकी फिल्मों की हिंसा के दृश्य उस अरबी हिंसा के आगे कहीं नहीं ठहरते हैं। जब कोई शिशु टीवी पर कोई हिंसक फिल्म देखता है और जब कोई शिशु अपने अध्यापक के मुंह से हिंसा का बखान सुनता है अथवा अपने आसपास के जीवन में प्रतिदिन होने वाली हिंसा को प्रत्यक्ष देखता है, तो इन दोनों स्थितियों में अंतर होता है। मुस्लिम समाज में जीवन के प्रत्येक पक्ष में हिंसा की संस्कृति और

नकारात्मक शब्दों व हिंसक भावों से भरी भाषा में गोता लगाने के नकारात्मक दुष्प्रभाव की झलक मिलती है।

इस्लामी संस्कृति हिंसा को आमंत्रित करती है। अधिकांश प्रकरणों में इस्लामी संस्कृति खुलकर हिंसा के लिए उकसाती है, और अनेक बार यह परोक्ष ढंग से ऐसा करती है।

मैंने विस्तार से बताया है कि इस्लाम के जन्म के समय की पृष्ठभूमि क्या थी: अति अल्प संसाधनों वाला मरुस्थलीय सूखा वातावरण, अज्ञात भय में भयभीत नित्य का जीवन, उत्तरजीविता के साधन के रूप में आक्रमण पर निर्भर निवासी। उस वातावरण में प्रचलित दर्शन यह था कि "मार दो या मार डाले जाओ"। इस्लाम ने उस वातावरण की भाषा को अंगीकार कर लिया, उसकी नकारात्मकता व हिंसा को हथिया लिया और आगे चलकर उन्हें विधिक व धार्मिक स्वीकार्यता दे दी।

अल्लाह, जैसा कि कुरआन में वर्णित है, उन्हीं व्यक्तियों के विशेषण को धारण करता है जो उस अरबी वातावरण से उत्पन्न हुए थे। वह अत्यंत कठोर, हिंसक मनोवृत्ति वाला, दूरदर्शिता के अभाव वाला और स्वेच्छाचारी है, तथा वह अवज्ञा किए जाने अथवा चुनौती दिए जाने से भयभीत रहता है। उसका भय उसके आदेशों में झलकता है, और वह निर्दयता से प्रहार करता है। जो उसकी बात नहीं मानते हैं, उनसे वह दुष्टता से प्रतिशोध लेता है और अपने अनुयायियों का आह्वान करता है कि वे उसकी रक्षा करें, मानो कि वह स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ है। जो उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, उन्हें नदियों के प्रवाह से युक्त और फलों से परिपूर्ण जन्नत का पुरस्कार देने का वचन देता है, और जो उसका विरोध करते हैं, उन्हें ऐसे जहन्नुम में भेजने की धमकी देता है जहाँ आग में उनकी चमड़ी उधेड़ी जाएगी और जब चमड़ी जल जाएगी तो पुन: नई चमड़ी लगा दी जाएगी और जलाया जाएगा, और अनंत काल तक यही किया जाता रहेगा। कुरआन कहती है: "जो हमारी आयतों को अस्वीकार करेगा, उसे हम जहन्नुम की आग में जलाएंगे (4:56)।" एक बार मैंने देखा कि कैसे

एक मुस्लिम शेख एक व्यक्ति से इस आयत की व्याख्या कर रहा था, वह कह रहा था: "जब वे तुमसे पहाड़ों के संबंध में प्रश्न कर रहे हैं। उनसे कह दो: 'मेरा अल्लाह उन्हें कुचल देगा।'(20:105)।" जब मैंने उस शेख को यह बताते सुना कि अल्लाह नष्ट करने और विनाश करने में कितना आगे है, तो अपना माथा पीट लिया। मुझे ऐसा लगा कि मानो अल्लाह वैसा ही बोल रहा है, जैसा कि ईराक में सद्दाम हुसैन कुर्दों व शियाओं का विनाश करते समय बोल रहा था।

कुरआन "बल" और "शक्ति" की अवधारणाओं में अंतर नहीं करती है। यह इन दोनों में विचित्र ढंग से भ्रम उत्पन्न करती है, और अल्लाह अपनी ताकत बल प्रयोग करने योग्यता के रूप में प्रकट करता है। परंतु, इन दोनों अवधारणाओं में वास्तविक अंतर क्या है? किसी व्यक्ति के पास जब शक्ति होती है, तो वह आवश्यकता पड़ने पर कोई कार्य परिस्थितियों के अनुकूल शांतिपूर्ण ढंग से कर सकता है। वह बल प्रयोग का आश्रय तभी लेगा, जब वह शक्तिहीन होगा। दूसरे शब्दों में कहें, तो सत्ता शांति का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि बल हिंसा दर्शाता है।

अरब जिस वातावरण में रहते थे, उसने इस्लाम को जन्म दिया। इस अरबी वातावरण द्वारा उनके जीवन व कुशलता के प्रति जो चुनौतियां उत्पन्न की जा रही थीं, उससे वे शक्तिहीन थे। वे इतना असहाय अनुभव करते थे कि उन्हें बल प्रयोग की आवश्यकता का अनुभव हुआ, और इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उन्होंने एक अल्लाह की रचना की। जब अरबी पुरुष ने अपनी शक्ति खो दी, तो उसे एक उग्र अल्लाह की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इस प्रकार उसने अपनी आवश्यकता को देखते हुए एक उग्र अल्लाह को गढ़ा, परंतु यह अल्लाह शक्तिशाली नहीं था। एक शक्तिशाली मनुष्य की भाँति शक्तिशाली ईश्वर भी अपनी राजसत्ता व साम्राज्य प्रेम, शांति, करुणा व दया से चलाता है, न कि हत्या, निर्दयता और आंतरिक कलह का आश्रय लेता है। एक शक्तिशाली ईश्वर इससे भयभीत नहीं रहता है कि उसका प्रभुत्व अथवा अभियान किसी विद्रोह से

खतरे में पड़ जाएगा, न ही वह अपने प्रभुत्व की रक्षा के लिए हिंसा का आश्रय लेता है। यदि मुस्लिम अल्लाह और वास्तविक ईश्वर में कोई अंतर है, तो यही है! इस्लाम का अल्लाह का बल का प्रयोग करता है, किंतु उसके पास शक्ति नहीं है।

आइए एक मिनट के लिए इस पर सोचें: कौन अधिक शक्तिशाली है, मदर टेरेसा अथवा पहाड़ी की चोटी पर बैठा वह राक्षस? निश्चित ही मदर टेरेसा अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि वह किसी प्रकार के बल प्रयोग का आश्रय लिए बिना ही अपने अभियान को पूरा करने में समर्थ थी। वह राक्षस, स्वाभाविक रूप से, बल का अधिक परिमाण धारण करता है, वह लोगों को खा जाने के लिए अपने नाखून और दांत का प्रयोग करता है। आइए कुरआन की निम्नलिखित आयत का परीक्षण करें: "हे नबी, मोमिनों को जंग की प्रेरणा दो। यदि तुममें से बीस अडिग होंगे तो दो सौ को नष्ट कर देंगे; और यदि तुममें से सौ होंगे तो एक हजार काफिरों को उखाड़ फेंकेगे, क्योंकि उनमें समझ-बूझ नहीं है"(8:65)। क्या कोई ईश्वर अपने अनुयायियों को युद्ध के लिए उकसाता है? वह ऐसा तभी करेगा, जब शांतिपूर्ण साधनों से अपने संदेश का प्रसार करने में असमर्थ होगा। क्यूंकि लोग अल्लाह के अपने भीतर बिठाते हैं, इसलिए वे जब भी अपनी शक्ति गंवा देते हैं और अपने काम को शांतिपूर्ण ढंग से पूरा कर पाने में असमर्थ होते हैं, तो वे लोगों में कलह उत्पन्न करते हैं। तो क्या बल ही शक्ति का एकमात्र विकल्प है! जब तक किसी व्यक्ति के पास शक्ति होती है, उसे बल प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती है। ज्ञान चाहे धार्मिक हो, अथवा वैज्ञानिक या दार्शनिक, यह सदैव हमें शक्ति से पूर्ण करता है, और हमें बल प्रयोग न करने में समर्थ बनाता है। अवधारणाएं, चाहे धार्मिक हों या नहीं, अपनी रक्षा स्वयं कर सकती हैं, और जो उन अवधारणाओं में विश्वास करते हैं उन्हें उसकी रक्षा करने की आवश्यकता नहीं होती है।

यथा, मैंने पहले ही लिखा है, इस्लाम ने अल्लाह को जो विशेषण दिए उनमें "हानि पहुँचाने वाला", "प्रतिशोध लेने वाला", "विवश करने

वाला", "रक्षा करने वाला" और "आदेश देने वाला" आदि है। यदि कोई इन विशेषणों का परीक्षण करे, तो पाएगा कि ये गुण उसी प्रकार प्रतीत होते हैं जो केवल किसी ऐसे व्यक्ति पर जोड़े जाते हैं जिसकी शक्ति चली गई हो और जो अपनी इच्छा पूरी करने के लिए बल प्रयोग का आश्रय लेता है। सीरियाई लेखक नबील फय्याद कहते हैं: "विचार जितना भंगुर होता है, उसकी रक्षा करने वाले उतने ही भयानक होते हैं।" अच्छे विचार को रक्षकों की आवश्यकता नहीं होती है। यही सच है कि अच्छा विचार अपनी सफलता और टिकाऊपन का अपने आप में गारंटी होता है। दुर्बल अवधारणा अपनी रक्षा नहीं कर सकती है, और वह इतिहास में कचरे के ढेर में रूपांतरित हो जाता है, क्योंकि किसी को उसकी आवश्यकता नहीं होती है। वस्तुओं की भाँति ही विचार को भी इतिहास के हाट में अपनी उपयोगिता सिद्ध करना पड़ता है, और उसे भी मांग व आपूर्ति के नियम पर चलना पड़ता है। प्रतियोगिता की होड़ में इतिहास ने सिद्ध किया है कि हमें केवल अच्छे विचारों की आवश्यकता होती है और यह सिद्ध किया है कि अच्छे विचारों की आवश्यकता ही उनकी उत्तरजीविता व स्थायित्व की प्रतिभूति (गारंटी) देता है।

शक्तिहीन व्यक्ति ऐसे किसी भी बुरे विचार की रक्षा करता है जो उसे बल प्रयोग की अनुमति देते हों, और ऐसा व्यक्ति अपने प्राणों को जोखिम में डालकर भी ऐसे बुरे विचार की रक्षा करने का प्रयास करेगा। आप ऐसे व्यक्ति को तब तक नहीं समझा सकते कि उसका विचार दुर्बल (भंगुर) है, जब तक कि आप उसे उसकी शक्ति वापस पाने में सहायता न करें। मुस्लिम जिस स्थिति में जीते हैं, उसका सीधा विश्लेषण कीजिए, तो आपको पर्याप्त ढंग से पता चलेगा कि इस्लामी शिक्षाओं की निष्फलता क्या है। इस्लामी शिक्षा स्थिर, लाभप्रद व रचनात्मक मनुष्यों के निर्माण में विफल रही है। अरब संसार में समय ठहर गया है, और समयावली (कैलेंडर) अभी भी सातवीं सदी में अटकी हुई है। मुसलमानों का सब कुछ लुट गया है और उनके पास अपनी पहचान के लिए उन इस्लामी शिक्षाओं

के अतिरिक्त कुछ नहीं शेष बचा है, जिससे वे और कठोरता से चिपक गए हैं। मुसलमान और वह शिक्षा जिसमें वो विश्वास करते हैं, दोनों एक घनचक्कर की भाँति एक-दूसरे का पीछा कर रहे हैं। वह शिक्षा उनका पीछा करती है, और वे उस शिक्षा का अनुसरण करने के अतिरिक्त कुछ और करने योग्य नहीं बचे हैं। ये इस्लामी शिक्षाएं उन्हें विनाश की ओर ले जा रही हैं, किंतु मुसलमान जितना ही विफल होंगे, उतना ही इन शिक्षाओं के आसरे होते जाएँगे।

*-यह एक इस्लामी सुन्नत (परंपरा) है कि जब शौचालय को छोड़कर किसी अन्य कक्ष में प्रवेश कीजिए, तो पहले अपना दायां पांव आगे बढ़ाइए, क्योंकि वह एक "मैला स्थान" माना जाता है।

अध्याय 10

इस्लाम एक संकरा हाट

अपने आरंभ से ही इस्लाम ने बलपूर्वक अपनी शिक्षाओं को बचाया है। जब भी इसे सत्ता की आवश्यकता हुई, बल का आश्रय लिया। इसने किसी भी ऐसे विचार को कुचलने के लिए बल प्रयोग किया जो इसके अनुकूल नहीं था, और इसने अपने अनुयायियों को बंदी की भाँति जकड़ कर रखा। इसने उत्कृष्टता के सिद्धांत और मांग व आपूर्ति के नियम को अस्वीकार किया। इसने अपने हाट में किसी और को व्यापार करने की अनुमति नहीं दी, केवल अपने ही व्यापारी रखे। कुरआन और रसूल मुहम्मद का जीवन, कार्य व कथन ही ज्ञान के एकमात्र स्रोत और विधायन के एकमात्र आधार के रूप में प्रस्तुत किए गए। इस्लाम ने इन स्रोतों को बलपूर्वक थोपा, और दूसरों को प्रतिस्पर्धा करने की अनुमति नहीं दी। समय के साथ इस्लाम के इन स्रोतों का प्रभुत्व समाप्त हो गया, क्योंकि नए युग में ये अवधारणाएं टिक नहीं सकती हैं।

जो विचार समय के अनुकूल नहीं होता है, वह अपनी उत्कृष्टता खो देता है और भंगुर हो जाता है। जितना ही यह भंगुर होगा, उतना ही अपने अनुयायियों को समय के साथ चलने से रोकेगा। मुसलमान अपने ही मजहबी कारागार के बंदी बन गए। इन मजहबी बेड़ियों की शिक्षाओं ने उन्हें असहाय बना दिया है। असहायता के इस भाव ने उन्हें इन बेड़ियों में और जकड़ लिया है।

अरब मरुस्थल के निवासी अपने अनुपजाऊ वातावरण से इतने भयभीत थे कि वे इसमें सुधार अथवा इसे जीवंत बनाने के किसी भी विचार की कल्पना तक करने में समर्थ नहीं थे। जिस भय ने मुसलमानों को सताया, वह आज भी उनका पीछा करता है। जिस विचार ने पहले समस्या

उत्पन्न की थी, उसी का प्रयोग करके व्यक्ति अपनी समस्याओं का समाधान नहीं कर सकते हैं। चौदह सौ वर्षों में भी मुसलमान नहीं समझ पाए हैं कि उनकी इस्लामी शिक्षाएं कुछ भी दे पाने में असफल हैं, और वे आज भी यह मानने से अस्वीकार करते हैं कि ये शिक्षाएं ही उनकी शक्तिहीनता व पिछड़ेपन की उत्तरदायी हैं। इन शिक्षाओं ने उनके आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक अथवा नैतिक परिस्थितियों में सुधार के लिए कुछ नहीं किया है, और भले ही आज समय व स्थान परिवर्तित हो गए हों, परंतु वे उसी बुरी दशा में आज भी हैं।

आर्थिक क्षेत्र में, इन शिक्षाओं ने काम के महत्व पर बल नहीं दिया है। इस्लाम में काम की अवधारणा घुमंतू प्रवासन, आक्रमण, लूट की वस्तुओं या धन, और उत्तरजीविता के लिए संघर्ष तक ही सीमित है। इस्लाम ने अपने अनुयायियों को नदियों, फल, मदिरा, और दूध का वचन दिया, परंतु इसने उन्हें कुएं खोदने, फल उगाने अथवा पशुधन तैयार करने को प्रोत्साहित नहीं किया। इसकी शिक्षाओं ने उन्हें सिखाया कि जीवन क्षणिक है, और इसका मोल तभी है जब अल्लाह की वंदना की जाए। इसने उनमें जीवन के पश्चात् दूसरे संसार का जीवन होने का भ्रम उत्पन्न किया, और इसी भ्रम में जीते हुए उस दूसरे संसार के जीवन की प्रतीक्षा करते रहे। वे आज भी यही कर रहे हैं।

कुरआन कहती है: "यह जन्नत (स्वर्ग) है, जिसका वचन दिया गया है आज्ञाकारियों को। उसमें नदियां हैं निर्मल जल की, तथा नदियां हैं दूध की जो सदैव शुद्ध (ताजी) बनी रहेगी; तथा नदियां हैं स्वादिष्ट मदिरा की, तथा नदियां हैं स्वच्छ मधु (शहद) की। वे वहाँ प्रत्येक प्रकार के फल खाएंगे, तथा अपने स्वामी की ओर से क्षमा प्राप्त करेंगे! क्या उनका भी भाग्य ऐसा ही है जो सदा के लिए जहन्नुम (नर्क) में रहेंगे तथा खौलता जल पियेंगे, जो उनकी उनकी आंतों को खण्ड-खण्ड कर देगा?"(47:15)। एक और आयत कहती है: "इस संसार का जीवन कुछ और नहीं, केवल एक खेल और मनोरंजन है। निश्चित ही जो अल्लाह का भय रखते हैं उनके लिए

दूसरे संसार आख़िरत (परलोक) का जीवन ही श्रेष्ठ है"(6:32)। इसका तात्पर्य यह है कि मुसलमानों के लिए इस संसार के जीवन का कोई महत्व नहीं है। वे यहाँ अस्थायी ही हैं, और उनका एक ही उत्तरदायित्व है कि अल्लाह की वंदना करें जिससे कि इस जीवन के पश्चात् जन्नत पा सकें।

अल्लाह की ओर से जंग छेड़ने का आह्वान इन उत्तरदायित्वों का मुख्य भाग तैयार करता है। कुरआन की निम्नलिखित आयत यह स्पष्ट करती है: "तो चाहिए कि अल्लाह के मार्ग में वे लोग जंग करें जो आखिरत (परलोक) के बदले सांसारिक जीवन बेच चुके हैं। और अल्लाह के मार्ग में जो जंग करेगा, वह मारा जाए अथवा विजयी हो, हम उसे बड़ा पुरस्कार प्रदान करेंगे"(4:74)। मुसलमान जंग के विचार के अतिरिक्त कोई और दायित्व नहीं रखता। वे आज भी मानते हैं कि इस जीवन के पश्चात् जन्नत पाने का एकमात्र सुनिश्चित मार्ग जिहाद ही है। जब लोग अपने किए हुए कार्यों के लिए उत्तरदायी न अनुभव करें, तो उनके लिए यह स्वीकार करना असंभव होता है कि उन्होंने कुछ अनुचित किया है, और परिणामस्वरूप उनमें अपने अत्याचार व अनुचित कार्यों के लिए कोई अपराधबोध नहीं होगा।

इस्लाम मानता था कि जंग करने के दायित्व की सीमाओं के बाहर मुसलमान के साथ जो भी हुआ, वह उसकी नियति थी और उस पर उसका कोई वश नहीं था, इसलिए तद्नुसार उसका कोई उत्तरदायित्व भी नहीं था। इस्लामी शिक्षाओं ने मुसलमानों में यह भ्रम उत्पन्न किया कि उनका भाग्य पहले से लिख दिया गया है। उनमें यह भावना भर दी गई कि उनके जीवन में जो कुछ हो रहा है, वो सब पहले से निर्धारित है और उनका उन घटनाओं पर कोई वश नहीं है। कुरआन कहती है: "उनसे कह दो: अल्लाह ने हमारे भाग्य में लिख दिया है, उसके अतिरिक्त हम पर कुछ और नहीं गिरेगा।'"(9:51)। मुहम्मद ने एक हदीस में कहा: "यदि तुम्हें कुछ हो जाता है, तो न कहो: 'यदि हमने वो किया होता, तो ऐसा हो गया होता।'

अपितु कहो: 'यही अल्लाह ने लिख रखा था, और वह जो चाहता है करता है'।"

भाग्य में जो लिखा है उसके आगे झुकने के इस आह्वान ने पराश्रित स्वभाव को विकसित किया है, और लोगों में यह भरा है कि उनके जीवन में जो कुछ होता है वह अल्लाह की योजना का भाग ही है और उसके आदेश से ही हो रहा है। यह प्रवृत्ति मुसलमानों को वास्तविकता का सामना करने से रोकती है, और बहुत सीमा तक यह मुसलमानों को उस वास्तविकता की दयनीयता पर अपराध बोध का अनुभव करने में असमर्थ बनाती है। मुसलमान कभी आत्मचिंतन नहीं करते हैं और न ही सोचने का प्रयास करते हैं कि कहाँ से उनकी दुष्टता आरंभ हुई। जहाँ तक उनका संबंध है, तो वो सोचते हैं कि जो कुछ भी होता वह अल्लाह की इच्छा है और उनके दीन में उन्हें अपने कार्यों पर दुख प्रकट करने अथवा उससे होने वाले परिणामों के लिए अपने को उत्तरदायी नहीं मानते हैं।

आइए आपको एक उदाहरण देते हैं: हसन नसरल्लाह एक लेबनानी शिया मुस्लिम दीनी नेता है और उसने अपने देश की विधि तोड़ी थी, अपनी सरकार की इच्छा को चुनौती दी थी, और अपने अनुयायियों को लेकर एक राजनीतिक दल बनाया था। उसका अपने दल का नाम हिजबुल्ला रखना कुछ लोगों को तार्किक लग सकता है, पर मुझे नहीं लगता कि थोड़ा भी विवेक रखने वाला कोई व्यक्ति उसके हिजबुल्ला नाम रखने से सहमत होगा: हिजबुल्ला का अर्थ "अल्लाह का दल" होता है। उसने जो नाम चुना है, वह उसकी चिंतन शैली को दर्शाता है। हम अल्लाह में विश्वास करें या न करें, इसका कोई महत्व नहीं है: यहाँ महत्वपूर्ण विषय यह है कि एक व्यक्ति अल्लाह पर एकाधिकार का प्राधिकार कर रहा है और वह उसी दल में अपने को अल्लाह के साथ रख रहा है। यह व्यक्ति किसी और के जीने के अधिकार का सम्मान नहीं करता है, और मानव जीवन को कोई महत्व नहीं देता है। वह यह मान बैठा है कि वह इस संसार में अल्लाह के दीन का प्रसार करने के लिए आया है, और यह मान बैठा है कि

वह इसमें मारे या मारा जाए, प्रत्येक स्थिति में शाश्वत काल तक जन्नत में आनंद करेगा। वह अपना लाभ शत्रु की हानि के परिमाण से गिनता है, किंतु उसे स्वयं संपत्ति अथवा मानव जीवन की जो हानि होती है उस पर नहीं सोचता है।

नसरल्लाह आरंभ से ही जानता था कि वह एक विनाशकारी युद्ध की ओर जा रहा है, तब भी वह और उसके अनुयायी इजराइल के विरुद्ध युद्ध में लेबनान को विनाश की ओर ले गए। जब वह इस युद्ध से बाहर आया, तो उसके 1,000 व्यक्ति मारे गए, 5,000 व्यक्ति घायल हो गए, और 10 लाख व्यक्ति विस्थापित हुए, और तब वह एक दिन युद्धविराम के दिन घोषणा कर देता है कि उसने इजराइल को पराजित कर दिया है और उसने अपनी विजय लेबनान व इस्लामी देश को समर्पित किया। यहाँ आप विजय की मुस्लिम अवधारणा समझ सकते हैं।

नसरल्लाह और उसके अनुयायियों ने सैकड़ों यहूदियों की हत्या की, और उनकी दृष्टि में इससे बड़ी विजय नहीं हो सकती है। कुरआन कहती है: "अल्लाह ने मोमिनों से उनका जीवन और उनके सांसारिक वस्तुओं को क्रय कर लिया है, और बदले में उन्हें जन्नत का वचन दिया है। वे उसके उद्देश्य से जंग करेंगे, मारेंगे और मरेंगे" (9:111)। यही कारण है कि जंग में मुसलमानों का उद्देश्य या तो शत्रु की हत्या करना होता है अथवा शत्रु द्वारा मार दिया जाना होता है, और वह सोचता है कि वह मारे या मारा जाए, दोनों ही स्थितियों में विजयी होगा। यदि मुसलमान शत्रु की हत्या करता है तो वह विजयी हुआ, परंतु यदि उसका शत्रु उसकी हत्या करता है तो मुसलमान की विजय और बड़ी है, क्योंकि उसके शत्रु के इस कार्य ने उसे शीघ्र ही अपने अल्लाह से मिलने के उद्देश्य को पूरा किया है।

हसन नसरल्लाह अपने किए का उत्तरदायित्व लेने में असमर्थ था, और यही कारण है कि उसके व्यवहार के जो दुष्परिणाम हुए हैं उन पर उसे पछतावा नहीं होता है। नसरल्लाह के अपने एक हजार लोग मारे गए, पांच हजार लोग घायल हो गए, और लाखों व्यक्ति आश्रयहीन हो गए, पर उसके

लिए अपनी इस क्षति का कोई महत्व नहीं रहा, क्योंकि वह यही सोच-सोचकर प्रसन्न हो रहा था कि इजराइल ने भी सैकड़ों व्यक्ति गंवाए कि उसके लिए अपने लोगों की क्षति का कोई महत्व ही नहीं रहा। कुछ ऐसा होता है उन व्यक्तियों का दर्शन जो अल्लाह पर एकाधिकार का दावा करते हैं और जिन्होंने अल्लाह के साथ मिलकर एक राजनीतिक दल का गठन किया होता है। उन्होंने अल्लाह को सैनिक की वेशभूषा दे दी, उसके सिर पर हेलमेट रख दिया, और उसे खंदकों में खींचकर ले गए जिससे कि वह उनके शत्रुओं को निपटाने में सहायता करे। इस मानसिकता से भला कौन होड़ कर सकता है? उस व्यक्ति से कौन संघर्ष कर सकता है जो दूसरों की मृत्यु से अधिक अपनी मृत्यु की इच्छा करता है?

जब हम किशोर थे, तो हमारे बड़े लोग इस उक्ति की डुगडुगी पीटते थे: "हमारा शत्रु जितना जीवन से प्रेम करता, उतना ही हम मृत्यु से प्रेम करते हैं।" मृत्यु की संस्कृति से ओतप्रोत व्यक्ति मनुष्य नहीं हो सकता है, क्योंकि किसी मनुष्य की मनुष्यता तब तक पूर्ण नहीं हो सकती है जब तक कि वह मानव जीवन का सम्मान न करे और इसकी रक्षा का कार्य न करे। इजराइल और हिजबुल्लाह के मध्य युद्ध में अपनी दो बेटियां, दो बहनें, भाई और माता-पिता को गंवा चुकी एक लेबनानी महिला को उद्धृत करते हुए लॉस एंजेल्स टाइम्स में अक्षरश: यह लिखा गया था: "मैं अब प्रसन्न हूँ, क्योंकि वे जन्नत गए हैं।" आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध तब तक व्यर्थ जाता रहेगा जब तक कि विश्व एक-साथ आकर जीवन से घृणा करने वाली उस संस्कृति के स्थान पर नया मानवीय व तार्किक विकल्प नहीं ला देता, जो लोगों को अपने प्राण गंवाने को उकसाती है।

इस्लाम की प्रथाओं में उत्तरदायित्व की अवधारणा का कोई स्थान नहीं होता है। चौदह सौ वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी मुस्लिम देश आज भी देशों में सबसे नीचे हैं, पर मुस्लिम व्यक्ति इस पिछड़ेपन के उत्तरदायी कारकों को पहचानने से मना कर देते हैं, जिससे वे अपनी विफलताओं के प्रति उत्तरदायी होने से बच जाते हैं। यदि आप उनके साथ जीवन बिताएं,

तो पाएंगे कि आपको उनमें किसी प्रकार का अपराध बोध नहीं दिखता है, भले ही वो कितने ही अपराध करें। अपनी विफलताओं का सामना करने से बचने के लिए मुस्लिम व्यक्ति "हत्यारा और पीड़ित" का खेल खेलता है। वह ऐसा दिखाता है कि मानो वह पीड़ित है, और पूरा विश्व उसके पीछे पड़ा हुआ है!

इस्लाम के आगमन से ही मुसलमानों ने विश्व को दो भागों में विभाजित कर रखा है- एक भाग में वे स्वयं को रखते हैं और दूसरे भाग में शेष अन्य को। उनकी दृष्टि में वे तार्किक, शांतिप्रिय और सच्चे मोमिन हैं, जबकि अन्य सभी विचारहीन, दुष्ट और विधर्मी आतंकवादी हैं। वे ही पीड़ित हैं, जबकि अन्य सभी हत्यारे हैं। भले ही मुसलमान समस्त संसार पर उन्हें मिटाने का षडयंत्र करने का आरोप मढ़ते हैं, परंतु सत्य यह है कि दूसरों को मिटाने का काम मुसलमानों ने किया है, और यहूदी वह जाति है जो इस्लाम के आरंभिक दिनों से ही बलि का बकरा बनाई जाती रही है।

यहूदी उन शब्दों में से एक है, जो मुस्लिम बालक या बालिका दस वर्ष की अवस्था प्राप्त करने से पूर्व ही जाने कितने बार सुन चुका होता है। यह शब्द उनके लिए कठोरतम शब्दों में से एक है, क्योंकि उनकी मन में यह शब्द आते ही हत्या, दुराचार, मिथ्या वाचन और भ्रष्टाचार का दृश्य सामने लाता है। जब दो मुसलमान लड़ते हैं, तो एक-दूसरे को यहूदी कहकर अपशब्द बोलते हैं। जब कोई मुसलमान किसी व्यक्ति के प्रति घृणा व तिरस्कार दिखाना चाहता है, तो वह उसे यहूदी कहता है।

जब कोई मुसलमान किसी को कुरूप बताना चाहता है, तो वह कहता है कि वह यहूदी के समान दिख रहा है। हम अपनी सै विफलताओं, अपने आर्थिक पिछड़ेपन और हमारी तकनीकी अयोग्यताओं के लिए यहूदियों को उत्तरदायी ठहराते हैं। हम मानते हैं कि यहूदी विश्व को नियंत्रित करते हैं और, इस कारण, समस्त विश्व उनकी उंगलियों के संकेत पर नाच रहा है तथा हमसे छुटकारा पाना चाहता है। जब मैं प्राथमिक कक्षा में थी, तो हमारे अध्यापक स्वतंत्रता दिवस समारोह के लिए नाटक का अभ्यास

करा रहे थे। उन्होंने मुझे गोल्डा मीर की भूमिका दी थी। गोल्डा मीर उस समय इजराइल की प्रधानमंत्री थीं। अध्यापक ने सुझाव दिया कि मैं अशिष्ट व असभ्य भाषा बोलूं। उन्होंने यह भी कहा कि नाटक में मुझे रूप विकृत करने वाली आसज्जा (मेकअप) करनी चाहिए, क्योंकि उनका विकृत मन यही सोच सकता था।

मुझे लगा कि मानो मुझ पर वज्रपात हो गया है। मेरा बालमन समझ नहीं पा रहा था कि हो क्या रहा है। मैं व्यक्तिगत रूप से अध्यापक के इस सुझाव पर अपमानित अनुभव कर रही थी, क्योंकि मुझे वह तनिक भी ठीक नहीं लग रहा था। मैंने अपने आप से पूछा: क्या मैं गोल्डा मीर की भूमिका निभाने वाली हूँ? मुझे लगा कि उनके सुझाव से मेरा अपने सहपाठियों के सामने अपमान हुआ है और मुझसे यह सब सहन नहीं होगा। अगले दिन मैंने अस्वस्थ होने का नाटक किया, और उल्टी करने का दिखावा किया। मेरी अम्मी ने बिना यह जाने कि क्या हुआ है, मुझे घर पर ही रहने दिया, और इस प्रकार मैं वह कार्य करने से बच गई जिसे छोटी सी आयु की मेरी जैसी बालिका करने के लिए मन से तैयार नहीं हो पा रही थी। आज भी जब मैं उस घटना का स्मरण करती हूँ, तो वैसी ही पीड़ा का अनुभव करती हूँ जैसी कि उस समय किया था, और मैं स्वयं से पूछती हूँ: यह किस प्रकार की नैतिकता है कि जिसमें एक अबोध बालिका से अपना रोष दबाने को कहा जाता है, और आप एक अध्यापक होकर भी यह नहीं समझ पाते हैं कि जब आप शिशु पर ऐसा उत्तरदायित्व डालते हैं जो लेने या समझने के लिए वह बहुत छोटा है, तो आप उस पर कैसा भावनात्मक दबाव डाल रहे होते हैं? एक शिशु के रूप में मैंने अपने मन में जिस रोष का अनुभव किया, वह मुझे खाने दौड़ता था, और यहाँ तक कि अमरीका आने के पश्चात् भी अनेक वर्षों तक उस रोष ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा।

जब मैं अमरीका में रहने चली आई, तो दो-चार दिन बीते थे कि मैं और मेरे पति हालीवुड देखने गए, और मुझे ऐसे लगा कि मानो हम धरती पर न होकर किसी अन्य ग्रह पर हों, ऐसा ग्रह जिसका पहले कभी

कल्पना तक न की हो। इस भ्रमण के समय हम एक जूते की हट्टी (दुकान) पर गए और वहाँ हम जूते पहनकर देखने लगे। मेरे पति ने देखा कि हट्टी का सहायक मध्य पूर्व के किसी देश का लगता है, तो वो पूछ बैठे कि वह कहाँ का है।

वह बोला: "मैं एक इजराइली यहूदी हूँ।"

मैंने यह सुनने की भी प्रतीक्षा नहीं की कि वह क्या कह रहा है, और तत्क्षण हाथ में पकड़े हुए एक जूते को वहीं छोड़कर एक पांव के जूते में ही बाहर की ओर ऐसे भागी, मानो मुझे किसी जंगली पशु ने दौड़ा लिया हो।

मेरा दूसरा जूता लिए हुए मेरे पति मेरे पीछे दौड़े और चीखते हुए बोले: "क्या हुआ, मूर्ख?"

मैं कांपते हुए बोली:"वह एक यहूदी है, और आप चाहते हैं कि मैं उसकी हट्टी में रुकूं?"

मुझे अमरीका आए हुए लगभग दो वर्ष बीत चुके थे, पर तब भी मेरे भीतर के क्रोध ने पीछा नहीं छोड़ा था। एक दिन क्रिसमस से दो दिन पूर्व मेरे पुत्र की शिक्षिका ने मुझे फोन किया और बोलीं, "वफा, वैसे तो मैं अपनी इच्छा से यहूदी हूँ, पर मैं अपने शिष्यों को छोटा सा क्रिसमस उपहार देती हूँ। मैं जानती हूँ कि आप एक मुस्लिम हो, मैं आपको दुखी नहीं करना चाहती, इसलिए पूछ रही हूँ कि यदि मैं आपके पुत्र को भी उपहार दूं तो आप बुरा तो नहीं मानेंगी?"

उस समय मुझे यह तनिक भी नहीं पता था कि "इच्छा से यहूदी" कहने का उनका क्या तात्पर्य था, क्योंकि मैं सोच भी नहीं सकती थी कि कोई किसी धर्म को चुन भी सकता है, परंतु ज्यों ही मैंने कहते सुना "मैं यहूदी हूँ" सन्निपात की स्थिति में आ गई और कुछ बोल पाने की स्थिति में न रही।

मैं अपने आप से कहती रही: मेरे पुत्र की शिक्षिका यहूदी है? कैसा अभाग! मैं सूक्ष्मता से उन पर दृष्टि रखने लगी कि वो कोई छोटी सी भूल

करें जिससे मुझे अवसर मिल जाए और मैं विद्यालय प्रबंधन से उनकी बुराई करके उन पर भेदभाव करने का आरोप मढ़ सकूं। पर अमरीका में मेरे पुत्र की द्वितीय कक्षा की शिक्षिका सुश्री स्पार्क्स ने मुझे वह अवसर ही न दिया कि मैं उनकी बुराई कर सकूं, वो तो ऐसी थीं कि मानो मेरे बधिर पुत्र की सहायता के लिए विशेष-आवश्यकता अध्यापिका के रूप में आकाश से भेजी गई कोई देवी हों।

वैसे तो अमरीका में मुझे इस प्रकार के बहुत से अच्छे अनुभव हुए, पर तब भी मैंने अपनी उस सोच को परिवर्तित नहीं होने दिया जो मैंने अपने जन्म भूमि पर 32 वर्ष बिताकर बनाई थी और जिसने मुझमें यह भर रखा था कि यहूदी ऐसे अपराधी होते हैं जो केवल हत्या करना और धन चुराना जानते हैं। एक दिन मेरे पति कार्यालय से वापस आए और कहने लगे कि उनका दशा ही नहीं ठीक चल रही है। उन्होंने अपनी कार किसी को बिक्री की थी और उस व्यक्ति ने पांच सौ डालर का चेक दिया था। चेक लेने के पश्चात् उन्हें पता चला कि जिसे कार दी है, वह व्यक्ति यहूदी है और अब उस व्यक्ति ने बताया कि चेक अनादरित (बाउंस) होने की आशंका है। कहानी यहीं समाप्त नहीं हुई, क्योंकि अगले दिन मुझे ध्यान आया कि मैंने भूल से अपने पति के उस शर्ट को धो दिया है जिसकी जेब में वह चेक रखा था, और भीग जाने के कारण वह चेक अब पत्रक का एक टुकड़ा भर बनकर रह गया है। आधे घंटे के भीतर वो यहूदी सज्जन मेरे पति के कार्यालय पहुंचे और पांच सौ डालर नकद दिया। उन्होंने हँसी करते हुए कहा, "श्रीमान! अपनी पत्नी का विश्वास न करना! अगली बार मैं दूसरे रूप में धन नहीं दे पाऊंगा।"

हममें अपनी अम्मी के दूध के साथ ही यहूदियों और उनका पक्ष लेने वालों के प्रति घृणा भर दी जाती थी। हम षडयंत्र सिद्धांत तैयार करते हुए इस घृणा को उचित ठहराते थे, और जो कोई भी हमसे सहमत नहीं होता था उसे यहूदी एजेंट कर अपमान करते थे। यह षडयंत्र सिद्धांत

मुसलमानों को उस बाड़े में बंद रहने में सहायता करता है, जिसमें इस्लाम ने उनकी बुद्धि-विवेक को बंदी बना रखा है।

जो कोई भी नए विचार या पद्धति लाता है, वे उस पर वही रटा-रटाया आरोप मढ़ देते हैं कि वह व्यक्ति अंतर्राष्ट्रीय यहूदीवाद का एजेंट है। यह आरोप लगने का भय ही है कि जिसने करोड़ों मुसलमानों को यह सोचने-विचारने से रोका है कि उन्हें क्या सिखाया गया है। ईराक में रहने वाले एक न्यायाधीश पाठक से मेल पर मेरा संवाद होता है। वह मेरे लेखन की प्रशंसा करते हैं। वह सदा उदार व सुसंस्कृत प्रतीत होते हैं और अनेकों बार उन्होंने मुझे इस्लामी विषयों पर लिखने के लिए प्रेरित किया है, किंतु एक बार मैं तब चौंक गई जब उन्होंने मुझसे कहा कि इजराइल-फिलिस्तीन संघर्ष पर मैं कुछ न लिखूं, कहीं ऐसा न हो कि मुझ पर यहूदियों और यहूदीवाद के साथ मिलकर षडयंत्र करने का आरोप मढ़ दिया जाए। यद्यपि मैं उनके परामर्श को मानने वाली नहीं थी, परंतु, तब भी, मैंने उन्हें धन्यवाद देते हुए लिखा और बताया कि मैं पूर्णत: मानती हूँ कि इस संघर्ष के पीछे के कारण धार्मिक हैं, और यह संघर्ष रसूल मुहम्मद की यहूदियों के प्रति शत्रुता से उत्पन्न हुआ है।

मैंने एक संदेश में उनको कुरआन की उस आयत का स्मरण कराया जिसमें लिखा है: "यहूदी कहते हैं: 'अल्लाह के हाथ बंधे हुए हैं।' उनके ही हाथ बंध जाएँ! वो जो कहते हैं उसके लिए उन पर धिक्कार हो। अपितु उसके तो दोनों हाथ खुले हुए हैं, जैसे चाहे व्यय करता है (5:64)।"

मैंने उनसे पूछा, "क्या यह तार्किक है? जब आप अपने बेटे के सामने यह आयत पढ़ते हैं, तो उसे क्या बताते हैं? आप अपने बेटे को कैसे समझा पाते हैं कि फिलिस्तीन पर इजराइल के अधिकार करने के बहुत पहले 1400 वर्षों से यहूदियों के प्रति इस्लाम की जो विकृत सोच है वह यहूदियों के साथ हमारी समस्या का कारण नहीं है, अपितु यह समस्या इसलिए है क्योंकि इजराइल ने फिलिस्तीन पर अधिकार कर रखा है?" वह

न्यायाधीश बहुत सीमा तक मेरी बात से सहमत प्रतीत हुए, परंतु तब भी यही कहते रहे कि यदि मैंने इस विषय पर अपना मत प्रकट किया तो मुझे भय है कि मुझ पर भी यहूदीवाद और अमरीकी साम्राज्यवाद के साथ मिलकर षडयंत्र करने का आरोप लगा दिया जाएगा।

यहूदियों के प्रति इस्लाम की सामान्य प्रवृत्ति ने मुसलमानों को अपना षडयंत्र सिद्धांत गढ़ने और इस्लामी शिक्षाओं की विश्वसनीयता व नैतिकता पर संदेह प्रकट करने वाले किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध अस्त्र के रूप में प्रयोग करने में सहायता की है। इस अस्त्र की सहायता से वे अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में व्यापक स्तर पर सफल रहे हैं।

अध्याय 11

प्रत्येक मुसलमान को ध्यान से बताया जाना चाहिए

इस्लाम को जिस वातावरण ने जन्म दिया, उसमें रहने वाले लोग अपने भय से मानसिक विकलांग हो चुके हैं। उनके भय ने आने वाले प्रत्येक क्षण को ऐसा बना दिया कि मानो दमनकारी युद्ध चल रहा हो। लोग सोते-जागते इसी आशंका में भयभीत होकर जीते कि उनकी जनजाति दूसरी जनजाति पर आक्रमण करने वाली है। वे यही कल्पना करते रहते कि या तो हत्या करेंगे अथवा उनकी हत्या हो जाएगी। जब इस्लाम आया, तो इसने उनके भय को और बढ़ा दिया, क्योंकि इसने ऐसा दिखाया कि जो उससे भिन्न है वह उनकी सुरक्षा व स्थायित्व के लिए खतरा है। इस्लाम ने यही सिखाया कि जो भी उसकी बात से सहमत न हो, उसे क्षति पहुँचाने की अवसर की घात में बैठे रहो। दूसरों के साथ उनका संबंध शंका व संदेह पर आधारित था। कोई भी संबंध यदि अविश्वास पर बना है, तो उसका अंत संघर्ष ही होगा। अनिश्चितता की दशा में जी रहे व्यक्ति अपने आसपास किसी भी उत्तेजना की व्याख्या अपने संदेह के आधार पर करते हैं, और जो कुछ भी होता है उसे प्रमाण बताकर कहते हैं कि उनका संदेह उचित था।

मूर्तिपूजा, यहूदीवाद और ईसाईयत अरब प्रायद्वीप के मुस्लिम-पूर्व युग के निवासियों के धर्म थे। जब मुहम्मद अपना संदेश लेकर आया, तो जिन लोगों ने उसका अनुसरण नहीं किया, उन सबको उसने धमकी दी। उसने व्यक्तियों को दो समूहों में विभाजित कर दिया। पहले समूह में वे लोग थे जो अल्लाह और उसके रसूल को मानते थे तथा जो "शांति के घर"

अर्थात जन्नत में सुरक्षा व शांति के साथ रहेंगे। दूसरे समूह में वे जन रखे गए जो अल्लाह और उसके रसूल को नहीं मानते थे तथा जो "युद्ध के क्षेत्र" अर्थात शत्रु अ-मुस्लिम क्षेत्र में शाश्वत संघर्ष की अवस्था में रहेंगे।

उसने मूर्तिपूजकों, यहूदियों और ईसाइयों पर अपना क्रोध उड़ेला। इन तीनों के प्रति उसका व्यवहार अनुयायियों के संख्या बल के अनुसार भिन्न-भिन्न रहा। जो मूर्तिपूजक अपने धर्म को मानना चाहते थे, उन्हें मुहम्मद ने आरंभ से ही मृत्यु के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं दिया। उसने कहा कि वे दुर्बल हैं और उनका तिरस्कार होना चाहिए। यहूदी और ईसाई सामर्थ्यवान, शक्तिशाली और संगठित थे, तो यह उसके हित में था कि वह इनके प्रति अपेक्षाकृत मेलमिलाप वाला व्यवहार रखे। आरंभ में उसने इनके प्रति उदार व्यवहार रखा और उनके धर्मों को ईश्वरीय प्रेरणा वाला बताया। इन धर्मों के अनुयायियों और उसके अपने अनुयायियों के मध्य शक्ति संतुलन जैसे-जैसे परिवर्तित होता रहा, इनके प्रति उसका व्यवहार भी परिवर्तित होता गया।

जब आप इस्लाम का इतिहास और इसकी शिक्षाओं को पढ़ेंगे, तो आरंभ में आपको लगेगा कि इस्लाम ईसाइयों और यहूदियों के प्रति अधिक ग्राह्य और कम शत्रुवत् है, क्योंकि इसने इनकी पवित्र पुस्तकों की पवित्रता को मान्यता दी है। किंतु जब आप इस इतिहास को आलोचनात्मक दृष्टि के साथ ध्यान से पढ़ेंगे, तो पाएंगे कि इस्लाम ने इन दोनों धर्मों के विरुद्ध जंग की घोषणा की है, और अपने अनुयायियों को एक पवित्र अभियान- इनसे प्रलय (कयामत) के दिन तक जंग करने का अभियान- सौंपा है।

इस्लामी शिक्षाओं में हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म अथवा पारसी धर्म का उल्लेख नहीं है, जबकि उस समय भी इन धर्मों का अस्तित्व था और व्यक्ति इन धर्मों का पालन करते थे। लगता है कि मुहम्मद ने इन धर्मों के विषय में सुना ही नहीं था। इसके पीछे यह तर्क दिया जा सकता है कि ये धर्म उसके या उसके अनुयायियों के लिए खतरा नहीं थे, इसलिए उसने इन धर्मों के प्रति आक्रामकता नहीं दिखाई।

क्योंकि इस्लाम ने यहूदी धर्म और ईसाई धर्म को मान्यता दी, तो यह अनुमान लगाया जाएगा कि ये दोनों धर्म उसके लिए अधिक ग्राह्य थे और अन्य धर्मों की तुलना में इन धर्मों की उसके अपने धर्म इस्लाम से अधिक समानता थी। किंतु वास्तविकता इसके ठीक विपरीत थी। इस्लाम के उदय के दिन से लेकर आज तक कुछ नहीं परिवर्तित हुआ है। इस्लाम स्वाभाविक रूप से सभी अ-मुस्लिमों के प्रति शत्रु भाव रखता है, किंतु यहूदियों व ईसाइयों के प्रति इसकी शत्रुता कुछ अधिक ही है। शत्रुता की यह स्थिति बनाए रखने के लिए इस्लाम ने कुरआन की निम्नलिखित आयत के माध्यम से मुसलमानों के मन में यहूदियों व ईसाइयों दोनों को लेकर संदेह व अविश्वास पाल रखा है। यह आयत कहती है: "तुम से यहूदी और ईसाई तब तक प्रसन्न नहीं होंगे, जब तक कि तुम उनकी रीति (धर्म) का अनुसरण न करने लगो। उनसे कह दो: 'अल्लाह का मार्गदर्शन ही एकमात्र मार्गदर्शन है।' और अब जबकि तुम्हारे पास ज्ञान भेज दिया गया है, तुम उनकी इच्छाओं के आगे झुकोगे, तो तुम्हारी सहायता करने वाला अथवा तुम्हें अल्लाह के क्रोध से बचाने वाला कोई न होगा (2:120)।"

इस्लाम के अनुसार, यहूदी और ईसाई उसी ईश्वर को मानते हैं, जिसे मुसलमान मानता है, परंतु यह बात भी उनके पक्ष में नहीं जाती है। इस्लाम उनके साथ अपने संबंध को ईश्वर के प्रति उनके व्यवहार से नहीं, अपितु मुहम्मद का उनके प्रति व्यवहार से निर्धारित करता है। उक्त आयत के आधार पर कोई मुसलमान किसी यहूदी अथवा ईसाई के साथ विश्वासपूर्ण संबंध नहीं रख सकता है। कुरआन की आयतों में किसी अन्य धर्म का उल्लेख नहीं है, अत: उन धर्मों के मानने वालों से मुसलमानों का उतना कटु संघर्ष नहीं रहता है, जितना कि यहूदियों और ईसाइयों से रहता है। मुहम्मद के समय में यहूदियों और ईसाइयों ने उसे रसूल मानने से अस्वीकार कर दिया था।

यहूदियों व ईसाइयों के प्रति मुसलमानों के व्यवहार का निर्धारण और उनके व्यवहार में शंका व संदेह की प्रवृत्ति भरने में यह आयत

निर्णायक भूमिका निभाती है। यह मुसलमानों के मन में कूट-कूट कर भरती है कि यहूदी और ईसाई मुहम्मद को कभी स्वीकार नहीं करेंगे, और इस प्रकार उनके कान भरती है कि वे भविष्य में भी इन दो धर्मों के अनुयायियों के साथ संघर्ष को दूर करने का कोई प्रयास न करें। जब मैं विद्यालय जाने वाली छोटी-सी बालिका थी, तो मेरे धार्मिक अध्यापक हमें सिखाया करते थे कि यहूदियों व ईसाइयों पर कभी विश्वास न करो। वह हमें विश्वास दिलाया करते थे कि उनकी मंशा बुरी होती है, क्योंकि उन्होंने हमारे रसूल को कभी स्वीकार नहीं किया और न ही भविष्य में कभी स्वीकार करेंगे। इस प्रकार अल्पायु से ही हमें शंकालु बनना सिखाया जाता है।

यदि आप किसी व्यक्ति की मंशा पर संदेह करेंगे, तो उसके साथ स्वस्थ संबंध रखना भले ही असंभव न हो, परंतु कठिन तो होता ही है। कोई मुसलमान कितना भी शिक्षित क्यों न हो, भले ही वह बाहर से सबको स्वीकार करने का दिखावा करता हो, पर वह जब भी किसी परिस्थितिवश इन दो धर्मों के व्यक्तियों के संपर्क में आएगा तो स्वयं को इनके प्रति पूर्वाग्रह और संदेह से पूर्णतया मुक्त नहीं रख सकेगा। वह यह मानकर चल रहा होता है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति के साथ सच्ची मित्रता नहीं रख सकता है, जो मुहम्मद को अल्लाह द्वारा भेजा गया रसूल न स्वीकार करता हो।

ईसाइयों के विषय में जो लिखा है, और विशेष रूप से यहूदियों के विषय में जो लिखा है, वह इस्लामी विरासत का बड़ा भाग है और उसी भाग ने विभ्रम और घृणा की अवस्था में बना रखा है। इस्लाम के जन्म से लेकर आज तक यहूदियों और ईसाइयों के प्रति अविश्वास ने मुसलमानों को मानसिक उन्मादी की दशा में ला दिया है, और पिछले पचास वर्षों में जब से इजराइल देश की स्थापना हुई है, यह उन्माद चरम पर पहुँच गया है। समय के साथ यहूदी वह खूंटी हो गए हैं, जिस पर हम अपनी समस्याओं और राजनीतिक, आर्थिक, सैन्य और यहाँ तक कि अपनी विफलताओं को टांगकर अपने उत्तरदायित्व से भाग जाते हैं। धार्मिक नेताओं द्वारा समर्थित

अरब शासक इस षडयंत्र सिद्धांत के लाभार्थी रहे हैं, और उनमें से प्रत्येक शासक उस दूसरे व्यक्ति पर यहूदीवादी समूह के साथ मिलकर देशद्रोह और षडयंत्र करने वाला होने का आरोप मढ़ता है, जो उससे असहमत होता है। शिक्षित वर्ग के सदस्य हों अथवा विचारक या लेखक हों, कोई षडयंत्र सिद्धांत के खतरे से बचा नहीं है। जब भी कोई लेखक कोई ऐसा विचार लेकर आता है जो प्रचलित मत के अनुकूल न हो, तो दुष्प्रचार करने वाले तत्व उस पर यहूदियों का एजेंट होने का आरोप मढ़ देते हैं।

सीरियाई कवि निज़ार कब्बानी ने अपनी एक कविता में लिखा, "फिलिस्तीन तुम्हारे लिए अंडा देने वाली मुर्गी थी, उसके बहुमूल्य अंडे तुम लोगों ने खाए...।" सामान्यत: मुस्लिम पुरुष इस षडयंत्र सिद्धांत का लाभ उठाते हैं, क्योंकि यह सिद्धांत उन्हें अपने जीवन के सभी क्षेत्रों की विफलताओं के पीछे न्यायोचित ठहराया जाने वाला कारण प्रदान करता है, और उन्हें अपने उत्तरदायित्व से बचने में सहायता करता है। जो भी मुसलमान सरकारी सेवा में आता है, वह यह कहकर उत्कोच लेने लगता है, धन चुराने लगता है, अपने पद का दुरुपयोग करने लगता है कि वह "यहूदी शत्रु" के विरुद्ध बड़ी लड़ाई की तैयारी में लगा हुआ है।

मैं जिस चिकित्सालय में कार्य करती थी, वहाँ के प्रबंधन ने उन शिशुओं के लिए दिवस देखभाल केंद्र बनाने के लिए नीचे स्थान आरक्षित करने का निर्णय किया, जिनकी माताएं वहाँ चिकित्सक और परिचारिका (नर्स) थीं। एक दिन उस केंद्र के सभी शिशु संक्रामक अतिसार (डायरिया) और उल्टी से पीड़ित हो गए। वह संक्रमण इस कारण हुआ था कि दूध के लिए जल तैयार करने और दूध पिलाने वाले बोतलों को धोने की पद्धति अस्वास्थ्यकर थी। उसी दिन हमारी प्रशासन के प्रबंधक के साथ बैठक हुई। वह प्रबंधक मूलत: उस चिकित्सालय में टेलीफोन संचालक हुआ करता था और रातोंरात प्रोन्नति देकर प्रबंधक बना दिया गया था। उसकी प्रोन्नति का रहस्य यह था कि उसका भाई सीरिया की सेना में उच्च पद पर था। बैठक में मैंने शिशुओं के दूध तैयार करने में दूषित जल के उपयोग और बोतलों

को धोने में अस्वास्थ्यकर पद्धति का विषय उठाया, और सुझाव दिया कि हमें इलेक्ट्रिक जीवाणुनाशक यंत्र क्रय करना चाहिए, जिससे कि एक बार में 20 बोतल दूध का जल शुद्ध किया जा सकता था।

मैं अभी अपना प्रस्ताव पूरा कह भी नहीं पाई थी कि वह प्रबंधक मुझ पर जंगली पशु की भाँति झपट पड़ा और क्रोध में लाल होकर चीखने लगा: "डॉक्टर, लगता है तुम्हें नहीं पता कि अंतर्राष्ट्रीय अमरीकी और यहूदी साम्राज्यवादियों द्वारा किए गए अन्यायपूर्ण कार्य के कारण हमारे देश की स्थिति कितनी बुरी हो गई है। हमारी सुसंचालित सरकार के न्यायोचित दृष्टिकोण के कारण उन्होंने हम पर अंतर्राष्ट्रीय बहिष्कार थोप रखा है, और हमें सरकारी व्यय को कम करते हुए एक-दूसरे के साथ दृढ़ता से खड़े होकर इसका विरोध करना चाहिए। पर आप हमें सुझाव दे रही हैं कि इलेक्ट्रिक जीवाणुनाशक क्रय करना चाहिए? अल्लाह, यह पीढ़ी कितना पतित हो गई है!" हमारी अम्मियां और नानियां-दादियां हमारे लिए वर्षाजल एकत्र कर पेयजल तैयार करती थीं, अल्लाह उन आत्माओं पर दया करे। और देखो, हम तो शेर हैं। संक्रमण से हम मर नहीं जाएँगे, और न रोग ही हमें मार पाएगा!" उस बैठक से बाहर निकलकर मैं अपने में सोचने लगी: हमारी-तुम्हारी अम्मियां और नानियां-दादियां गधों व खच्चरों पर चलती थीं, पर तुम लोग तो महानुभाव मर्सीडीज और बीएमडब्ल्यू में चल रहे हो, क्यों?

अमरीकियों की अच्छी मंशा की गंभीरता पर सामान्य रूप से संदेह करना और यहूदियों की अच्छी मंशा पर विशेष रूप से संदेह करना, मेरी यह प्रवृत्ति ही वह बड़ी बाधा थी जो मेरे अमरीका में प्रवासी के रूप में आकर अपने आसपास के वातावरण को ग्रहण करते समय समस्या उत्पन्न करती रही। अमरीका में अपने जीवन के पहले कुछ वर्ष मैंने संदेह के धुंध के मध्य बिताए और मैं उन्हीं लोगों पर विश्वास कर पाने में असमर्थ अनुभव कर रही थी जिनके साथ रह रही थी। मेरे मन में बैठा हुआ था कि वो लोग मुझे हानि पहुँचाने के अवसर की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं, क्योंकि मैं मुस्लिम हूँ।

मेरे अमरीका आगमन के कुछ ही दिन पश्चात्, मेरे पड़ोसी आए और मुझसे अपना परिचय दिया, मेरा नाम पूछा, यह पूछा कि मैं कहाँ से आई हूँ। जब मैंने जाना कि वो एक पुलिसकर्मी हैं, तो लगभग अचेत हो गई, क्योंकि मेरे मन में बैठा था कि जैसे ही उन्हें पता चलेगा कि मैं मुसलमान हूँ, वो मेरी गुप्तचरी करेंगे और मेरा जीवन नर्क बना देंगे, यद्यपि उन्होंने पूछा ही नहीं कि मेरा धर्म क्या है। उन्होंने वास्तव में मेरा जीवन नर्क बना दिया क्या!

मैं कुछ अनहोनी की आशंका में उन पर और उनके परिवार पर सूक्ष्म दृष्टि रखने लगी। जब भी उनके परिवार का कोई सदस्य सामने के उद्यान में जाता, तो मुझे भय लगा रहता कि मेरे पूरे परिवार की गुप्तचरी की जा रही है। इसी भय में मैं किवाड़ के पीछे छिद्र अथवा आड़ से उन्हें देखा करती थी। मैं संदेह में इतना आशंकित हो गई थी कि मैं दूसरा घर देखने के विषय में सोचने लगी थी। तब एक दिन प्रातः मैंने पाया कि वह पड़ोसी मेरा किवाड़ खटखटा रहे थे।

वो बोले, "सुप्रभात जी। मैं यहाँ यह सोचकर आया हूँ कि आप मेरी कुछ सहायता करेंगी।"

मैं बोली, "कहिए।"

उन्होंने कहा, "मेरा माली मेक्सिकन है, वह अंग्रेजी नहीं बोल पाता है और मुझे स्पेनिश नहीं आती है। क्या आप मेरी इतनी सहायता कर सकती हैं कि मैं उससे जो पूछूं, उसका अंग्रेजी में अनुवाद कर दें।"

मैंने कहा, "पर मुझे स्पेनिश नहीं आती है।"

वह अचंभित होकर बोले, "आप स्पेनिश नहीं बोलती हैं? आप दक्षिण अमरीका से नहीं हैं क्या?"

मैं बोली, "नहीं। मैं सीरिया से हूँ।"

वह बोल पड़े, "सीरिया से! क्या, सीरिया में स्पेनिश नहीं बोली जाती है?"

मैंने कहा, "नहीं। हम लोग अरबी बोलते हैं।"

उन्होंने कहा, "क्षमा कीजिए। मुझे पता नहीं था।"

नब्बे प्रतिशत अमरीकी यह सोचने तक का कष्ट नहीं करते कि सीरिया विश्व के मानचित्र पर है कहाँ, परंतु नब्बे प्रतिशत अरबी यही सोचते रहते हैं कि अमरीकी अपना अधिकांश समय उनकी गुप्तचरी करते हुए और इस्लाम को नष्ट करने का षडयंत्र रचते हुए बिताते हैं, जिससे कि उनके तेल और संसाधन पर नियंत्रण कर सकें।

1984 में मेरे पति और उनके साथी व्याख्याताओं के एक समूह को सीरिया के उच्चतर शिक्षा मंत्रालय की ओर से इंग्लैण्ड भेजा गया था। तीन मास के उस कार्यक्रम में वहाँ उन्हें एक विश्वविद्यालय में अध्यापन पद्धतियों का अध्ययन करना था। अध्ययन कार्यक्रम के समय इस प्रतिनिधिमंडल का ध्यान रख रहे ब्रिटिश विश्वविद्यालय के व्याख्याता ने इस समूह के सदस्यों को अपने घर भोजन पर आमंत्रित किया। उन्होंने अपने घर पर इन सदस्यों का बहुत सत्कार किया। मेरे पति के सीरिया लौटने के कुछ मास पश्चात्, वो ब्रिटिश व्याख्याता सीरिया आए, और उसी विश्वविद्यालय में ठहरे जहाँ मेरे पति पढ़ाते थे। उन्होंने ब्रिटेन में जो सत्कार किया था, उससे अभिभूत होकर मैंने और मेरे पति ने उन्हें अपने घर के निकट स्थित एक रेस्तरां में दिन के भोजन के लिए आमंत्रित किया। संयोग कुछ ऐसा रहा कि उसी दिन मेरे बेटे का तीसरा जन्मदिन भी था, पर हमें उसके लिए केक और उपहार क्रय करने की इच्छा अगले मास तक के लिए स्थगित कर देनी पड़ी, क्योंकि उन्हें उस रेस्तरां में भोजन कराने में मेरे पति का मासिक वेतन लगभग पूरा व्यय हो चुका था।

यद्यपि उनके आने से हम पर जो आर्थिक बोझ पड़ा था, वही एक समस्या नहीं थी। उनके आने को लेकर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति ने मेरे पति से जो प्रश्न पूछे, वह अधिक दुखदायी था। उनके प्रश्नों में सबसे दुखदायी यह था: उनको आमंत्रित करने से पूर्व आपने एक बार भी सोचा क्या कि वो अंतर्राष्ट्रीय यहूदी समुदाय के धन पर पलने वाले ब्रिटिश गुप्तचर हो सकते हैं, और क्या पता कि वो यहाँ विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक रहस्यों

अथवा संभवत: सैन्य भेद चुराने की योजना से यहाँ आए हों? इन सब से मेरे पति और मैं कुछ दिन तक चिंता की स्थिति में रहे और मानसिक रूप से टूट जाने की स्थिति में आ गए थे। भले ही यहूदी एजेंट होने का आरोप दुष्प्रचार ही क्यों न हो और इससे जीवन पर खतरा न भी हो, परंतु इससे निश्चित ही हमारी छवि और भविष्य दोनों नष्ट हो सकता था।

जब मुझे अपना बाल्यकाल ध्यान आता है और मैं यहूदियों, ईसाइयों और अन्य अ-मुस्लिमों के विरुद्ध अपने शिक्षकों और मजहबी समूह के व्यक्तियों द्वारा आरोप मढ़ने की घटनाओं का स्मरण करती हूँ, तो अपने आप से कहने लगती हूँ: "यदि पढ़े-लिखे मुसलमान हमारे धार्मिक एवं सांसारिक दोनों प्रकार के विद्यालयी पाठ्यक्रमों में से घृणा से भरी हुई सामग्री हटा दें, और धर्म, जाति अथवा राष्ट्रीयता से परे होकर एक-दूसरे से प्रेम सिखाने वाली सामग्री पर ध्यान केंद्रित करें, तो वे समस्त मुस्लिम संसार को पिछड़ापन, भूख, निर्धनता और अज्ञानता से बचा पाएंगे। वह घृणा शत्रु के नाश से पूर्व हमारा अपना ही नाश कर देती है। घृणा उस अम्ल के समान होती है, जो उस सतह को तो कम हानि पहुंचाती है जिस पर गिरती हैं, परंतु यह उस पात्र को अधिक जलाती है जिसमें रखी होती है।

जब मैं इस शिक्षा प्रणाली की आलोचना करती हूँ, तो अधिकांश मुसलमान मुझ पर आरोप लगाने लगते हैं कि मैं यहूदियों के धन पर पल रही हूँ और उनसे बड़ी मात्रा में धन ले रही हूँ। यद्यपि उनके इस आरोप से मुझे तनिक भी चिंता नहीं होती है, क्योंकि मुझे पता है कि वे तार्किक आधार पर मेरा सामना नहीं कर सकते हैं। मैं यहूदियों का उतना बचाव नहीं कर रही हूँ, अपितु उससे कहीं अधिक मैं मुसलमानों की रक्षा करना चाहती हूँ। पूरे अरब में बालक-बालिकाएं इस घृणा में क्यों साने जाएँ, वे अपने जीवन के सर्वोत्तम वर्ष हत्या और प्रतिशोध के विचारों को पालते हुए क्यों जिएं?

मेरी तीनों संतानों ने अपनी प्राथमिक शिक्षा अमरीकी विद्यालयों में ग्रहण की है। कभी ऐसा नहीं हुआ कि तीनों में से किसी ने घर आकर कहा

हो कि उनके अध्यापकों ने सिखाया है कि मुसलमान आतंकवादी होते हैं, उनसे संघर्ष किया जाना चाहिए। तीनों में से किसी को विद्यालय में यह नहीं पढ़ाया गया कि ईसाई धर्म ही एकमात्र सच्चा धर्म है, और जो कोई इस धर्म को स्वीकार नहीं करेगा, वह विधर्मी व शत्रु है। किसी को विद्यालय में यह नहीं सिखाया गया कि ईश्वर मुसलमानों से घृणा करता है।

मैं सदैव अपने आप से प्रश्न करती रहती हूँ: अमरीकी शिक्षा प्रणाली से शिक्षित मेरी संतानें तो ऐसे बड़ी हुई हैं कि वे किसी से धर्म, जाति अथवा देश के आधार पर घृणा नहीं करती हैं। पर मुझे यह सौभाग्य क्यों नहीं मिला, मैं क्यों जीवन के अधिकांश आयु में घृणा में जलती रही, और मेरे देश में लोग आज भी घृणा की इस आग में क्यों जल रहे हैं? क्यों मेरी जन्मभूमि के देश में लोग प्रेम करना नहीं सीख पाते हैं, क्यों वे अन्य देशों के नागरिकों के समान एक-दूसरे को प्रेम करने वाले रचनात्मक, दक्ष और प्रसन्न व्यक्तियों की भाँति नहीं रहते हैं? क्यों मेरे देश में लोग उन लोगों को स्वीकार करना नहीं सीख पा रहे हैं जो उनसे भिन्न धर्म को मानते हैं, क्यों वे दूसरों के साथ शांति और सद्भावना से नहीं रह पा रहे हैं? हमने जीवन भर दूसरों से घृणा करना ही सीखा है, और इस घृणा ने दूसरों की तुलना हमें स्वयं को ही अधिक क्षति पहुँचाई है।

जब मैं प्राथमिक स्तर की चौथी कक्षा में थी, तो सीरिया को संयुक्त राष्ट्र खाद्य सहायता अभिकरण की ओर से सहायता मिली थी। इसमें अमरीका में निर्मित नेस्ले का सूखा (पाउडर) दूध का ट्रक भी आया था। इस सहायता के साथ एक प्रतिबंध भी लगाया गया था कि यह दूध केवल प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों को ही वितरित किया जाएगा। यह प्रतिबंध न लगाया गया होता, तो सीरिया के अधिकारी दूध का पूरा का पूरा ट्रक चोरी से बिक्री कर देते और उससे मिला धन अपनी जेब में रख लेते। वह दूध हम विद्यार्थियों में बांटा जाने लगा। औसत रूप से प्रति विद्यार्थी एक गिलास दूध प्रतिदिन दिया जाता। हमें यह दूध उस दिन विद्यालय समाप्त होने पर पीना होता था। इससे जुड़ी घटनाओं पर मुझे अपने अध्यापक की

एक बात स्मरण हो उठती है। वो प्रतिदिन कक्षा में कहा करते थे: "क्या तुम सोच सकते हो कि क्या हो रहा है? अमरीका सीरिया के दूध दान कर रहा है, विश्व को यह दिखाने के लिए कि वह बहुत दयावान् है, पर यही अमरीका इजराइल के बालक-बालिकाओं को टैंक देता है!" हममें से अधिकांश विद्यार्थी वह दूध नहीं पीते थे; उसे विद्यालय के क्रीड़ा स्थल में किसी कोने में उड़ेल देते थे।

आज जब मैं सोचती हूँ कि क्यों हम अपने को अमरीकी दूध पीने से रोक रहे थे तो इसका कोई सटीक उत्तर नहीं सूझता है, केवल इतना ही समझ में आता है कि अध्यापकों ने हमारे बाल मन में जो विष भरा था, अमरीका और उसके दूध के विरुद्ध यह घृणा उसी का परिणाम थी। हम अपने संतानों में यह विष क्यों भरते हैं? जब से मैं अपने नए समाज में सत्य का भान करने का प्रयास करने लगी, यह प्रश्न मेरे समक्ष आता रहा है। जब मैं पूरी शक्ति से चीख पड़ती हूँ, "बंद करो यह विष भरना!", तो मैं ऐसा केवल यहूदियों और ईसाइयों की रक्षा के लिए नहीं करती हूँ, अपितु मैं ऐसा इसलिए भी करती हूँ कि अपनी मातृभूमि की संतानों की रक्षा कर पाऊं और जिस घृणा के अम्ल ने मेरी पीढ़ी को जला डाला है, उससे उन संतानों की रक्षा कर सकूं।

मुझे आज भी पूरा ध्यान है कि किस प्रकार हमारे धार्मिक अध्यापक रसूल मुहम्मद के कथन और कहानियां सुना-सुना कर बताया करते थे कि वह यहूदियों और ईसाइयों के साथ कैसा व्यवहार करता था। मुझे विस्मृत नहीं हुआ है कि घृणा भरी उन बातों का हमारी आत्मा और मानसिक स्वास्थ्य पर कितना दुष्प्रभाव होता था। एक कहानी जो मेरे मन-मस्तिष्क में आज तक अंकित है, वह यह थी कि एक बार मुहम्मद और उसके अनुयायियों के एक समूह ने दूर कहीं कोई स्वर सुना। उन अनुयायियों ने उससे पूछा: "हे अल्लाह के रसूल, यह कैसा कोलाहल है?" इस पर वह बोला: "यह कब्र में लेटे उन यहूदियों के कष्ट व वेदना का स्वर है (सही बुखारी 1286)।"

एक अन्य हदीस में मुहम्मद कहता है: "एक बहुरूपिया आएगा और अपने को मसीहा होने का स्वत्व (दावा) करेगा, और सत्तर हजार यहूदी उसका अनुसरण करेंगे, उनमें से प्रत्येक यहूदी तलवार लिए होगा। किंतु तभी वह मसीहा उन्हें पकड़ लेगा, मार डालेगा, और उन सभी यहूदियों को पराजित कर देगा। जब वे पत्थरों और वृक्षों के पीछे छिपेंगे, तो प्रत्येक पत्थर और वृक्ष कह उठेगा: 'हे अल्लाह के सेवक, हे मोमिन, यहाँ भी यहूदी है, आओ और उसे मार डालो'। केवल यह गरकद का वृक्ष अपवाद होगा जो कि यहूदियों के वृक्षों में से एक है, और यदि वे इसके पीछे छिपते हैं, तो यह वृक्ष प्रकट नहीं करेगा कि वे वहाँ हैं।" आज भी ऐसे मुसलमान हैं जो यह दुष्प्रचार करते रहते हैं कि इजराइल के यहूदी इस हदीस की सत्यता को स्वीकार करते हैं और इसीलिए वे अपने छिपने के लिए गरकद के वृक्ष लगाने लगे हैं।

जब भी मुहम्मद अपने अनुयायियों को कुछ करने से रोकना चाहता, तो कह देता: "अल्लाह ने यहूदियों को शाप दे दिया है क्योंकि उन्होंने अमुक कार्य किया था।" उदाहरण के लिए, उसने कहा: "अल्लाह ने यहूदियों को शाप दे दिया है क्योंकि उन्होंने अपने संदेशवाहकों (पैगम्बरों) की समाधियों को पूजा का स्थान मान लिया था (सही बुखारी, 823)।" एक दिन एक व्यक्ति ने पूछा: "हे अल्लाह के रसूल, मेरे पास एक लौंडी (सेक्स-स्लेव) है जो मुझे अच्छी लगती है, और मैं उसके साथ वही सब करना चाहता हूँ जो एक पुरुष स्त्री के साथ करता है, पर मुझे भय लगता है कि वह गर्भवती न हो जाए, इसलिए मैं अपना वीर्य उसके यौनांग से बाहर ही गिरा देता हूँ। किंतु मैंने सुना है कि किसी औरत के यौनांग से बाहर वीर्य गिरा देना भ्रूण हत्या के बराबर अपराध माना जाता है। क्या यह बात सत्य है?"

उसने एक हदीस में उत्तर दिया: "अल्लाह यहूदियों पर कोप लाए, क्योंकि वे ही यह कहते हैं! यदि अल्लाह ने निश्चित कर रखा है कि वह गर्भवती होगी तो तुम्हारी सामर्थ्य नहीं है कि चाहकर भी उसके गुप्तांग के

बाहर गिरा पाओ?" यदि माना जाता है कि शिक्षा मानव के बुद्धि-विवेक को गढ़ने वाली होती है, तो पूरा का पूरा मन व बुद्धि शिक्षा से जन्मी मानी जानी चाहिए। पर तनिक सोचिए, ऐसी हदीसों से शिक्षा ग्रहण करने वाले व्यक्तियों का मन-मस्तिष्क कैसी बुद्धि गढ़ता होगा? क्या यह सच नहीं है कि अपनी इसी धर्मांध व विचित्र शिक्षा के कारण ही कोई व्यक्ति मुसलमान होता है? है न?

अध्याय 12

सभ्यताओं का संघर्ष

मुझे सितम्बर 11 के आतंकवादी आक्रमण से आघात लगा, पर मैं इस घटना से अचंभित नहीं थी। रात-दिन मैं सोच ही रही थी कि ऐसी कोई घटना होगी। मैं ऐसा इसलिए सोचती थी, क्योंकि यहाँ अरबी भाषा के समाचार पत्रों में जो कुछ लिखा जा रहा था, उसे मैं पढ़ती रहती थी और हमारे अपने समुदाय के सम्मिलनों में जो कहा-सुना जा रहा था, उस पर भी मेरा ध्यान था। अरब संसार में ऐसी किसी घटना को रहस्य नहीं माना जाता है, और भविष्य में जो कुछ होने वाला है उसके संकेत वर्तमान के अपशकुनों में दिखने लगते हैं। पर बहुत से लोग किसी न किसी कारणवश संकेतों को नहीं समझ पाते हैं, या तो वे समझकर भी छिपा ले जाते हैं अथवा अज्ञानतावश नहीं समझ पाते हैं। सितम्बर 11 से पूर्व अमरीकी अधिकारियों में इतना अहंकार और अज्ञानता भरी थी कि उन्होंने देख-समझ कर भी इस घटना के संकेतों को अनदेखा कर दिया।

अरब में एक लोककथा प्रचलित है। एक व्यक्ति अश्व पर सवार होकर घने मरुस्थल से जा रहा था। उसी मरुस्थल में एक दूसरा यात्री भी अपने मार्ग से भटक कर आ गया था। भटके हुए उस यात्री ने अश्वारोही (घुड़सवार) को रुकने का संकेत करते हुए कहा कि वह उसे भी साथ ले चले। रेगिस्तान के अरबियों को जीवन के अनुभव ने सिखाया था कि मार्ग में लुटेरे भी यात्री का रूप धरकर घूमते रहते हैं। परंतु, तब भी वह व्यक्ति उस यात्री पर दया दिखाते हुए रुक गया और उसे भी अपने साथ अश्व पर बिठा लिया। कुछ ही समय बीता था कि उस यात्री ने अश्वारोही से कहा, "तुम्हारा अश्व कितना सुंदर है।" थोड़े समय पश्चात्, वह पुनः कहने लगा, "अल्लाह कसम, हमारे पास यह कितना सुंदर अश्व है न!"

अश्वारोही तत्काल रुक गया और उस यात्री से बोला, "मेरे अश्व से उतर जा, नहीं तो तुझे मार डालूंगा!" पहले तो तू बोला कि "तुम्हारे पास" कितना सुंदर अश्व है, इसके पश्चात् कहने लगा "यह अश्व", और अब कह रहा है कि यह कितना सुंदर अश्व "हमारे पास" है। कुछ ही क्षण में तू कहने लगेगा कि यह "मेरा अश्व" है और मुझे इससे उतार कर नीचे फेंक देगा!" अमरीकियों को राजमार्गों पर लुटेरों के होने का अनुभव कम ही होता है, इसलिए वे आने-जाने वाले यात्रियों को अपने अश्वों की पवित्रता छीनने से नहीं रोकते हैं!" वे यह अनुमान नहीं लगा पाते कि सामने वाला संवाद कर रहा है अथवा तक्रिया (छल-कपट) कर रहा है। अमरीकियों की कथनी और करनी एक होती है, और इसीलिए उन्हें यह समझ में ही नहीं आता है कि उनका सामना ऐसे व्यक्तियों से हो रहा है जो इस बात में दक्ष हैं कि कहें कुछ और करें कुछ और, अर्थात जिनके मुंह में अल्लाह बगल में छुरी होती है। अमरीकी नहीं समझ पाते हैं कि ये लोग जो कहते हैं वह कभी नहीं करते, और जो करते हैं वह कभी नहीं बोलते हैं।

केवल विधि ही समाज की रक्षा नहीं कर सकती है। क्योंकि कोई विधि तभी प्रभावकारी हो सकती है, जब वहाँ की जनता में नैतिक आधार हो, और इसीलिए किसी भी राष्ट्र को कोई विधि निर्माण करने अथवा लागू करने से पूर्व कुछ निश्चित नैतिकताओं को प्राप्त करना होता है। किसी समाज की नैतिकताएं ही वो तत्व होती हैं जो इसकी विधियों का गठन करती हैं और उन विधियों के प्रवर्तन को सुनिश्चित करती हैं। समाज में अंतर-वैयक्तिक संबंध जटिल होते हैं, और यह आवश्यक नहीं होता है कि समाज को संचालित करने वाली विधियां प्रत्येक व्यक्तिगत प्रकरण से निपटने में सक्षम हों। यह कार्य केवल नैतिकता कर सकती है। जब मैं एक आदिम समाज से निकलकर सभ्य समाज में आई, तो इन दोनों समाजों में विशाल अंतर को देखकर अत्यंत प्रभावित हुई। तबसे मैं इन अंतरों के पीछे के कारणों को ढूंढ़ने लगी, और आज तक ढूंढ़ रही हूँ।

यह ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची हूँ कि हम मुस्लिम समाजों में जो अनुभव कर रहे हैं, वो सरकार, राजस्व, संसाधन अथवा विधि का संकट नहीं है, अपितु यह नैतिकता का संकट है। हमारे मुस्लिम समाज मजहबी विधियों से संचालित होते हैं। ये मजहबी विधियां बलपूर्वक थोपी जाती हैं, और अपने को स्थायी बनाए रखने और अपने को बचाए रखने के साधन के रूप में भय पर निर्भर रहती हैं। यथा, मैंने पहले ही बल देकर कहा है कि इस्लाम एक ऐसे शुष्क व निर्जन वातावरण में जन्मा था, जहाँ व्यक्तियों को जीवित रहने के लिए संघर्ष करना पड़ता था। इसने उस वातावरण और उस युग की प्रथाओं को ग्रहण किया, आत्मसात् किया, और तत्पश्चात् समय के साथ इनमें परिवर्तन की किसी भी संभावना को नष्ट कर दिया।

संस्कृति में धर्म सिमटा होता है, और यह समय के अनुकूल इसे ग्रहण करता है। अमरीकी संस्कृति ईसाई धर्म और यहूदी धर्म से प्रभावित था- और वास्तव में आज भी इनसे प्रभावित है- किंतु तब भी इस संस्कृति ने समय के साथ सामंजस्य बिठाते हुए अपने में परिवर्तन किया है, और इसी के साथ धर्म के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है। संस्कृति ही है जो धर्म को आकार देती है, न कि धर्म संस्कृति का रूप निर्धारित करता है। जैसे ही धर्म व्यक्तियों के जीवन में हस्तक्षेप करता है और उन पर नियंत्रण करता है, इसकी आध्यात्मिकता नष्ट हो जाती है, तथा यह जनता की निरंतर परिवर्तनशील आवश्यकताओं के साथ सामंजस्य बिठा पाने में अक्षम दिखने लगता है। मुस्लिम मजहबी नेता टीवी पटल पर हमसे भिड़ जाते हैं, और एक ही सांस में मासिक धर्म, बैंकों के लाभ, पाकिस्तानी नाभिकीय बम और सुनामी आदि नितांत भिन्न व असंबद्ध विषयों पर एकसाथ बात करते हैं।

इस्लाम की छाया जिन भी देशों अथवा क्षेत्रों में पड़ी है, वहाँ की संस्कृति को इसने नष्ट कर दिया, किंतु अरब क्षेत्र ऐसा रहा कि जहाँ इसने किसी अन्य क्षेत्र की अपेक्षा देशज अरब संस्कृति के सभी चिह्नों को पूर्णत:

मिटा दिया। इस संस्कृति में अब इसके मूल विशिष्ट लक्षण शेष नहीं हैं; चौदह सौ वर्षों से मुस्लिम विधियां ही हैं, जो इसके लक्षणों को निरूपित कर रही हैं। जार्डन में जन्मा और पला-बढ़ा कोई ईसाई अपने व्यवहार और चिंतनशैली में किसी पाकिस्तानी मुसलमान की तुलना में बड़ा इस्लामी होता है। जैसा कि मैंने पहले ही कहा है कि इस्लाम ने सभी मुस्लिम लोगों की संस्कृति को क्षति पहुँचाई है, किंतु क्यूंकि कुरआन अरबी में लिखा गया है और किसी अन्य भाषा में इसका अनुवाद निषिद्ध किया गया है, इसलिए यह उस प्रकार से अन्य संस्कृतियों की विशिष्टताओं को नष्ट नहीं कर सका, जिस प्रकार इसने अरब की मूल संस्कृति के साथ किया।

अ-अरबी लोग अपनी मूल संस्कृतियों के अवशेषों को सुरक्षित रखने और इस्लामीकरण से उनकी रक्षा कर पाने में सफल रहे हैं। ये अवशेष, भले ही विरले और जीर्णशीर्ण अवस्था में हों, किंतु इन्होंने इनके राष्ट्रों को अरब देशों से भिन्न बनाए रखा है। अरबी लोगों, जो कि इस्लाम से अधिक गहराई से प्रभावित हैं, को वास्तव में इस्लाम से गंभीर क्षति पहुंची है। इस्लाम के आरंभ से लेकर अभी तीस वर्ष पूर्व तक अ-अरबी देश अपने देश की मूल विशिष्टताओं को सुरक्षित रखने में सफल रहे थे, किंतु जब से सऊदी राक्षस ने अपनी आतंकवादी विचारधारा और धन के साथ इन देशों में घुसपैठ किया, यहाँ भी मूल संस्कृति व विशिष्टाओं को तेजी से क्षति पहुँचने लगी है। इंडोनेशिया इसका एक उदाहरण है।

इस्लाम एक विधिक संहिता है, जो एक ऐसे युग में रची गई जब हमला करने और लूट का माल पाने की मानसिकता व्याप्त थी, और, परिणामस्वरूप, हमला करना और संपत्ति लूटना इस्लाम की धुरी बन गई। इस्लाम नैतिकता का कोई आधार बनाने में असफल रहा; अपितु इसने तो इस्लाम से पहले के अरब के नैतिक गुणों पर भयानक प्रहार कर उन्हें नष्ट कर दिया।

इस्लाम के जन्म के पूर्व के प्रसिद्ध अरबी कवियों में से एक अंतारा अल-अब्सी की एक कविता है, जिसमें वह अपने सद्गुणों का वर्णन करते हुए

कहते हैं कि किस प्रकार उन्होंने अपने जीवन में कभी "हड़पी अथवा लूटी हुई संपत्ति" को स्पर्श तक नहीं किया है। उनके युग के पश्चात् इस्लामी युग आया और इसने हमला व चढ़ाई करने को विधिसम्मत बनाते हुए ऐसी संस्कृति रची जिसमें जब लूट की धन-संपत्ति बांटने की बात आई तो अपने रसूल और अपने अल्लाह दोनों को एक ही श्रेणी में रख दिया, और इन दोनों को लूट की धन-संपत्ति में पांचवां भाग देने का आदेश दिया।

इस इस्लामी संहिता के गुण-दोष की व्याख्या चाहे जैसे की जाए, किंतु यह इस लूटपाट की मानसिकता से ऊपर नहीं उठ सका। वहाँ लोग दूसरों की हत्या इसलिए कर देते थे कि कहीं उनकी हत्या न हो जाए, और दूसरों को इसलिए लूट लेते थे कि उनके अपने पेट भरने की व्यवस्था हो जाए। मुहम्मद एक विचारक की अपेक्षा एक लड़ाका था। वह अपने अनुयायियों के लिए ऐसी कोई नैतिक विरासत छोड़कर नहीं गया कि वो लोग उस विरासत को अपने समाज के आधार के रूप में प्रयोग कर सकें अथवा उस विरासत के आधार पर अपने समाज की स्थापना कर सकें। न ही उसने इस्लामी कानून के बाहर कोई मार्ग छोड़ा कि उस पर चलकर मुसलमान अपनी स्वतंत्रता का भोग कर सकें, इसके बनिस्बत उसने समय की मांग को देखते हुए स्वेच्छाचारिता से मनमानी नैतिक संहिता गढ़ डाली।

मुहम्मद के विषय में लिखी गई और दी गई सबसे महत्वपूर्ण सुन्नत उसके हमलों और हमलों के समय हुई घटनाओं से जुड़े हैं। उसके सभी उपदेश उसी संसार से निकले हैं जिसमें वह रहता था और उसकी बातें उसी संसार की उत्पाद थीं।

यदि आप रसूल के आत्मवृत्त को आरंभ से अंत तक पढ़ेंगे तो पाएंगे कि उसमें किसी भी प्रकार के नैतिक प्रभाव का लक्षण नहीं है। कुछ लोग मुहम्मद के कार्यों और कथनों में नैतिकता के अभाव के आरोप का विरोध करते हुए कह सकते हैं कि मुहम्मद की घटनाओं को उनके ऐतिहासिक संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, किंतु उनकी इस बात का कोई महत्व नहीं है, क्योंकि समय भले ही परिवर्तित हो जाए, पर नैतिकता की

परिभाषा एक ही रहती है। संस्कृति तो समय अथवा स्थान के साथ-साथ परिवर्तित हो जाती है, किंतु नैतिकता समय व स्थान पर निर्भर नहीं होती हैं, अपितु यह सभी स्थानों एक सी ही लागू होती हैं। नैतिकता वह उभय संहिता होती है, जो विश्व के सभी स्थानों पर और सभी समयों में सभी व्यक्तियों के लिए एक ही होती है। जो कुछ बेवर्ली हिल्स में नैतिक माना जाएगा, वही अफ्रीका की जनजातियों में भी नैतिक समझा जाएगा और इसी प्रकार जो कुछ अफ्रीका की जनजातियों के लिए नैतिक माना जाएगा, वही बेवर्ली हिल्स के लोगों को लिए भी नैतिक माना जाएगा। दो राष्ट्रों की संस्कृतियां भिन्न-भिन्न हो सकती है, किंतु नैतिक संहिताएं सभी युगों में और सभी स्थानों पर लगभग एक समान होती हैं।

नैतिक संहिता प्राकृतिक नियमों का वह समूह होता है, जो व्यक्तियों को बताता है कि क्या किया जाना उचित है, और कौन सा कार्य अनुचित है जिससे दूर रहा जाए। जब प्रकृति उनकी रूपरेखा तैयार करती है, तो वह मनुष्य को उचित व अनुचित में भेद करने की तार्किक अथवा सहज योग्यता प्रदान करती है, जिससे कि मनुष्य इन नियमों पर चल सके। इस संहिता का अनुसरण करने से मनुष्य जाति सुरक्षा के साथ जीवित रहने का आश्रय पाता है।

मनुष्य की सभी भावनाओं में भय वह भावना होती है, जो मनुष्य की आत्मा को सर्वाधिक क्षति पहुंचाती है। जब लोग भय का आखेट हो जाते हैं, तो वे उचित और अनुचित में भेद करने की क्षमता खो देते हैं, क्योंकि उनका प्रत्येक कार्य व व्यवहार भय की प्रतिक्रिया स्वरूप होने लगता है। जिस मरुस्थलीय वातावरण में इस्लाम का जन्म हुआ, उसमें मनुष्य के विचार और व्यवहार में उस वातावरण में जीवन के प्रति भय के लक्षण परिलक्षित होते थे। व्यक्ति सुरक्षित अनुभव नहीं करते थे, और उस समय व स्थान पर प्रचलित प्रथाएं इसी विध्वांसत्मक भावना की प्रतिक्रियास्वरूप जन्मी थीं।

इस्लाम के आगमन से साथ ही और बड़ी दुर्गति आरंभ हो गई, क्योंकि इसने इन बुरी प्रथाओं को अल्लाह की स्वीकृति दे दी और जिसने इसको मानने वालों एवं न मानने वालों के मध्य एक तीखी विभाजनकारी तलवार तान दिया। जिस किसी ने इन इस्लामी प्रथाओं को अस्वीकार किया, उसे नास्तिक कह दिया गया और उसे मार डाला गया। इस्लाम ने अपने अनुयायियों पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए भय के प्रयोग का आश्रय लिया और उनके शुष्क मरुस्थलीय वातावरण के विद्यमान भय में तलवार का भय भी जोड़ दिया। इससे मुसलमान उचित को उचित और अनुचित को अनुचित कहने की क्षमता से वंचित हो गए।

जिस समाज में मनुष्य उचित व अनुचित में भेद करने की तार्किक व सहज क्षमता को खो देता है, वह समाज समस्त मानवता पर अभिशाप हो जाता है। धर्मों ने उचित को उचित और अनुचित को अनुचित कहने की क्षमता को क्षति पहुँचाई है, क्योंकि धर्मों ने मनुष्य को यही सिखाया है कि उसे ईश्वर के दंड से भयभीत होना चाहिए और ईश्वर के किसी आदेश को अस्वीकार नहीं करना चाहिए।

यद्यपि इस्लाम इन बातों में अन्य धर्मों से भिन्न है, क्योंकि यह अपने अनुयायियों को न केवल जहन्नुम (नर्क) की धमकी देता है, अपितु शीघ्र ही जहन्नुम में भेजने के लिए मार डालने की भी धमकी देता है। लोग अल्लाह द्वारा दंड देने के विचार से उतना नहीं भयभीत होते हैं, जितना कि इस बात से कि वे मर जाएँगे। मुसलमान मुहम्मद की बातों का पालन बिना कुछ सोचे-समझे करते हैं, केवल इस भय से कि मानो उनके गले पर तलवार रखी हो। मुहम्मद ने एक हदीस में अपने अनुयायियों से कहा है: "ऊंट का मूत्र पियो, इसमें सभी रोगों को दूर करने की क्षमता होती है।" एक मुसलमान भले ही विश्व के किसी प्रतिष्ठित चिकित्सा महाविद्यालय से चिकित्सा की पढ़ाई किए हो, परंतु वह तब भी मानता है कि ऊंट का मूत्र किसी भी रोग को ठीक कर सकता है। यद्यपि, उसकी इस मान्यता के पीछे

कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता है, केवल खतरनाक तलवार का भय ही उसे यह मानने को बाध्य करता है।

चौदह सौ वर्षों में कोई मुसलमान स्पष्ट रूप से सामने आकर उचित और अनुचित में भेद करने की अपनी योग्यता दिखाते हुए अपने साथी मोमिनों से यह कहने का साहस नहीं कर सका है: "रसूल मुहम्मद ने उसी दिन यहूदी महिला साफिया से शादी की, जिस दिन उसके पति, पिता और भाई की हत्या की।" वह यह सोचने का साहस तक नहीं कर पाता कि इस प्रकार बलपूर्वक की गई शादी कितनी अनैतिक या अवैधानिक थी। मुसलमान इसे अपने मजहब का अनिवार्य तत्व मानते हैं कि रसूल मुहम्मद ने जो कहा, जो किया, वो सब अल्लाह की प्रेरणा है। इस्लाम अपने किसी अनुयायी को इसकी अनुमति नहीं देता है कि वह सर्वकालिक व सर्वस्थानिक नैतिक मानकों पर मुहम्मद की कथनी और करनी को परखे और संदेह करे।

आइए, अरब मुस्लिम इतिहासकार इब्न अल-असीर द्वारा मुहम्मद के जीवन पर लिखी गई एक कहानी को देखें: "मुहम्मद, अल्लाह उन पर कृपा करे, उन्हें मुक्ति दे, ने काब बिन अल-अशरफ की हत्या के लिए पांच व्यक्ति भेजे। काब बिन अशरफ मुहम्मद की आलोचना कर रहे थे और कुरैश जनजाति को उसके विरुद्ध उकसा रहे थे। उन पांच में से एक काब का भाई अबू नायला था। मुहम्मद उसे एक स्थान बाक़ी अल-ग़रक़ाद नामक स्थान पर ले गया और इसके पश्चात् यह कहते हुए उन्हें वहाँ से भेजा, 'अल्लाह के नाम से जाओ। अल्लाह उनकी सहायता करे और यह कहकर वह वापस लौट आया।'"

जब ये पांचों व्यक्ति काब के शिविर में पहुंचे, तो अबू नायला ने उन्हें पुकारा। काब ने अपना कंबल हटाया और बाहर आए। उन्होंने अपने भाई का स्वर सुना, तो उन्हें नहीं लगा कि कोई खतरा है। परंतु उनके भाई ने विश्वासघात किया और उनकी हत्या कर दी। उन्होंने काब का सिर लिया और बाक़ी अल-ग़रक़ाद वापस आ गए। यह वही स्थान था, जहाँ मुहम्मद

ने उन्हें छोड़ा था। उन लोगों ने वहाँ कहा, 'अल्लाहू-अकबर'। जब वे मुहम्मद, अल्लाह उन पर कृपा करें, मुक्ति प्रदान करें, के पास पहुंचे, तो वह नमाज पढ़ रहा था। उसने उन लोगों से कहा, 'तुम सम्मानपूर्वक सफल हुए हैं,' और उन्होंने काब का सिर उसके हाथों में उछाल दिया।"

जब कोई मुसलमान इस कहानी को पढ़ता है, तो वह चाहे कितना भी शिक्षित या जानकार हो, उसके मन में कहीं से भी यह नहीं आता है कि पूछ सके: "इस घटना में वह मिशन कहाँ है जो अल्लाह ने अपने रसूल को सौंपा था?" जब ईराक और अन्य मुस्लिम देशों में आतंकवादी अपने बंधकों का सिर काट देते हैं और उन्हें लेशमात्र भी दुख नहीं होता है, तब विश्व पूछता है: "ये लोग ऐसा क्यों करते हैं?" जो मुसलमान अपने को उदारवादी कहते हैं, वो कहने लगते हैं: "ये आतंकवादी इस्लाम की शिक्षाओं के ठीक से नहीं समझते हैं।" पर मैं पूछती हैं: "क्या इन लोगों ने मुहम्मद की उस घटना को भी ठीक से नहीं समझा है जिसमें मुहम्मद के साथियों ने काब बिन अल-अशरफ की हत्या की, और इसके पश्चात् उनके सिर को मुहम्मद के हाथों में उछाल दिया?"

यदि ज़रक़ावी ने वह समझने में भूल की जो मुहम्मद ने कहा, जैसा कि कुछ मुसलमान दावा करते हैं, तो क्या उसने जो किया वह भी ठीक से नहीं समझा था? रसूल के आत्मवृत्तों में काब की हत्या जैसी घटनाएं भरी पड़ी हैं, और यही आत्मवृत्त मुस्लिम संसार में शिक्षा का स्रोत है। अधिकांश मुस्लिम इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि कवयित्री उम्म क़िर्फा की आयु उस समय सौ वर्ष की थी, जब मुहम्मद के आदेश पर उसके अनुयायियों ने उनकी हत्या कर दी। क़िर्फा की हत्या केवल इसलिए कर दी गई थी, क्योंकि उन्होंने मुहम्मद पर एक व्यंग्यात्मक कविता लिखी थी। मुहम्मद के अनुयायियों ने उम्म क़िर्फा के दोनों पांवों को दो ऊंटों से बांध दिया और दोनों ऊंटों को विपरीत दिशाओं में दौड़ा दिया, जिससे उनका शरीर मध्य से दो भागों में पृथक हो गया। मुसलमान इस हत्या में गर्व का अनुभव करते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि यह मुहम्मद के अनुयायियों का

इस्लाम के प्रति निष्ठा का सूचक है। मुहम्मद के शब्द और कार्य चौदह सौ वर्षों से प्रत्येक मुसलमान का "नैतिक दिक्सूचक" बना हुआ है, चाहे वह कहीं भी रह रहा हो।

एक अरब लोकोक्ति कहती है: आप दलदल में धंसे हुए किसी व्यक्ति को निकाल सकते हैं, किंतु कोई ऐसा व्यक्ति जिसके मन में ही दलदल हो गया हो, उसे निकालना असंभव होता है। इस्लामी संसार के लोगों ने अपनी शत्रुता में वही दलदल अपने मन-मस्तिष्क में भर रखा है और वे नैतिक संकट का अनुभव कर रहे हैं। इन लोगों को उन पापों के लिए अपराध बोध करना चाहिए जो उन्होंने किया है। कुछ लोग प्रश्न कर सकते हैं: इस संकट से इस्लाम का क्या लेना-देना है? इस्लाम वही रहेगा, जो वह रहा है: मुस्लिम संसार में चौदह सौ वर्षों से शिक्षा का जो स्रोत रहा है, वह एकमात्र स्रोत भले न रहे, पर इसका मुख्य स्रोत तो बना ही रहेगा, और मुसलमान इसी शिक्षा से उत्पन्न होता है।

जब मैं उन मुस्लिम पुस्तकों में घुसती हूँ, जो हमारी सांस्कृतिक प्यास को बुझने का मुख्य स्रोत रहे हैं, तो मुझे आतंकवाद से निपटने के लिए अमरीका और शेष विश्व की पद्धति की प्रभावशीलता पर संदेह होने लगता है। अमरीकी सैन्य दल सामूहिक नरसंहार के शस्त्र का पता लगाने के लिए ईराक गया, और उन्होंने घोषणा की कि उन्हें कुछ नहीं मिला। ऐसा नहीं था कि उन्हें इसलिए कुछ नहीं मिला, क्योंकि वहाँ वो खतरनाक अस्त्र-शत्र थे नहीं, अपितु उन्हें इसलिए नहीं मिला, क्योंकि वे जान नहीं पाए कि उन अस्त्र-शस्त्रों को कहाँ छिपाकर रखा गया है। यदि उन्होंने कभी किसी मुस्लिम पुस्तक को खोलकर देखा होता, तो उन्हें उसमें बड़ी मात्रा में ये खतरनाक शस्त्र मिलते।

खतरा शस्त्रों में नहीं होता है, अपितु यह उन हाथों में होता है जो इसे चलाते हैं। मानव जाति पर मंडरा रहे इस खतरे को अमरीकी सेना तब तक दूर नहीं कर सकती है, जब तक कि विश्व सतर्क न हो और यह न जाने कि इस्लामी संसार के सामूहिक विध्वंस के शस्त्रों को कहाँ छिपा रखा है।

मुस्लिम संसार में आतंकवादी मानसिकता तैयार करने वाली विचारधारा धरती के किसी अस्त्र-शस्त्र से कहीं अधिक खतरनाक होती है। इन विचारधाराओं ने मनुष्यों के बुद्धि-विवेक को नष्ट कर दिया है, और दूसरों की अपेक्षा उनके अपने जीवन पर इस विध्वंस का बड़ा दुष्प्रभाव होता है। आतंकवादी मानसिकता अनुपजाऊ होती है और यह कुछ भी अच्छा उत्पन्न नहीं कर सकती है, इसलिए यह उनके जीवन पर अधिक दुष्प्रभाव डालती है, बनिस्बत उनके जिनको कि ये लोग अपना शत्रु मानते हैं।

मैंने यहाँ जो कहा है, उसकी सच्चाई कोई पश्चिम का व्यक्ति नहीं समझ सकता है, क्योंकि पश्चिम के लोग मुस्लिम संसार में नहीं रहते हैं और इसलिए वे यह समझने में कठिनाई का अनुभव करते हैं कि मुस्लिम समाजों में नैतिक विघटन कितने भयानक ढंग से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है। मुस्लिम समाज के लोगों ने अपनी वह क्षमता खो दी है कि अपने किए हुए अपराध का अनुभव कर सकें। किशोरावस्था से ही उनके मन-मस्तिष्क में इस्लामी शिक्षा ऐसी ठूंस दी जाती है कि वे मान लेते हैं कि अल्लाह ने उन्हें दास बनने के लिए रचा है।

जब तक मुसलमान नमाज पढ़ता है, रोजा रखता है और कुरआन पढ़ता है, उसे लगता है कि उसने अपना कर्तव्य निभा दिया है, क्योंकि उसकी सोच यहीं तक सीमित रहती है कि इन विशिष्ट मजहबी आदेशों को पूरा करने के अतिरिक्त उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं है। सभी मुस्लिम देशों के शासक अपनी जनता से झूठ बोलते हैं और लूटपाट, हत्या और उत्पीड़न करते हैं। कोई मजहबी नेता इन शासकों के व्यवहार की आलोचना में एक शब्द नहीं कहता है, जब तक कि वह शासक दूसरे फिरके (मत) का न हो। सद्दाम हुसैन ने हजारों कुर्दों और शियाओं की हत्या कर दी, किंतु शियाओं को छोड़कर अन्य किसी मुसलमान ने उसके अपराधों का विरोध नहीं किया है।

जिस दिन से मुहम्मद ने अपने नए धर्म की घोषणा की है, उस दिन से लेकर आज तक के मुस्लिम इतिहास के पृष्ठों को पलटा जाए, तो

देखा जा सकता है कि इस मजहब ने कितना रक्तपात किया है। मुसलमानों ने किसी और की अपेक्षा अपने लोगों पर ही सर्वाधिक रक्तपात किया है। बाल्यकाल में हम मारकाट और हत्या की उन कहानियों को मन में बिठाते थे, जो हमने अपने इतिहास और मुस्लिम शिक्षा की पुस्तकों से उतने ही उत्साह से सीखी थीं, जितने उत्साह से हम लुका-छिपी खेलते थे। हम यह वाक्य दोहराने में इतने आनंद का अनुभव करते थे कि "तब उसने तलवार निकाली और उसका सिर काट दिया", मानो कि तलवार निकालकर सिर काटना न होकर, किसी अमरीकी बालक का चाकलेट खाना हुआ, और जब हम लोग यह वाक्य दोहराते थे तो हमारे मन में भय का कोई भाव नहीं होता था, न ही कभी हमने कभी उन हत्याओं की वैधता पर प्रश्न किया।

हम हत्या और आतंकवाद की भाषा परिचित हो गए थे और इसका व्यसन हो गया था। हम इस भाषा में इतने दक्ष हो गए थे कि जैसे कि कोई सर्जन छाती खोलकर हृदय की सर्जरी करने में दक्ष होता है। कोई सामान्य व्यक्ति किसी व्यक्ति की छाती तब तक नहीं फाड़ सकता है, जब तक कि वह या तो मानव चेतना से लुप्त अपराधी हो अथवा वह एक ऐसा सर्जन हो जिसका चिकित्सीय ज्ञान व वैज्ञानिक विशेषज्ञता उसका मार्गदर्शन करे कि वह अपने मानवीय कार्य को पूरा करे। हत्या और आतंकवाद की वह भाषा हमारी जीवन पद्धति बन चुकी है, और अब हम उस भाषा की निंदा नहीं करते हैं। हत्या और आतंकवाद एक ऐसा कौशल बन चुका है जो हम उसी आनंद से करते हैं, जिस आनंद से कोई सर्जन अपना काम करता है।

तनिक कल्पना कीजिए कि कोई अमरीकी बालक या बालिका कक्षा में खड़ा हो और अपने अध्यापक से कहे: "मैं इस तलवार से अपने शत्रु का सिर काट दूंगा।" इस पर अध्यापक और अन्य विद्यार्थियों की क्या प्रतिक्रिया होगी? हमारी इस्लामी संस्कृति में जीवन के प्रत्येक पक्ष में मार-काट के इसी दर्शन की झलक मिलती है। 2005 में मैं सीरिया गई थी। राजधानी दमाकस में एक बस में बैठकर पास के नगर जा रही थी कि एक

बालक जो यही कोई सात-आठ वर्ष का रहा होगा, बिक्री के लिए समाचार पत्रों का बंडल लेकर चढ़ा। यात्रियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वह चीखा: "बगदाद में एक साहसी आत्मघाती हमले में 40 अमरीकी सैनिक मारे गए!" मैंने तुरंत एक समाचार पत्र लिया, और उत्सुकता से पढ़ने लगी, इसी बीच वह बालक बस से नीचे कूदा और भीड़ में लुप्त हो गया।

मैंने पूरा समाचार पत्र छान मारा, पर उसमें किसी अमरीकी सैनिक के मारे जाने का उल्लेख नहीं था। मैं यह सुनकर अचंभित हो गई कि एक व्यक्ति कह रहा था, "उस दुष्ट ने हमें मूर्ख बना दिया!" आठ वर्ष की छोटी आयु का बालक भी अपने लोगों का मनोविज्ञान समझता है कि वह लोगों की भावनाओं से कैसे खेल सकता है। बगदाद में चालीस अमरीकी सैनिकों की मृत्यु इतना सनसनी वाला समाचार था कि सीरिया के लोग उसे पढ़ने के लिए अपनी रोटी के लिए रखा पैसा भी व्यय कर सकते थे।

आज के औसत सीरियाई नागरिक के पास अपना पेट भरने के लिए कमाने के अतिरिक्त और किसी काम के लिए समय नहीं है। वह भयानक मानसिक आलस्य की दशा में है, और विश्व की घटनाओं से इतना दूर है कि उसे इन सबसे प्रभाव नहीं पड़ता। यद्यपि, तब भी, इनके लिए चालीस अमरीकी सैनिकों की मृत्यु इतना चर्चित विषय है कि यह उनकी उदासीनता में भी उष्णता ला सकता है। सीरिया में शिशु परिवार की आय का महत्वपूर्ण स्रोत होता है। बहुत कम आयु से वे हाट की शक्तियों से परिचित हो जाते हैं, और भली-भाँति समझते हैं कि उनके देशवासियों में किस बात की रुचि हो सकती है। यह अत्यंत दुखद है कि आठ वर्ष के छोटे से बालक पर भी उस प्रचलित मानसिक विघटन का इतना गहरा प्रभाव है कि वह समाचार पत्र की बिक्री के लिए भी मनगढ़ंत समाचार बात देता है! अरब संसार के पुरुषों में अपने शिशुओं के नैतिक विकास के उत्तरदायित्व की भावना का अभाव होता है।

सीरिया में एक उच्च पदस्थ अधिकारी ने विक्षिप्तों की भाँति कार चलाते हुए मेरी भतीजे को कुचल दिया। एक बार संयोग से मैंने उसको उस दुर्घटना के विषय में बात करते हुए सुन लिया। वह उस दुर्घटना का दोष उस कन्या पर डाल रहा था, जो विद्यालय जा रही थी और बिना यह देखे कि पथ खाली है या नहीं, इस पार से उस पार जा रही थी। उसने यह कहते हुए उसके परिवार पर भी दोष मढ़ने का प्रयास किया कि उसके अभिभावक असावधान थे और उसे यह सिखाने में विफल रहे थे कि ठीक से पथ कैसे पार किया जाए।

मुझे आज भी ध्यान हो उठता है कि किस प्रकार हमारे आपात सेवा कक्ष में चिकित्सा कर्मी मार्ग दुर्घटना में कुचले गए शवों के साथ कैसा व्यवहार करते थे। मुझे एक घटना जीवन भर नहीं भूलेगी। मैं आपात सेवा कक्ष में सेवा दे रही थी कि एक दस वर्षीय बालिका वहाँ लाई गई। वह एक निजी भवन में सेविका थी और उसके स्वामी ने उसे सिगरेट लाने के लिए निकट की हट्टी (दुकान) पर भेजा था। जब वह मार्ग पार कर रही थी, तो कचरे के वाहन ने उसको कुचल दिया और उसका एक पांव कट गया। आपात सेवा कक्ष के सर्जरी पट्ट पर ही उस बालिका की मृत्यु हो गई। उसके परिवार ने उसका शव ले लिया। कुछ घंटे पश्चात्, मैं कुछ गंदी पट्टियां फेंक रही थी, तो यह देखकर भय के कांप गई कि उस बालिका का कटा पांव उसी में पड़ा हुआ था। अन्वेषण में पता चला कि रोगी को सर्जरी कक्ष में लाने वाले परिचारक में तनिक भी अंतरात्मा शेष नहीं थी, और उसने वह पांव वहाँ फेंक दिया था, उसका कहना था कि बालिका के साथ उसके कटे पांव को सर्जरी कक्ष में बलाने का कोई लाभ नहीं था, क्योंकि चिकित्सक उसे जोड़ नहीं पाते।

अपने जीवन मैंने कभी नहीं सुना कि किसी मुसलमान ने अपने किए पर कोई पछतावा व्यक्त किया हो, यहाँ तक कि कल्पना में भी वह अपने अपराध पर खेद नहीं प्रकट करता है। व्यक्ति अपराध बोध तभी कर सकता है, जब उसे अपने दायित्व का ज्ञान हो और इस बात का भान हो

कि उसने क्या भूल की है। किंतु मुसलमान यह मानता है कि वह कभी भूल करता ही नहीं है: किंतु वास्तविकता तो यह है कि मुसलमान अपनी प्रत्येक भूल को न्यायोचित ठहरा कर उसे क्षम्य बना लेता है। किसी व्यक्ति का इस्लाम से जुड़ा होना उसके कार्यों अथवा दायित्व से नहीं परिभाषित होता है, अपितु यह उसके द्वारा पढ़े जाने वाले इस कलमा से निर्धारित होता है: "मैं साक्षी हूँ कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं है, और मुहम्मद उसका रसूल है।" जब तक वह यह कलमा पढ़ता रहेगा, मुसलमान बना रहेगा, और दूसरों के विरुद्ध वह चाहे जो अपराध करे, उसके मुसलमान होने पर कोई अंतर नहीं पड़ेगा। सद्दाम हुसैन इतिहास के बड़े अत्याचारियों में से एक था, परंतु सुन्नी मुसलमान उसे शहीद मानते हैं। उसकी अंतिम यात्रा में वे नारे लगा रहे थे: "हे, अल्लाह के प्रिय, जन्नत की ओर।"

कोई व्यक्ति पहला नैतिक पाठ तब सीखता है, जब वह "हां" और "ना" की अवधारणा के मध्य भेद करना जान पाता है- दूसरे शब्दों में कहें, तो जब वह यह योग्यता अर्जित करता है कि क्या स्वीकार करे और क्या परित्याग करे। मनुष्य अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में ही यह पाठ सीख लेते हैं, और यही पाठ वह आधार माना जाता है, जो आगे चलकर उसकी नैतिकता की सम्पूर्ण संरचना का गठन करता है। इस आधार की सुदृढ़ता ही यह निर्धारित करती है कि जीवन की चुनौतियों से निपटने में व्यक्ति कितना प्रभावशाली और क्षमतावान् होगा।

मुसलमान जीवन भर इस पाठ को सीखे बिना रहता है और मर जाता है। इस्लामी संस्कृति में "हां" और "ना" की स्पष्ट अवधारणा नहीं होती है। ये दोनों विपरीत अवधारणाएं एक प्रकार से इतनी अस्पष्ट होती हैं कि अन्य व्यक्ति अपने संपर्क में आने वाले मुसलमानों के व्यवहार को समझ ही नहीं पाते। मुस्लिम संस्कृति इन दो अवधारणाओं के स्थान पर तीसरी अवधारणा लाती है, जिसमें दोनों को जोड़कर मिश्रित कर देती है और दोनों के पारस्परिक विपरीत गुणों के मध्य भेद को धुंधला कर देता है। यह तीसरी अवधारणा एक सूत्र इंशाअल्लाह (अल्लाह की इच्छा है) में प्रकट होती है।

आवश्यक नहीं है कि इंशाअल्लाह में हां अथवा ना का अर्थ हो। यदि आप किसी मुसलमान से कोई ऐसा प्रश्न पूछें जिसमें हां या न के उत्तर की आवश्यकता हो, तो उसका उत्तर होगा इंशाअल्लाह। इसका तात्पर्य है कि इसका उत्तर अल्लाह जानता है और अल्लाह ही इसका निर्णय करेगा। इंशाअल्लाह का भाव मुसलमान को किसी भी उत्तरदायित्व से दूर कर देता है। वे अपने किसी भी निर्णय के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराए जा सकेंगे, क्योंकि अल्लाह ने उनके लिए वह निश्चित किया है, और उसका परिणाम अच्छा हो या बुरा है, अल्लाह की इच्छा है। यदि आप किसी मुसलमान से पूछें, "क्या आप कल दिन का भोजन करना चाहेंगे?" उसका उत्तर होगा, "इंशाअल्लाह"। निश्चित ही वह स्पष्ट नहीं कह रहा है कि "हां, मैं कल आऊंगा, अथवा नहीं आऊंगा।" यदि वह भोजन पर आ भी गया तो कहेगा कि अल्लाह उसे यहाँ ले आया है, और यदि वह नहीं आए तो कहेगा कि अल्लाह ने यही निश्चित कर रखा था और किसी को भी अल्लाह की इच्छा पर विरोध करने का अधिकार नहीं है!

जब मैं पिछली बार सीरिया गई थी, तो वहाँ एक दिन संध्या समय अपने भाई के परिवार के साथ थी। मेरी भतीजी सारा ने अमरीका को लेकर प्रश्नों की झड़ी लगा दी, उसके मन में विशेष रूप से हालीवुड के विषय में अधिक कौतुहल था।

वह बोलती जा रही थी, "क्या आप व्हीटनी हाउस्टन को जानती हैं? क्या आपने उनका नया गाना सुना है? मुझे निकोल किडमैन बहुत बहुत अच्छी लगती है, पर टाम क्रूज के साथ उसका विवाह नहीं चला!"

"ब्रिटनी स्पीयर्स का कौन सा गाना आपको अच्छा लगता है?"

जब वह बोल चुकी तो मैंने प्रश्न पूछना आरंभ किया, वह धड़ाधड़ उत्तर दे रही थी, क्योंकि ऐसा लगता था कि वह हालीवुड के विषय में इतना जानती है, जितना मैं अपने घर अथवा अपने रसोईघर में रखे पात्रों के विषय में भी नहीं जानती हूँ।

मैंने उससे कहा, "तुम मेरे पास अमरीका क्यों नहीं आ जाती, वहाँ मैं तुम्हें हालीवुड घुमाऊंगी?"

उसने लंबी सांस ली और अंधेरी रात के तारे की भाँति अपनी आंखें चमकाते हुए बोली, "क्या मैं अमरीका आ सकती हूँ?"

मैंने कहा, "क्यों नहीं। तुम आओगी तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी, तुम्हारी यात्रा का सारा व्यय मैं करूंगी।"

सारा अपनी अम्मी के पास भागी गई और बोली, "अम्मी, क्या मैं फूफी के पास अमरीका जाऊं?" अभी उसकी अम्मी कुछ उत्तर दे पाती कि इससे पहले ही वह बोल पड़ी, "और कृपया यह न कहना कि इंशाअल्लाह अर्थात अल्लाह चाहेगा...!"

उसकी यह बात सुनकर वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति ठहाके लगाने लगा, पर मैं भीतर से रो पड़ी! सारा ने दमाकस में अमरीकी दूतावास में वीजा का आवेदन दिया, पर उसका आवेदन अस्वीकार हो गया। उसने मुझे फोन किया और सिसकते हुए बोली, "फूफी, मैं बहुत दुखी हूँ। अल्लाह नहीं चाहता है कि मैं अमरीका आऊं और आपसे मिलूं!" यह पहली बार था कि जो अपराध अमरीका ने किया था उसका दोष अल्लाह पर मढ़ दिया गया, जबकि होना यह चाहिए था कि यह दोष अमरीका पर ही मढ़ा जाए!

यद्यपि मेरी भतीजी उस समय आयु में बहुत छोटी थी, पर वह भी भली-भाँति जानती थी कि इंशाअल्लाह का तात्पर्य न तो हां होता, न ही ना। उसने अपनी अम्मी से मिन्नतें कीं, कि यह शब्द न बोलें, क्योंकि वह यह जानती थी कि यह शब्द ऐसा अस्पष्ट भाव वाला है जिसे उसका मन ग्रहण नहीं कर सकता है। यदि उसकी अम्मी ने इंशाअल्लाह के स्थान पर "नहीं" कहा होता, तो उसे अधिक अच्छा लगता।

हो सकता है कि सहमति न देते समय किसी अरबी के स्वर में स्वीकारोक्ति और स्मित (मुस्कान) स्पष्ट न दिखे, किंतु जब भी वह ऐसा करता है तो वह अपने को यह कहकर समझाता है कि उसने हां तो कहा नहीं था, केवल मुख पर स्मित का दिखावा करते हुए सिर हिलाया था,

इसलिए वह पहली बार में कभी सहमत नहीं हुआ था। इस संदिग्ध आचरण का तात्पर्य यह होता है कि दूसरों के साथ मुसलमान का व्यवहार स्वेच्छाचारी, अस्थिर और ओछा होता है, और उनके इसी आचरण के कारण लोग उन पर विश्वास नहीं कर पाते हैं। जो व्यक्ति हां और ना के मध्य भेद नहीं कर सकते हैं और असंदिग्ध रूप से स्पष्ट विचार नहीं प्रकट कर सकते हैं, उनमें सामान्यत: भ्रमपूर्ण विचार भरा होता है। उनकी नैतिक संरचना भंगुर हो जाती है, और जब भी हां अथवा ना के उत्तर वाले प्रश्न का दबाव आता है वह ढहने की स्थिति में आ जाती है। इस नैतिक भंगुरता (दुर्बलता) की छाया आज भी मुसलमानों पर है, और इसीलिए वे आधुनिक विश्व के साथ सामंजस्य बिठा पाने में कठिनाई का अनुभव करते हैं, जबकि आधुनिक विश्व निरंतर उसने ऐसे प्रश्न पूछता है जिसमें "हां" या "ना" बोलकर- स्पष्ट व असंदिग्ध रूप से- स्वीकार किया जाए अथवा अस्वीकार किया जाए।

अलजजीरा पर जब मेरा दूसरी बार साक्षात्कार हुआ, तो उस शो में मैं सभ्यताओं के संघर्ष पर बात कर रही थी। साक्षात्कारकर्ता ने मुझसे पूछा, "क्या आप कहना चाहती हैं कि यह संघर्ष मुस्लिमों के पिछड़ेपन और आधुनिक सभ्यता के मध्य संघर्ष है, जैसा कि पश्चिम द्वारा उदाहरण दिया जाता है?" मैंने बिना संकोच के उत्तर दिया, "हां, मेरा यही कहना है।" यह उत्तर सुनकर अरब जगत से इतनी प्रतिक्रियाएं आईं कि उसको संकलित किया जाए तो पूरी पुस्तक तैयार हो जाएगी।

सबसे कौतुहल भरी प्रतिक्रियाओं में से एक वह थी जो मिस्र के एक अधिवक्ता ने मुझे ई-मेल में लिखी थी: "जब हमने साक्षात्कारकर्ता का वह प्रश्न सुना तो तब मुझे लगा कि आप इस प्रश्न से कन्नी काट लेंगी क्योंकि मुसलमान सीधा उत्तर नहीं सुनना चाहता है, और मैं एक क्षण के लिए भी यह कल्पना नहीं कर सका कि आप इसके अतिरिक्त कुछ और कहेंगी कि 'नहीं, मेरे कहने का वह अर्थ नहीं था, आपने मुझे समझने में भूल की है!''' किंतु जब मैंने आपका उत्तर इसके ठीक उलट सुना, तो मेरा मस्तिष्क सुन्न

हो गया, और मैं प्रसन्नता में उत्तेजित होकर यह कहकर नाचने लगा, 'ले बीती, ले बीती!' आप मुस्लिम संसार में किसी व्यक्ति से ऐसा प्रश्न नहीं पूछ सकते हैं जिसमें किसी प्रकार का उत्तरदायित्व लेने की आवश्यकता हो और "हां" अथवा "ना" में स्पष्ट उत्तर की अपेक्षा हो।

अमरीका में प्रवासी के रूप में रहने आने के वर्षों पूर्व मैंने एक पश्चिमी पत्रकार के साथ राष्ट्रपति हाफेज अल-असद का साक्षात्कार सुना था। उसमें साक्षात्कारकर्ता ने पूछा, "यदि आपका इजराइल के साथ शांति समझौता हो जाए, तो क्या आपका देश उनके साथ कूटनयिक संबंध स्थापित करेगा?" असद इस प्रश्न से भागने लगे और कोई सीधा उत्तर नहीं दिया। पत्रकार ने उनसे पुन: पूछा, "राष्ट्रपति महोदय, क्या आप 'हां' या 'ना' में इसका उत्तर दे सकते हैं?" पर वो तनिक कुढ़न दिखाते करते हुए इधर-उधर की बातें करते रहे, और अंतत: उन पत्रकार महोदया ने वह प्रश्न वहीं छोड़ दिया और अगले प्रश्न पर आ गईं। जब व्यक्ति "हां" अथवा "ना" में स्पष्ट भेद करना भूल जाता है, तो उसकी विश्वसनीयता समाप्त हो जाती है। परिणामस्वरूप, वह अन्य व्यक्तियों के साथ स्वस्थ व सफल संबंध नहीं रख पाता है। व्यक्ति के वचन का मोल इससे होता है कि वह अपनी जिह्वा से कही गई बातों पर कितना टिकता है, न कि उसकी बात का महत्व इससे होता है कि उसके घुटने की अस्थियां कितनी सुदृढ़ हैं।

मुस्लिम समाजों में संबंध स्वार्थ व आवश्यकता से संचालित होते हैं, न कि इस बात से कि संबंध बनाने वाले पक्ष एक-दूसरे के प्रति कितने सत्यनिष्ठ और पारदर्शी हैं। इस प्रकार के संबंध उतने ही संदिग्ध होते हैं, जितना कि इंशाअल्लाह का भाव। हमने इंशाअल्लाह शब्द के विषय में पहले ही उल्लेख किया है और आप मुस्लिम समाज में कहीं भी जाएँगे तो यह शब्द बार-बार सुनेंगे। इन समाजों में जीवन के सभी पक्षों में गंभीरता का अभाव होता है और व्यक्तियों के पारस्परिक वैयक्तिक संबंधों में भी इसका बड़ा प्रभाव होता है। जब लोग अपना वचन निभा पाने में विफल होते हैं, तो यह कहते हुए इसका दोष अल्लाह पर मढ़ देते हैं कि अल्लाह

की इच्छा नहीं थी, और यह कहते हुए अपने घात को उचित ठहराते हैं कि "आपने मेरी बात ठीक से नहीं समझी। जब मैंने कहा इंशाअल्लाह, तो इसका अर्थ यह नहीं था कि मैं अमुक कार्य करूंगा ही।"

दो वर्ष पूर्व जब मैं सीरिया गई थी, तो मुझे इस फ्रांसीसी लोकोक्ति: "मछली उस जल को नहीं देख सकती है जिसमें वह तैर रही होती है", का सच्चा अर्थ समझ में आया। मैं अपने जीवन के तैंतीस वर्ष सीरिया के सागर तैरती रही, पर जिस जल में तैर रही थी उसे स्पष्ट नहीं देख पाई। अमरीका में पंद्रह वर्ष रहने के पश्चात्, जब मैं सीरिया गई तो मैंने स्पष्ट देखा कि वह जल क्या था। यद्यपि, वहाँ अपने जीवन से असंतुष्ट होना ही वह कारण था कि मेरी अमरीका चले आने की इच्छा हुई, परंतु तब मैं यह ठीक से नहीं समझ पाई थी कि मेरे असंतोष की प्रकृति व कारण क्या थे। अमरीका में जो मेरा अनुभव हुआ, उसी से मैं इस योग्य हो पाई कि पंद्रह वर्ष अनुपस्थित रहने के पश्चात् भी मैं उस जल के सच्चे रंग को देख सकी जिसमें कभी तैर रही थी।

मैंने इस जल में गहरे डुबकी लगाई और इसके तत्वों का विस्तार से विश्लेषण करने के लिए सूक्ष्मदर्शी यंत्र की भाँति अपनी बुद्धि का प्रयोग किया। इसमें जो मैंने देखा, वह उन जीवाणुओं के समूह से भिन्न नहीं था, जो मैं कभी चिकित्सा की विद्यार्थी के रूप में सूक्ष्मजीवविज्ञान की प्रयोगशाला में सूक्ष्मदर्शी यंत्र के माध्यम से देखती थी। यद्यपि हो सकता है कि लोग मेरी इस तुलना से सहमत न हों, पर तब भी यह तुलना उपयुक्त ही रहेगी। जो समाज विधि के शासन से संचालित नहीं होता है, वहाँ दुर जंगलराज होता है: शक्तिशाली व्यक्ति दुर्बल को खा जाता है, और दोनों ही इस स्थिति को बनाए रखने का प्रयास करते हुए इसे अल्लाह की अपरिहार्य इच्छा कहकर न्यायोचित ठहराते हैं।

मैं एक महिला से मिली जो मेरे सीरिया छोड़कर जाने से पूर्व प्रिय सहेली थी। उस समय मेरे समान वह भी एक घोर वित्तीय संकट में थी। जब मैं उससे इस बार मिली तो यह देखकर चकित हो गई कि जब से वह

सीरिया की सरकार में उच्च पद पर नियुक्त हुई, उस पर सोने-चांदी की बरसात होने लगी। लोगों में यह चर्चा थी कि उसे उस पद पर नियुक्ति इसलिए मिली थी, क्योंकि एक प्रभावशाली व्यक्ति से उसका अंतरंग संबंध था, जबकि वह पहले से विवाहित और संतानयुक्त थी।

मैं उससे मिलने उसके घर गई। उसने मेरा उत्साह से स्वागत किया। उसके घर पर विलासिता की वो वस्तुएं देखीं, जो मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखी थी। उसके भवन और कक्षों की भव्यता देखकर मैं भौंचक्की रह गई। वह अपने यूरोप के भ्रमण के विषय में बताने लगी, उसने यूरोप से क्रय किए गए आभूषण दिखाए। मैं सीरिया की जनता की बुरी स्थिति के विषय में बात करना चाहती थी, इसलिए मैंने बिना किसी संकोच के पूछ ही लिया, "समीरा, क्या यह उचित है कि तुम ऐसा भव्य जीवन जी रही हो, जबकि सीरिया के प्रत्येक दस नागरिकों में से नौ नागरिक घोर कष्ट में जी रहे हैं?" उसने निर्लज्जता से उत्तर दिया, "यह अल्लाह की इच्छा है वफा। केवल वही जानता है कि ऐसा क्यों है।"

मैंने पूछा, "इससे अल्लाह का क्या लेना-देना है?"

वह बोली, "वफा, क्या तुम अल्लाह की इच्छा स्वीकार करने से मना कर रही हो? तुम पर अमरीका का पूरा रंग चढ़ गया है।" तब उसने यह पूछते हुए उस विषय से भागने का प्रयास किया, "तुम्हें कौन सा सुगंध (परफ्यूम) प्रिय है? मेरे पास बहुत प्रकार के सुगंध हैं, मैं उनमें से कुछ तुम्हें दूंगी।"

मैंने हँसी करते हुए कहा, "हां, मुझ पर अमरीकी रंग चढ़ गया है। जानती हो समीरा, अमरीका में लोग परफ्यूम नहीं लगाते हैं, अपितु परिश्रम से निकले ललाट के स्वेद (पसीना) को ग्रहण करते हैं, पीते हैं!"

इस्लामी देशों में इस रुढ़िवाद के बुरे परिणाम आए हैं, क्योंकि मुसलमानों का मन-मस्तिष्क ऐसे यंत्रवत् जकड़ दिया गया है कि वे अपने समय और स्थान के अनुपयुक्त हो गए हैं। बीसवीं सदी के अंत और इक्कीसवीं सदी के आरंभ तक शेष विश्व को उनकी इस स्थिति से समस्या

नहीं हुई। किंतु पिछली सदी के अंतिम दो दशकों में नई तकनीकों के आगमन से यात्रा और संचार सुविधाजनक हो गया और वर्तमान सदी के आते-आते संसार एक छोटे से गाँव की भाँति दूरीविहीन होकर सिमट गया। जैसे-जैसे हमारा वैश्विक ग्राम दूरियों को कम करता गया, मुसलमान उन बाहरी व्यक्तियों के सीधे आमने-सामने आ गए जिनके लिए इस्लामी विधि व शिक्षाएं पूर्णत: विदेशी थीं। इससे मुसलमान नई वास्तविकता से सामंजस्य बिठा पाने में अक्षम दिखने लगे।

लगभग तीस वर्ष पूर्व सीरिया सरकार ने रेलमार्ग संजाल बनाया। यह देश के पूर्वी प्रांतों को उत्तर के अलेप्पो प्रांत से जोड़ता था। जब इस रेलमार्ग पर आवागमन आरंभ हुआ, तो रेलगाड़ियां सीरिया के मरुस्थल के उस भाग में बड़ी दूरी तक जाती थीं जहाँ बद्दू (घुमंतू) चरवाहे और उनके पशु रहते थे। परिणामस्वरूप विचित्र घटनाएं होने लगीं: ये बद्दू लोग रेलगाड़ियों पर पत्थर मारने लगे, रेलगाड़ी के काँच तोड़ने लगे और यात्रियों पर आक्रमण करने लगे। जब रेलगाड़ी वहाँ से निकलती तो वो उसके पीछे दौड़ पड़ते और पत्थर मारने लगते। जब रेलगाड़ी निकल जाती तो वो भागकर अपने शिविरों में छिप जाते।

वर्षों तक यही चलता रहा। सीरिया की सरकार के इस प्रकार की घटनाओं को रोकने और दोषी बद्दुओं को पकड़ने के लिए निरीक्षक और विशेष बल लगाने पड़े। जब मैं उस समय का स्मरण करती हूँ, तो मुझे एक ही बात समझ में आती है कि वो बद्दू अब तक अपरिवर्तशील नीरवता में जी रहे थे, अब उनकी उस नीरवता को भंग करने के लिए उस विचित्र यांत्रिक राक्षस का आक्रमण हो गया था, और वो लोग उस राक्षस के भय से ऐसा व्यवहार कर रहे थे। उन्होंने रेलगाड़ी के कोलाहल को अपनी निजता पर आक्रमण और जीवन पर वास्तविक खतरा माना, इसलिए अपने संसार की रक्षा के लिए रेलगाड़ी को नष्ट करने और उसका काँच तोड़ने का प्रयास किया। ऐसा करते समय उन्होंने रेलगाड़ी के यात्रियों की सुरक्षा का भी ध्यान नहीं रखा।

मुसलमान भी अपने अपरिवर्तशील संसार में रहता है और उसके साथ भी यही होता है। एम्पटी क्वार्टर (अरब प्रायद्वीप का सबसे बड़ा बालू का मरुस्थल) में घूम रहे ये बद्दू रातोंरात ऊंटों से उतार कर वायुयान की सीट पर ले जाकर बिठा दिए गए, और पेरिस, न्यूयार्क अथवा कोपेनहेगन में ले जाकर पटक दिए गए। जब वो अपने देश में थे, तो एक दिन सोकर उठे तो पाया कि उनके शिविर उखाड़ दिए गए हैं, महँगे एवं भारी-भारी यंत्र उस मरुस्थल में तेल की खोज में भूमि में छेद कर रही हैं। इस काम को ऐसे व्यक्ति कर रहे हैं, जो उनके जैसे नहीं दिखते थे और ऐसा कुछ उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। यह दृश्य देखकर वे भयभीत हो गए, और इसे अपने मजहब, परंपरा और जीवन शैली पर खतरे के रूप में देखा।

मुसलमान विश्व के नए रूप को ग्रहण करने में अपने को अक्षम पाते हैं और अपने देशों एवं जिस देश में प्रवास करने जाते हैं उन देशों में नई जीवन शैली को अपनी विधियों व मान्यताओं के अनुपयुक्त पाते हैं। इस नई व्यवस्था के स्वीकार करने और अस्वीकार करने, दोनों से, घोर मनोवैज्ञानिक संघर्ष उत्पन्न हो गया है।

एक ओर पश्चिमी तकनीक ने मुसलमानों को ऐसी जीवन शैली उपलब्ध कराई है जिसकी उन्होंने कभी कल्पना तक नहीं की होगी, और वे इन तकनीकों पर निर्भर हो चुके हैं। किंतु वहीं दूसरी ओर यह नई जीवन शैली उनकी उन शिक्षाओं, अवधारणाओं व मजहबी विधियों से तनिक भी मेल नहीं खाती है जिसके साथ वो बड़े हुए हैं।

जिन मुसलमानों की नियति अपने मातृदेश से बाहर रहना है, उनके भीतर इसको लेकर गहरा संघर्ष चलता रहता है। इन लोगों में यह संघर्ष एक प्रकार के अवसाद व अप्रसन्नता को जन्म देता है। कोई भी व्यक्ति जो पश्चिम में रह रहे किसी मुसलमान को थोड़ा सा भी जानने लगता है और उसकी मनोवृत्ति को सूक्ष्मता से परखने लगता है, इस अवसाद व अप्रसन्नता को देख सकता है। इस आंतरिक संघर्ष ने मुसलमानों के समक्ष वो प्रश्न खड़े कर दिए हैं, जिनके उत्तर उनके पास नहीं हैं। वे उन लोगों को स्वीकार

करने अथवा अस्वीकार करने के मध्य पिस रहे हैं जिनको उनका मजहब कार्यस्थल पर मित्र अथवा अधिकारी के रूप में विश्वास करने या स्वीकार करने की अनुमति नहीं देता है: इस्लाम मुसलमानों को स्पष्ट रूप से उन स्थानों पर कार्य करने से मना करता है जहाँ उनका अधिकारी अ-मुस्लिम हो। पश्चिम ने मुसलमानों के जीवन स्तर में सुधार किया है और उनकी संतानों को सुंदर भविष्य की आश्वस्ति दी है, ऐसा सुरक्षित भविष्य जिसकी वे अपने मुस्लिम देशों में कल्पना तक नहीं कर सकते हैं। परंतु इसी पश्चिम ने साथ ही साथ इन मुस्लिम बालक-बालिकाओं के सामने वह जीवन शैली भी रखी है जो मुस्लिम मजहबी कानूनों में अस्वीकार्य होता है।

इस संघर्ष से मुसलमानों में कुंठा का भाव पनप जाता है। जब भी मैं किसी व्यक्ति में इस कुंठा के लक्षण पाती थी, तो उस व्यक्ति से अमरीकी जीवन शैली तथा मुस्लिम व पश्चिमी समाज में अंतर पर चर्चा करती। इन प्रयासों के पीछे मेरी यह मंशा नहीं होती थी कि इसका कोई परिणाम निकले, क्योंकि परिणाम ला पाना मेरी क्षमताओं से बाहर था। हां, इन प्रयासों से इतना अवश्य होता था कि ये लोग चर्चा में सम्मिलित हो जाते और हमारी वार्ता होने लगती, जिससे मैं उनकी मनोवृत्ति में छिपे रहस्यों को जानने लगती। समय से साथ यह कुंठा अपने नए समाज में अपने आसपास की सभी बातों के विरुद्ध भयानक क्रोध में परिवर्तित होने लगती है।

लॉस एंजेल्स के अरबी समाचार पत्र से संपादक ने एक बार मेरे लेख पर प्रतिक्रिया देते हुए लिखा था: "वो अमरीका की चकाचौंध में खो गई हैं... नैतिक रूप से पतित समाज के जीवन ने उन्हें अंधा बना दिया है", और इसके पश्चात् ऐसा ही आशय प्रकट करने वाले अनेक पाठकों के पत्रों को प्रकाशित किया। इन सभी पत्रों में अमरीकी समाज को दुर्बल एवं इसकी महिलाओं को विक्रय योग्य वस्तु बताया गया था, और यह निष्कर्ष दिया गया था कि "ऐसा प्रतीत होता है कि वफा सुल्तान इन महिलाओं की प्रशंसक हैं।" इस संपादक द्वारा मेरे ऊपर प्रहार करने से पूर्व मैं एक बार इनकी बीवी से मिली थी। उन्होंने मुझे बताया था कि उन्होंने लेबनान के

गृहयुद्ध में अपने भाई और बहन दोनों को खो दिया था, और उनके शौहर उस संपादक ने अपने परिवार के अनेक सदस्यों को गंवा दिया था, जिसके पश्चात् वो लोग प्राण बचाकर किसी प्रकार छिप-छिपाकर अमरीका भागकर आए थे।

निश्चित ही पश्चिम में बहुत से जन इस बात से अनजान होंगे कि लेबनान का गृहयुद्ध सत्रह वर्षों तक चला था, इसमें बाल-वृद्ध और युवा सब मारे गए थे, उनके अंगभंग हुए थे। एक ऐसा देश लेबनान जिसकी जनसंख्या चालीस लाख भी नहीं थी उसके लगभग दस लाख से अधिक लोग विस्थापित हुए थे। इतिहास में इससे घिनौने युद्ध का उदाहरण नहीं मिलता है। लोगों की पहचान देख-देख कर हत्या की गई। लेबनान के पहचान पत्र में केवल धर्म का ही उल्लेख नहीं होता है, अपितु उसका विशिष्ट फिरका या समुदाय भी लिखा होता है। जिनकी जेब में पहचान पत्र नहीं मिला, उन्हें उनका नाम पूछकर मार डाला गया, क्योंकि अधिकांश मुस्लिम देशों के समान लेबनान में भी व्यक्ति का नाम यह बताता है कि वह किस धार्मिक समुदाय से आता है।

वो प्रतिष्ठित संपादक और उनकी गर्भवती बीवी अपना देश छोड़कर भाग गए और अमरीका में शरण ली। उनकी बीवी ने स्वीकार किया था कि मेरे मिलने से पूर्व तक वो अमरीकी सरकार की कल्याण योजनाओं पर जी रही थीं। उन्होंने मुझे वो खतरनाक घटनाएं बताई थीं कि उन्हें और उनके परिवार के साथ यहाँ के अरब प्रवासी समुदाय के सदस्यों ने कैसा बुरा व्यवहार किया था। वो बुराई भी करती थीं कि ये अरबी अपने मूल देशों से कैसी असभ्यता लाए थे। यद्यपि उनके शौहर जब भी मेरे उन लेखों को पढ़ते जिसमें मैं अपने दत्तक समाज का पक्ष ले रही होती, जो अवसर इस समाज ने मुझे दिए हैं और जिस प्रकार इस समाज ने उच्च नैतिकतापूर्ण ढंग से मेरा स्वागत किया और मेरे साथ अच्छा व्यवहार किया उसकी प्रशंसा कर रही होती, तो वे अपनी नैतिकताओं, प्रथाओं और परंपराओं का बखान करने का कोई प्रयास छोड़ते नहीं थे। किंतु मुस्लिम

प्रवृत्ति सदा ऐसी ही रहती है, जो इस अरबी लोकोक्ति में संपुटित है: "भले ही वह बत्तख को उड़ता देखेगा, पर यही कहेगा कि वह बत्तख बकरी है", अथवा दूसरे शब्दों में कहें: "जो देखकर भी अनदेखा करे, उससे बड़ा अंधा कोई नहीं।"

वे अपने नए समाज में कितनी भी तेजी से सम्मिलित हो जाएँ, उस समाज की विधियों की सुरक्षा में कितना भी सुखी और निश्चिंत रहें, किंतु वे तब भी यही कहते रहेंगे कि पश्चिम के लोग अनैतिक होते हैं, और मुसलमान मजहबी व्यवहार और प्रथाओं से बंधे ही रहते हैं। यदि आप उनसे पूछें, "तब, क्यों, मुस्लिम महिलाएं अमरीकी न्यायालयों में परित्याग (तलाक) और संतान की अभिरक्षा लेने के लिए आवेदन देती हैं?" उनका उत्तर होता है, "ऐसा करने वाली महिला कुसंगति में पड़ गई है। वह पूरे मुस्लिम समाज की महिलाओं की प्रतिनिधि नहीं है।"

अमरीका में रह रही मुस्लिम महिलाएं सामान्यत: अपने शौहरों का बुरा व्यवहार सहन नहीं करती हैं। वो अपने मूल मुस्लिम देशों में होतीं तो जिस बुरे व्यवहार को सहना चुपचाप स्वीकार कर लेतीं, यहाँ सहन नहीं करती हैं और उस संबंध से छुटकारा पाने के लिए अमरीकी न्यायालय में परित्याग के वाद प्रविष्ट करती हैं। वे अपनी संतानों को अपने शौहर से लेने के लिए अपने दत्तक समाज की विधियों का उपयोग करती हैं और उन्हें विवश कर देती हैं कि वे संतान के पोषण के लिए धन दें। किंतु जब इसी महिला से आप उसके दत्तक समाज के नैतिक वातावरण के विषय में पूछेंगे, तो वह तुरंत उपदेश देते हुए अमरीकी नैतिकताओं को बुरा-भला कहने लगेगी और मुस्लिम समाज की इस्लामी विधियों की प्रशंसा करने लगेगी।

एक बार मैं इंजन का तेल परिवर्तित कराने के लिए लाँग बीच, कैलीफोर्निया के एक वाहन ठीक करने वाली हट्टी (गराज) पर रुकी। उस हट्टी का स्वामी एक युवा फिलिस्तीनी था और उसके अधिकांश कर्मचारी अरबी बोलने वाले युवा थे। मैं अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रही थी कि एक

कार आकर रुकी और मध्य पूर्व का दिखने वाला एक युवक उतरकर अरबी में अभिवादन किया। उस गराज के प्रबंधक ने क्षुब्ध होकर बोला, "तुमको विलंब क्यों हो गया? सवेरे से ही मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

उस युवक ने कहा, "मुझे आज प्रात: ही अमरीकी नागरिकता मिली है। मैं अभी निष्ठा की शपथ लेकर सीधे यहीं चला आ रहा हूँ।"

मैंने उसकी ओर देखा और अरबी में बोली, "बधाई हो!" उसने मुझे नाक-भौं सिकोड़ते हुए अपमानजनक ढंग से देखा और कहने लगा, "किस बात की बधाई दे रही हो? अमरीकी नागरिकता मेरे जूते के तल्ले के बराबर भी नहीं है।" यह कहकर वह अपने जूते को दिखाने लगा।

मैं अपनी खीझ छिपा नहीं सकी और उससे बोल पड़ी, "किंतु तुमने तो अभी इस देश के प्रति निष्ठा की शपथ ली है, तुमने तो अपनी इच्छा से यहाँ की नागरिकता ली है न!"

वह भौंचक्का होकर मुझसे बोला, "तुम मुसलमान हो?" मैंने कहा, "इस बात से धर्म का क्या लेना-देना है?" हम आधे घंटे तक तर्क-वितर्क करते रहे, और अंतत: मैं कार लेकर क्रोध में तमतमाती हुई गराज से निकल गई। इस घटना के पांच मास पश्चात् मैंने सुना कि मात्र बीस वर्ष की अवस्था में इस व्यक्ति के पुत्र ने संदिग्ध परिस्थितियों में आत्महत्या कर ली। उसने पिस्टल से स्वयं को गोली मार ली थी और उसका शव एक सार्वजनिक पार्क में पड़ा मिला था, पिस्टल उसके शव के पास पड़ा था। उसने अपने कार्यालय के दराज में अपने परिवार के लिए एक पत्र छोड़ा था। अरबी समुदाय में तो यह कानाफूसी हो रही थी कि उसका अब्बा ही उसकी आत्महत्या का उत्तरदायी था। वह उसे इस्लामी नियमों के अनुसार कट्टर मजहबी जीवन जीने पर विवश कर रहा था, और इस कारण वह युवक अवसाद में आ गया था, अंतत: छह मास में ही अपने ही हाथों अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली।

मुसलमान अपने मजहब के प्रति निष्ठा में गुणवत्ता और परिमाण दोनों में अन्य धर्मों के अनुयायियों से भिन्न होते हैं। मुझे संदेह नहीं है कि

उनमें से कुछ ने पहले ही अपने इस्लाम द्वारा थोपे गए बंधनों से अपने को मुक्त कर लिया है और अपने मूल देश अथवा प्रवास वाले देश में अधिक स्वतंत्र व खुले जीवन का आनंद ले रहे हैं। परंतु, इन मुसलमानों की व्यक्तिगत जीवन शैली भले कितनी ही भिन्न क्यों न हो, ये अपने मजहब के प्रति निष्ठा में एकजुट रहते हैं। इनमें से जो खुले मन के हैं, उनमें से अधिकांश लोगों से भी यदि आप करें और बताएँ कि जो जीवन वो जी रहे हैं उसकी अनेक बातें इस्लाम की शिक्षाओं के विरुद्ध हैं, तो एक क्षण सोचे बिना कह देंगे कि इसमें उनका अपना दोष है। वे कहेंगे कि इस्लाम की शिक्षाओं में त्रुटि नहीं है, अपितु उनके अपने व्यवहार में दोष है, क्योंकि यह व्यवहार उन्हें इस्लामी शिक्षा द्वारा अनिवार्य की गई बातों से दूर कर रहा है।

मन के भीतर चल रहे इस द्वंद्व के कारण मुसलमानों को भारी मूल्य चुकाना पड़ता है। आधुनिक जीवन के संपर्क में होने के कारण वे मनोवैज्ञानिक रूप से भटक जाते हैं और उनमें पछतावा की भावना पनपने लगती है। वे यह पछतावा इसलिए करते हैं, क्योंकि उन्होंने ऐसी जीवन शैली अपनाए हुई होती है जो एक ओर मौलिक स्तर पर उनके मजहब की शिक्षाओं के विरुद्ध होता है, और दूसरी ओर उन्हें यह दुख सताता रहता है कि वे अपने मजहब की शिक्षाओं का अक्षरश: पालन नहीं कर रहे हैं। वे यह भी नहीं स्वीकार करना चाहते हैं कि जो आधुनिक जीवन वो जी रहे हैं, वह उस जीवन से लाख गुना अच्छा है जो उन्हें इस्लामी विधियों के अंतर्गत मिलता है, और न ही वे यह मानना चाहते हैं कि इस्लामी विधि की शिक्षाएं उत्पादक व प्रभावकारी आधुनिक जीवन शैली के साथ मेल नहीं खाती हैं। वे यह भी नहीं समझ पाते कि विपरीत दिशाओं में चल रही इन दो नावों में से किस पर सवार हों।

खाड़ी देशों में तेल ढूंढ़े जाने से पूर्व मुसलमान आदिम मानव की भाँति जीते थे। तभी पलक झपकते ही उनके शिविर स्थलों पर आधुनिक संसार उतर आया और महल, अट्टालिकाएं, कारों व तकनीक से उनके संसार का रूप विकृत कर दिया, उनके वातावरण की अपरिवर्तनशील

नीरवता को खतरे में डाल दिया। दुबई उस मरुस्थल के हृदय स्थल में है, जहाँ इस्लाम का जन्म हुआ। तीस वर्ष पूर्व दुबई क्या था, एक शुष्क मरुस्थल जहाँ जीवन का कोई लक्षण नहीं था? आज यह क्या है? आज यह विश्व के सबसे बड़े वाणिज्यिक केंद्रों में से एक है। यहाँ के किसी होटल में पूरी रात बिताने की तो बात ही छोड़िए, उसमें प्रवेश करने भर के लिए सत्तर डालर देना होगा। जब मैं दुबई गई थी तो मुझे बताया गया कि यहाँ किसी होटल में एक रात ठहरने के लिए सात हजार डालर व्यय करना होगा!

जब लोग रातोंरात पाषाण युग से वायुयान और इंटरनेट के युग में पहुँच जाएँ, तो यह तो होना ही है कि इस प्रक्रिया में उनके भीतर एक संघर्ष चले, और वे अपने को अवसाद व अन्य मनोवैज्ञानिक रोगों की चपेट में पाएं, विशेष रूप से तब जबकि वे अपने पहले के वातावरण की शिक्षाओं व सामाजिक संरचना से चिपके रहने का प्रयास कर रहे हों। मुसलमान रेंगना सीखने से पूर्व ही दौड़ पड़े, और खड़े भी नहीं हो पाए थे कि सीढ़ियां चढ़ने का प्रयास करने लगे।

पश्चिम ने बलपूर्वक मुसलमानों पर अपने आप को, अपनी तकनीक और अपनी संस्कृति को थोप दिया। इसने न तो उनकी वैयक्तिकता का सम्मान किया और न ही उनकी परिस्थितियों की चिंता की। सचेतन स्तर पर मुसलमानों ने वह सब ग्रहण कर लिया जो पश्चिम उन्हें दे रहा था, परंतु गहरे अवचेतन में वे इन सबको अस्वीकार कर रहे थे। स्वीकार करने या नकारने की इस अनिश्चतिता ने ही उनके भीतर मनोवैज्ञानिक संघर्ष उत्पन्न किया जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य नष्ट हो गया है।

मैंने अभी कुछ दिन पूर्व ही तेल से समृद्ध एक छोटे से खाड़ी देश कतर की यात्रा की थी। यह देश दूसरा दुबई बनने की ओर चल पड़ा है। जब आप इसके मार्गों पर चलते हैं, तो कैलीफोर्निया का पाम स्प्रिंग स्मरण हो उठता है। आपको कतर में लोग सार्वजनिक हाटों में दिनभर हाट करते मिल जाएँगे, ऐसा लगता है कि मानो उनके पास और कोई काम ही न हो;

पारंपरिक परिधान में पुरुष और सिर से पांव तक बुर्के में ढंकी महिलाएं। महिला पुरुष से कुछ पग पीछे चलती है, पीछे-पीछे उसके छोटे बालक-बालिकाओं को लिए हुए उसकी सेविका चलती है। वे एक-दूसरे के पीछे ऐसे चलते दिखते हैं, मानो कि, निपट व्यवस्थित और सटीक ढंग से, कठोरता से पदानुक्रम का पालन करते हुए, कोई सैन्य रक्षादल आगे बढ़ रहा हो। वहाँ सभी ओर स्टारबक्स कैफे मिल हैं, और उनमें ध्वनिविस्तारक (लाउडस्पीकर) पर कुरआन की आयतें सुनाई जा रही होती हैं। जब मैं कॉफी पी रही थी, तो कुरआन की यह आयत सुनाई दी: "और उसने घोड़े, खच्चर और गधे बनाए, तुम्हारे चलने के लिए" (16:8)। आज जब पूरे कतर में एक भी खच्चर या गधा नहीं बचा है, तो भी यह आयत सुनाई जाती है। मुसलमानों के अवचेतन मैं गधे व खच्चर को लेकर उन विमानों से संघर्ष चलता रहता है, जो पश्चिम ने निर्ममता से उनके सचेतन मन पर थोप दिया है, और मुसलमान ही इस संघर्ष के पीड़ित होते हैं।

अल्लाह ने मुसलमानों की सुविधा के लिए गधे और खच्चर दिए, जबकि पश्चिम ने उन्हें परिवहन के नए रूपों की प्रवीणता दी, पर तब भी वो पश्चिम के इतने विशाल ज्ञान को महत्व नहीं देते हैं, क्योंकि वे इस ज्ञान को अल्लाह की उपलब्धियों पर चुनौती के रूप में देखते हैं। सचेतन मन से उन्होंने पश्चिम की उपलब्धि को स्वीकार लिया, किंतु उनके अवचेतन में अल्लाह के कार्यों को ही प्रधानता है और इसी का स्थान सबसे ऊपर है। मुहम्मद अपने अनुयायियों को अल्लाह की सामर्थ्य के परिमाण को यह कहकर ही दिखा सकता था कि उसने उनकी सेवा के लिए गधे और खच्चर दिए हैं, जिससे कि वे उन पर चल सकें। उन अनुयायियों ने इस विषय में सोचा और अपने आप से कहा: यदि इस अल्लाह ने सामर्थ्य न दिया होता, तो गधे और खच्चर हमें एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में समर्थ नहीं होते, और इसलिए वे अल्लाह के प्रति कृतज्ञ बने रहे।

जब पश्चिम के दल परिवहन के आधुनिक साधन लेकर आंधी की भाँति आए, तो मुसलमानों ने अपने गधे और खच्चर इधर-उधर निर्जन

स्थानों में मरने के लिए छोड़ दिए और पश्चिम के उपहार को संतोष के साथ स्वीकार कर लिया, यद्यपि उन्होंने कभी इस उपहार के लिए कृतज्ञता नहीं प्रकट की। मैं एक ऐसी महिला को जानती हूँ, जो यहाँ कैलीफोर्निया में रहती हैं। वो सुंदर व्यक्तित्व की स्वामिनी हैं और अपने उच्च आत्मविश्वास के लिए जानी जाती हैं। उन्होंने अमरीकी जीवन के सभी पक्षों के जिया है, दो बार विवाह किया है और दोनों बार तलाक लिया, और जो अपने दोनों पतियों से विधिक रूप से जो मिलना चाहिए था, उसे पाने के लिए अमरीकी न्याय प्रणाली का दोहन किया है। कभी मैंने अरबी खाड़ी टेलीविजन नेटवर्क द्वारा लिया गया उनका साक्षात्कार भी देखा था। कार्यक्रम के प्रस्तोता ने उनसे पूछा, "आप अपना सिर क्यों नहीं ढकती हैं?"

मेरी अपेक्षा के विपरीत उनका उत्तर था, "यह ऐसा विषय है जो मुझे दुख देता है, इस दुख से मुझे रात-रात भर नींद नहीं आती है। मैं मानती हूँ कि मैंने अपने मजहब के अनुसार अनुचित व्यवहार किया है।" आगे वो कहने लगीं, "हम ऐसे समाज में रहते हैं जिसने हमें अपने सच्चे मजहब से दूर कर दिया है।" सद्दाम हुसैन ने निर्दोषों की हत्याएं की, सामूहिक नरसंहार किया, रासायनिक अस्त्रों से अपने ही देश के लोगों को जला डाला और निर्दोष लोगों को लंबे समय तक कारागार में बंद रखा। वह आठ वर्षों तक ईरान के विरुद्ध युद्ध छेड़े रहा, कुवैत पर आक्रमण किया, इसके तेल के कुओं में आग लगा दी और अपने लोगों को विनाश की ओर ले गया, परंतु तब भी उसने अपने किए अपराध पर कभी पश्चाताप नहीं किया। कटघरे में खड़े होकर भी वह कहता रहा कि वही ईराक का वैध नेता है और जिनको उसने मारा है वो मारे जाने के पात्र थे। एक भी सुन्नी मजहबी नेता ने इस पर दुख नहीं प्रकट किया कि उसने अपने देश के प्रति कैसा आपराधिक कृत्य किया था।

1979 में खोमैनी की इस्लामी क्रांति के पश्चात् ईरान के मुल्लाओं ने मध्य पूर्व के समृद्ध देशों में से एक इस देश को नष्ट कर डाला और देशवासियों को भूखों मरने की स्थिति में ला दिया, तब भी वे आज भी यही

कहते हैं कि अल्लाह ने उन्हें अपने मजहब की रक्षा का अभियान सौंपा है। इन अपराधियों ने अपने देश के प्रति जो अपराध किया है, उस पर किसी शिया धर्मगुरु ने कोई दुख नहीं प्रकट किया है। सुन्नी मुसलमान शिया नेताओं की निंदा करते हैं और शिया मुसलमान सुन्नी नेताओं की भर्त्सना करते हैं। ये लोग ऐसा इसलिए नहीं करते, क्योंकि इन नेताओं ने कोई अपराध किया है, अपितु ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि उनके मन में अपने समुदाय से भिन्न समुदाय के प्रति असंतोष भरा हुआ होता है।

मुस्लिम सांस्कृतिक शब्दकोश में विजय और पराजय की अवधारणाओं के अर्थ वैसै नहीं होते हैं, जैसा कि पश्चिम में होता है। बाल्यकाल से ही हमें सिखाया गया था कि जब कोई जीतता है, तो हम पराजित होते हैं, और जब हम जीतते हैं तो सामने वाला पराजित होता है। मेरी अम्मी को इससे बहुत लेना-देना नहीं होता था कि विद्यालय में सभी विषयों में अच्छे अंक आएं, पर हां उन्हें इस बात की चिंता अवश्य रहती थी कि कहीं पड़ोसी की बेटियों के अच्छे अंक न आ जाएँ। हमारी क्षमता नहीं है कि अंतरिक्षयान बना पाएं, पर मुझे आज भी स्मरण हो उठता है कि कैसे हम प्रसन्नता से नाच पड़े थे जब अमरीकी अंतरिक्ष यान चैलेंजर खण्ड-खण्ड हो गया था और इसमें सवार यात्री मारे गए थे। सुनामी ने सहस्त्रों (हजारों) व्यक्तियों के प्राण ले लिए, इनमें से अधिकांश मुसलमान थे, पर तब भी मुस्लिम धार्मिक गुरु हमसे कहते रहे कि अल्लाह ने उन काफिरों को दंड देने के लिए यह विपदा भेजी है, जो इंडोनेशिया नाइट क्लब में वेश्याओं के साथ भरे हुए थे। इन मजहबी नेताओं ने एक मिथ्या कहानी भी गढ़ी कि कैसे एक मस्जिद आंधी से अप्रभावित होते हुए जस का तस खड़ा रहा। हजारों मुसलमान उस सुनामी में मारे गए थे, किंतु इतनी बड़ी मानव क्षति उनके लिए कोई महत्व नहीं रखता था, हां उनकी प्राथमिकता यह अवश्य थी मस्जिद बनी रहे!

एक मुस्लिम सहेली ने हँसी करते हुए मुझसे एक बात कही थी, जो मुसलमानों की विजय और पराजय की अवधारणा को दर्शाता है। उसने

कहा: "अल्लाह टहल रहा था कि उसकी भेंट एक अमरीकी से हो गई। वह अमरीकी विलाप कर रहा था। जब अल्लाह ने उससे पूछा कि क्या बात हो गई, तो उसने उन्हें कहा, 'मेरे पड़ोसी के पास हथौड़ा है, किंतु मेरे पास नहीं है।' जब अल्लाह ने उससे पूछा, 'मुझसे तुम क्या चाहते हो?' उस अमरीकी ने कहा, 'मैं चाहता हूँ कि आप मुझे भी एक हथौड़ा दें।' अल्लाह वहाँ से निकल गया और तभी उसे एक फ्रांसीसी व्यक्ति रोता हुआ मिला। उसने उससे पूछा, 'क्या हुआ?' उस फ्रांसीसी ने कहा, 'मेरे पड़ोसी ने चैम्प एलीसी में घर लिया है, पर मेरे पास नहीं है।' जब अल्लाह ने पूछा कि वह उससे क्या चाहता है, तो वह व्यक्ति बोला, 'मैं चाहता हूँ कि आप मुझे भी वैसा ही घर दिला दें।' अल्लाह आगे बढ़ गया और चलता रहा कि उसे एक अरबी मुसलमान विलाप करता हुआ मिला। अल्लाह ने उस अरबी से पूछा कि क्या हुआ? उस अरबी ने कहा, 'मेरे पड़ोसी के पास ऊंट है, पर मेरे पास नहीं है।' जब अल्लाह ने उस मुसलमान से पूछा कि वह उसके लिए क्या करे, तो उसने कहा, 'मेरे पड़ोसी के ऊंट को मार दीजिए!'

अध्याय 13

"नए" अमरीका में रहना कॉलिन पॉवेल एवं राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा के विषय में सोचना

2008 के क्रिसमस के दिन मैंने अपनी स्वतंत्रता की बीसवीं वर्षगांठ मनाई। मुझे अमरीका आए हुए दो दशक बीत चुके हैं, पर मुझे प्राय: यही लगता है कि मैंने सीरिया नहीं छोड़ा होता तो अच्छा होता, और यह पीड़ा आज भी अवचेतन में मुझे सताती है।

मैं आज भी सीरिया के दिनों को ऐसे स्मरण करती हूँ, जैसे कि यह कल की ही बात हो।

15 दिसम्बर, 1988 की वह रात थी, दमाकस में चारों ओर से एक भयानक आंधी चल रही थी। उस रात 9 बजे उस उथल-पुथल भरे नगर में मैं अपनी बहन के घर से निकल गई, अमरीकी दूतावास जाने के लिए।

मेरी बहन के पति सीरिया की सेना में उच्च पदस्थ अधिकारी थे, पर मेरी बहन के बेटे ने मुझे उनकी कार में दूतावास ले जाने से मना कर दिया। उनकी कार में एक सैन्य अभिज्ञप्ति (लाइसेंस) पट्टिका थी, इसलिए उसे लगा कि उस कार से दूतावास तक ले जाना उसके सैनिक पिता के सम्मान के विरुद्ध होगा। उसने मुझे दूतावास से लगभग एक मील दूर ही उतार दिया।

घुप्प अंधेरा था, भय भी लग रहा था और ठंड भी सता रही थी। इन सबसे संघर्ष करते हुए मैं पैदल ही चलने लगी। चीरने वाली ठंडी हवाएं चल रही थीं, मेरा कोट उस ठंड को रोक नहीं पा रहा था। पर स्वतंत्रता

पाने का सपना इतना प्रबल था कि उस कठिन क्षण में भी मेरे भीतर इन कष्टों से बढ़कर उत्साह था।

दूतावास पहुंची तो वहाँ लोगों की लंबी पंक्ति थी, मैं अपनी बहन के घर से एक कंबल लाई थी, उस फटे-पुराने कंबल को ओढ़कर पंक्ति में लग गई। प्रात: होने की प्रतीक्षा करते-करते मैंने वहीं भूमि पर रात बिताया, यह सोचते हुए कि प्रात: होने पर मैं प्रभारी अमरीकी अधिकारी से मिलने का अवसर पा जाऊंगी।

दिन निकलने पर दूतावास के द्वार पर प्रहरी खड़ा हुआ और चीखकर बोला: "पहले पंजीकृत 20 लोग ही भीतर आएं!"

जब मैंने देखा कि मेरी संख्या अठाहरवीं पर थी, तो मन ही मन बोल पड़ी, "ईश्वर का धन्यवाद! अमरीका अब मुझसे कुछ ही दूर है!"

दूतावास के द्वार पर रात भर बिताना व्यर्थ नहीं गया।

मेरी बारी आई और दूतावास अधिकारी द्वारा मेरा साक्षात्कार लिया गया। मेरे पत्रक देखने और मेरे उत्तर सुनने के पश्चात् उस अधिकारी ने मेरे पारपत्र पर वीजा का ठप्पा लगा दिया।

उस क्षण मुझे लगा कि सारा संसार मेरी मुट्ठी में है। ईसाइयों की मान्यता है कि संत पीटर के पास स्वर्ग की कुंजी है, परंतु जहाँ से मैं आती हूँ वहाँ के लोगों का मानना है कि विश्व भर के अमरीकी दूतावासों के अधिकारियों के पास वह कुंजी है।

जब मैं दूतावास बाहर निकलकर आई तो मुझे सूझ ही नहीं रहा था कि किस ओर जाऊं। तभी मैंने अपनी छोटी बहन को वहाँ देखा, वह यह देखने आई थी कि मैं ठीक हूँ या नहीं। वह दूतावास के सामने मार्ग पर दूसरी ओर किनारे खड़ी थी।

मैं नाचने लगी और अपना पारपत्र लहराकर उसे दिखाने लगी। इस उत्साह में मार्ग पार करते समय मुझे यह भी ध्यान नहीं रहा कि इधर-उधर से वाहन तो नहीं आ रहे हैं। एक कार से टकराते-टकराते बची। दूतावास के द्वार पर एकत्रित व्यक्तियों में से एक चीखा, "बधाई हो! भाग्य

ने दो बार आपका जीवन बचाया है- एक बार तब जब उसने आपको कार से बचाया, और दूसरी बार तब जब उसने आपको अमरीका का वीजा दिलाया।"

मैं यहाँ अमरीका के अपने जीवन के प्रत्येक क्षण की तुलना उन क्षणों से किए बिना नहीं रह पाती हूँ, जो मैंने वहाँ अपने मातृदेश में जिया था। ये तुलना करने पर मैं प्रसन्न भी होती हूँ और दुखी भी, साहसी भी हो उठती हूँ और कुंठित भी, आशावान् भी हो उठती हूँ और निराशावादी भी, क्योंकि वर्तमान सुंदरता से परिपूर्ण दिखता है और अतीत कुरुपता से भरा हुआ पाती हूँ।

अमरीका से जितना प्रेम मैं करती हूँ, उतना कम ही लोग करते हैं। इसके प्रति मेरा प्रेम मुझे इसकी चिंता करवाता है। मैं नहीं चाहती कि जिस देश ने मुझे भय से मुक्ति दिलाई और जब मैं भूखी थी तो मुझे पाला-पोसा, उस देश की सुरक्षा अथवा सुंदरता पर किसी प्रकार के खतरे की आंच आए।

यहाँ रहते हुए मैंने पांच राष्ट्रपति चुनाव के अभियानों को देखा है। पहले पांच चुनाव को मैंने दूर से टीवी पर देखा, मुझे इससे जुड़ाव का कोई अनुभव नहीं हुआ। पिछले चुनाव तक मैं समझती थी कि अमरीकी चुनाव ऐसा प्रकरण है जिससे मेरा कोई सरोकार नहीं है। यहाँ मुझे जो कुछ मिला था, वह मेरे भावनात्मक, शारीरिक एवं भौतिक रूप से संतुष्ट करने लिए पर्याप्त था, मुझे जितनी आवश्यकता थी, इस देश ने उससे कहीं अधिक दिया मुझे। यहाँ मैं जो जीवन जी रही हूँ, वह स्वप्न लगता है, और मैं बार-बार अपने को चिंकोटी काटकर यह देखती रहती हूँ कि यह सच है या सपना।

मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची हूँ कि अमरीका की शक्ति पर इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि सत्ता में राष्ट्रपति रिपब्लिकन पार्टी का है अथवा डेमोक्रेटिक पार्टी का है, यह देश शक्तिशाली ही रहता है। अमरीका एक सत्ता है, एक विधिक संहिता है और एक नैतिक सत्ता है, और ये सब इतने

विशाल हैं कि कोई इन्हें क्षति नहीं पहुंचा सकता है। मेरा मानना था कि जो कोई भी अमरीका के राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी बनता है, उसे महान होना ही पड़ता है, वह चाहे किसी भी दल का हो, और मेरा यह मानना था कि उसे इस महान राष्ट्र का नेतृत्व करने में सक्षम होना ही होता है।

यद्यपि प्रत्याशियों की नीतियां भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, परंतु मुझमे यह भाव कूट-कूट कर भरा है कि उसे इस देश के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ देना होगा, यह कभी नहीं हो सकता कि अमरीका ऐसे व्यक्ति को जन्म दे जो ऐसे उच्च पद तक पहुँचने के पश्चात् अपने को पद के अयोग्य सिद्ध करे। इस कारण मैंने कभी यह जानने का कष्ट उठाने का प्रयास नहीं किया कि कौन सा प्रत्याशी जीतने के अधिक योग्य है; क्योंकि मेरे लिए यह केवल सिक्का उछालने जैसा ही था, और मेरे लिए यह कुछ ऐसा ही था कि सिक्के का जो पक्ष ऊपर आए वही जीत गया।

मेरे लिए अमरीका यह था और यही है कि प्रात: पांच बजे भी उठूं और काफी पीने सीधे स्टारबक्स आउटलेट पहुँच जाऊं, तथा जाते समय लेशमात्र भी भय न लगे कि कोई देख लेगा और अकेले देखकर मुझ पर अनैतिक व्यवहार का आरोप मढ़ देगा।

मेरे लिए अमरीका का अर्थ है प्रात: अपने पड़ोसी को "सुप्रभात" कहना, बिना इस भय के उससे कुछ समय बतियाना कि मुझ पर उसके साथ रात रंगीन करने का आरोप लग जाएगा।

मेरे लिए अमरीका का अर्थ है कि मेरी बेटी घर आती है और मुझे बताती है कि उसने अपने पुरुष मित्र से साथ भोजन किया, तो उसमें यह भय नहीं होता है कि कोई परिवार के सम्मान के नाम पर उसकी पिटाई करेगा।

अमरीका का अर्थ है जो मैं चाहूँ पहनूं, जो चाहूँ खाऊं, जहाँ जाना चाहूँ जाऊं, और कोई मेरे निर्णयों में अपनी नाक न घुसेड़े।

अमरीका का अर्थ है कि पुराने जूते फट जाएँ और उससे अंगूठा बाहर दिखने लगे, उससे पहले ही मैं नए जूते ले लूं, मैं नए वस्त्र भी खरीद

सकूं और ऐसा भी न हो कि मुझे इसके लिए मुझे अपने नवजात शिशु के दूध में कटौती कर पैसा जुटाना पड़े।

अमरीका का अर्थ है कि मैं किसी सरकारी कार्यालय में जाती हूँ और एक विनम्र स्वर सुनाई देता है: "नमस्ते, मैं जेसिका हूँ, मैं आपकी क्या सहायता कर सकती हूँ?"

अमरीका का अर्थ है कि मैं किसी सार्वजनिक प्रसाधन में जाऊं तो वहाँ पानी चल रहा हो और साबुन व पेपर तौलिया रखा हो, न कि किसी और द्वारा की गई गंदगी पर चलना पड़े।

अमरीका का अर्थ है कि किसी अपरिचित की दृष्टि हमसे टकरा जाए, तो वह मुस्कुरा दे।

अमरीका का अर्थ है कि पूरा दिन परिवार के साथ किसी सुंदर सार्वजनिक उद्यान में बिता दूं, और वहाँ कीड़े-मकोड़े न रेंग रहे हों, आसपास कचरे के ढेर न लगे हों।

अमरीका का अर्थ है कि कोई अनजान व्यक्ति दुर्घटनावश आपसे टकरा जाता है, तो कहता है: "क्षमा कर दीजिए। मुझे अपने किए पर पछतावा है।"

अमरीका का अर्थ है कि मैं किसी पूजास्थल में जाती हूँ और वहाँ उपदेश सुनती हूँ, कोई दूसरे धर्मों के विषय में बुरा-भला भी नहीं कहता है।

अमरीका का अर्थ है कि कोई मेरा द्वार खटखटाता है, और बिना इस भय के द्वार खोल देती हूँ कि कहीं वह व्यक्ति मेरे जीवन पर खतरा तो नहीं है।

अमरीका का अर्थ है कि मैं उस पुलिसकर्मी के विरुद्ध परिवाद प्रविष्ट कर सकती हूँ, जिससे अरबी मिश्रित टूटी-फूटी अंग्रेजी में बात करते हुए मेरा मतभेद हो गया हो- और संभव है कि मैं जीत भी जाऊं।

अमरीका का अर्थ है कि मैं अरबी प्रभाव वाली अंग्रेजी बोलूं और जो मुझे सुने वह लेशमात्र डपट या उपहास के बिना कहे, "आप अच्छी अंग्रेजी अवश्य बोल लेंगी।"

अमरीका वह श्रवण यंत्र है जो अमरीका पहुँचने के पहले सप्ताह में मेरे बेटे को मिला, और जिसने सीरिया में नौ वर्ष तक बहरापन की समस्या झेलने के पश्चात् उसकी श्रवणशक्ति वापस दे दी।

अमरीका का अर्थ है कि मैं ऐसे स्थान पर रहती हूँ जहाँ नौ भिन्न-भिन्न देशों को व्यक्ति रहते हैं, और जब अमरीकी स्वतंत्रता दिवस मनाया जाता है तो वो सब के सब हमारे घर के सामने सार्वजनिक स्थान पर एकत्र होकर इसे मनाते हैं, सब के सब एक-दूसरे के लिए अपने-अपने देशों का प्रिय भोजन बनाकर लाते हैं।

अमरीका का अर्थ है कि मैं अपना खुलकर जीवन जी सकती हूँ और कोई भी मेरे वर्ण (रंग), लिंग, जाति, धर्म, राजनीतिक विचार या देश के आधार पर मूल्यांकन नहीं करता है; अपितु मेरा मूल्यांकन मेरे कार्य और मेरे व्यक्तित्व पर होता है।

अति संक्षिप्त में कहूँ, तो अमरीका मेरी स्वतंत्रता है।

अतीत में लोगों ने मुझसे कहा है, और यह पुस्तक पढ़ने के पश्चात् बहुत से लोग कहेंगे: "आप अमरीका के बुरे बिंदुओं को क्यों नहीं देख पाती हैं?" कदाचित मैं अंधी हूँ, पर सच यही है कि मैं अमरीका में कोई बुराई नहीं पाती हूँ। मेरे इस दृष्टिकोण को समझने के लिए आपको वह महिला बनकर सोचना होगा जो तीस वर्ष तक सीरिया या किसी अन्य देश में रही हो! इसीलिए मैं कभी राजनीति की बात नहीं करती हूँ, और आज तक राष्ट्रपति चुनाव को मात्र ऐसे बौद्धिक सुख के रूप में लेती हूँ जिसमें बहुत अधिक उलझने की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता है। जब भी राष्ट्रपति चुनाव आता है, तो मेरी धारणा वही रहती है: जो भी अमरीका में राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी बनेगा, वह सच्चा अमरीकी होगा और अमरीकी को किसी सच्चे अमरीकी से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि सितम्बर 11, 2001 की घटनाओं ने मेरी धारणा में तनिक परिवर्तन हुआ और मेरी चिंतन शैली प्रभावित हुई। इस घटना से मैं यह सोचने पर विवश हो गई

कि अमरीका इस्लाम को समझता भी है या नहीं, और इसे न समझने का दुष्परिणाम क्या होगा।

अभी हुए पिछले चुनाव में हुई घटनाओं ने मेरे संदेह को और बढ़ाया है, तथा जिस देश को मैं हृदय से प्रेम करती हूँ, उसके प्रति मेरी चिंताएं बहुत बढ़ गई हैं। इन घटनाओं में सबसे बड़ी बात यह थी कि राष्ट्रपति ओबामा की पृष्ठभूमि मुस्लिम थी। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि उनका जन्म एक मुस्लिम पिता से हुआ था, उन्होंने अपने जीवन का कुछ वर्ष एक मुस्लिम देश में बिताया था और एक मुस्लिम विद्यालय में पढ़े थे। पर अब यह मेरी चिंता का विषय नहीं था, क्योंकि राष्ट्रपति ओबामा ने बताया है कि वो ईसाई हैं, और उनका यह आश्वासन ही मेरे संदेहों को दूर करने के लिए पर्याप्त था, साथ ही मेरी इस धारणा ने भी संदेहों के बादल को छांट दिया कि राष्ट्रपति प्रत्याशी होने में सक्षम कोई भी अमरीकी मेरे विश्वास के योग्य है- मेरी यह धारणा आज भी उतनी ही सुदृढ़ है।

किंतु मेरी दृष्टि में ओबामा के नाम का मध्य भाग हुसैन ही अभिशाप है, क्यों? जो इस्लामी इस्लाम की सच्ची प्रकृति को ग्रहण करता है और पूर्णत: यह मानता है कि उन्हें समस्त विश्व पर अधिकार करने के अल्लाह के अभियान पर भेजा गया है, वे एक दिन मानने लगेंगे कि ओबामा अल्लाह द्वारा भेजा गया प्रमाण था, इसलिए संसार पर अधिकार करने के जिस सपने के लिए वे जी रहे हैं उसे पूरा करने के निकट हैं। मुसलमान सदैव कुछ ऐसा ढूंढ़ने में लगे रहते हैं जो उन्हें अल्लाह द्वारा भेजा गया लगे और वे अपने इस सपने को पूरा करने जैसी बातें ही पढ़ते रहते हैं, जबकि एक अमरीकी को इन सब बातों में कुछ भी ध्यान देने योग्य नहीं दिखता है।

एक बार मैं अरबी के एक वेबसाइट को खंगाल रही थी कि मुझे एक समाचार दिखा। इस समाचार में बताया गया था कि अमरीकी अभिनेत्री हैले बेरी की एक बेटी है जिसका उन्होंने अरबी नाम नाहला ("मधुमक्खी") रखा है। इसके पश्चात् मैंने इस समाचार पर पाठकों की

टिप्पणियां पढ़ीं। आप मानें या न मानें, पर बड़ी संख्या में पाठक आनंदित थे, क्योंकि उनका मानना था कि यह अल्लाह की ओर से भेजा गया संकेत है कि इस्लाम अमरीका में बढ़ने लगा है। इसे अल्लाह का संकेत मानने के पीछे उनका तर्क था कि नाहला शब्द का उल्लेख कुरआन में है। इस्लामियों को इससे कोई सरोकार नहीं है कि ओबामा मुसलमान हैं या नहीं: इस्लाम अमरीका में बढ़ रहा है, यह मानने के लिए उनकी दृष्टि में इतना ही पर्याप्त है कि अमरीकी राष्ट्रपति का हुसैन नामक मुस्लिम नाम है और मुस्लिम नाम का व्यक्ति व्हाइट हाउस में प्रवेश कर चुका है।

प्रतिदिन मेरा इनबॉक्स उन दर्जनों ईमेल से भरा होता है, जिसमें उन अफवाहों पर लोगों की प्रतिक्रिया होती थी। लोग उन ईमेल में जो लिखते थे उससे पता चलता था कि कुछ अमरीकियों में डेमोक्रेटिक प्रत्याशी को लेकर आशंकाएं हैं। मैं उनमें से अधिकांश ईमेल को पढ़ती थी, और मैं इस बात से नकारूंगी नहीं कि इन्हें पढ़कर मेरा माथा ठनका; यद्यपि इससे मेरी धारणा नहीं परिवर्तित हुई। ओबामा की जीत की संभावना को देखते हुए, चुनाव अभियान के समय, मेरे मन में अमरीका को लेकर कोई आशंका नहीं थी। चुनाव के समय मेरा उनमें पूरा विश्वास था और आज भी उन पर विश्वास है। किंतु अमरीका को लेकर मेरी यह आशंका अवश्य थी कि ओबामा की जीत से इस्लामी आतंकवाद को नया जीवन मिल सकता है, क्योंकि इस्लामी देशों में ओबामा को देख रहे लोग उनके मध्य नाम से यही दुष्प्रेरणा ले सकते हैं। जब तक मैंने एनबीसी पर मीट द प्रेस कार्यक्रम में पूर्व गृह मंत्री कॉलिन पॉवेल का साक्षात्कार नहीं देखा था, आशावादी बनी हुई थी।

मेरे लिए वह साक्षात्कार क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाला था। श्रीमान् पॉवेल ने एक ऐसी टिप्पणी की, जिसका विषय से कोई लेना-देना नहीं था। उनकी वह टिप्पणी सुनकर मुझे आघात लगा। मैककेन के चुनावी अभियान में जो आरोप लगाया गया था कि ओबामा मुसलमान है, उस पर अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए श्रीमान् पॉवेल ने कहा, "यदि वह मुसलमान होते

भी तो क्या? कौन सा पहाड़ टूट पड़ता इससे?" उसी क्षण मुझे लगा कि मानो आकाश घूम रहा है, मुझे प्रतीत हुआ कि मैं अचेत होकर गिर पड़ूंगी, तो पीठिका (कुर्सी) पर बैठ गई। इस टिप्पणी ने मेरे घाव पर लवण (नमक) छिड़क दिया। मेरे मन में प्रश्न उठा: "यदि कॉलिन पॉवेल नहीं जानते कि राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी मुस्लिम होगा तो इसका परिणाम क्या होगा, तो और कौन जानेगा?" जो व्यक्ति कभी अमरीका का गृह मंत्री रहा हो, वह नहीं देख पा रहा है कि अमरीका का राष्ट्रपति मुसलमान हो गया तो उसका कितना भयानक परिणाम होगा। जबकि यह वही देश है जिसने मुस्लिम आतंकवाद का इतना अधिक दंश सहा है और इसके लिए बहुत बड़ा मूल्य चुकाया है। उस क्षण से पहले तक मैं पॉवेल को अमरीकी राजनीति का पुरोधा मानती थी। तब तक वो मेरे लिए उतने ही तेजस्वी थे, जितना अमरीकी गरुड़ (बाज)। किंतु वह टिप्पणी सुनते ही मैं दुख से भर गई और मुझे ऐसा लगा कि वह भव्य गरुड़ ऊंचे आकाश के लुढ़ककर मेरे सामने आकर ऐसे गिरा कि मानो कोई कोई छोटा सा असहाय पक्षी हो। इसी के साथ मेरी बहुत सी धारणाएं भी धराशायी हो गईं।

मैं जानती हूँ कि श्रीमान् पॉवेल को अमरीकी नैतिक संहिता में पले-बढ़े और जिये हैं, और इसीलिए उनके संस्कार ऐसे नहीं हैं कि लोगों से उनकी धार्मिक रुचि के आधार पर भेदभाव करें। यह उनका अधिकार है, वो ऐसा व्यवहार कर सकते हैं। किंतु उन्हें यह अधिकार नहीं है कि वो इस तथ्य से अनजान रहें या इस पर जानबूझकर आंखें बंद रखें कि इस्लाम एक धर्म भर नहीं है: यह एक राजनीतिक विचारधारा है जो बलपूर्वक अपने को थोपती है। यदि कोई मुसलमान अमरीका के किसी भी संवेदनशील एवं अति महत्वपूर्ण पद तक पहुंचे, तो हमें उसकी एक-एक गतिविधि पर सूक्ष्मदर्शी लगाकर दृष्टि रखना होगा।

मैं नहीं चाहती कि जो मैं कह रही हूँ, उसे कोई मुस्लिम-विरोधी पूर्वाग्रह समझो। किसी अन्य राष्ट्रीय समूह की भाँति मुसलमान भी या तो अच्छा हो सकता है या बुरा हो सकता है। मुसलमानों में जो अच्छे होते हैं

वे लोग अपने धर्म की शिक्षाओं के अनुसार व्यवहार नहीं करते हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि या तो वे लोग उन शिक्षाओं को जानते नहीं हैं, या वे जान-समझकर उन शिक्षाओं के चंगुल से बाहर निकल गए हैं; परंतु यह समझने के लिए कि किसी मुसलमान का अमरीका का राष्ट्रपति बनने का अर्थ है, हमें इस्लामी इतिहास- अरबों का इतिहास, जो कि मेरा अपना इतिहास है- में देखना होगा कि मुसलमान नेता कैसा होता है और देखना होगा कि मुसलमान नेता के कार्य क्या थे।

इस्लामी इतिहास को खंगालते समय पहला और सबसे प्रमुख मुसलमान नेता जो मिलता है, वह मुहम्मद, इस्लाम का रसूल था। यदि पॉवेल ने मुहम्मद की जीवनी पढ़ी होती, जैसा कि अरबी स्रोतों में लिखा है और जैसा कि मैंने अपने विद्यालयी दिनों में जाना था, तो वो अचेत होकर धरातल पर गिर पड़ते। हमने प्राथमिक विद्यालय के तीसरी कक्षा में अपने धार्मिक पाठ्यक्रम में गर्व से पढ़ा है कि किस प्रकार मुहम्मद ने बनू क़ुरैज़ा जनजाति के आठ सौ यहूदियों का सिर एक ही रात में काट डाला था, उनकी पत्नियों और संतानों को बंधक बना लिया था, और जिस यहूदी महिला साफिया के पति, पिता व भाई की हत्या की थी, उसे उसी रात अपने बिछौने पर ले गया। अरबी स्रोतों में मुहम्मद के अपराधों के विषय में जो कुछ लिखा है, उसकी तुलना में तो साफिया के साथ हुआ यह अपराध सागर में एक बूंद के समान है। परंतु दुर्भाग्य से ऐसा लगता है कि पॉवेल कभी ऐसे दुष्टात्मा शत्रु को पहचानने का कष्ट नहीं उठाया जिसने उन पर प्रहार किया हो अथवा जो उसकी सुरक्षा के लिए खतरा हो। जिस दिन अमरीकी यह जान गए कि कुरआन कहता है कि मुहम्मद वह आदर्श है जिसके समान प्रत्येक मुसलमान पुरुष को बनना चाहिए, उस दिन वो समझ जाएँगे कि किसी मुसलमान का अमरीकी राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी होना कितना गंभीर प्रकरण है।

यदि अमरीका ने आतंकवाद पर जो धन व्यय किया है, उसका एक छोटा सा अनुपात भी अरबी में लिखे गए उन इस्लामी सिद्धांतों और

इतिहास के अनुवाद में लगाया होता जिनमें से अधिकांश का अब तक अनुवाद नहीं हुआ है, तो बड़े स्तर पर रक्तपात और समय के विनाश को तो रोक ही लेता, साथ ही अपना अरबों डालर भी बचा लिया होता। जब तक अमरीका अरबी स्रोतों से, अक्षरश:, बिना तोड़े-मरोड़े और मिथ्याकरण (जालसाजी) किए, इस्लाम को नहीं पढ़ेगा, आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध नहीं जीत पाएगा। इस सामग्री को पढ़ने से उन्हें अपने व्यक्तिगत निष्कर्ष निकालने और यह समझने में सहायता मिलेगी कि उनके सामने किस प्रकार का शत्रु है। यदि कॉलिन पॉवेल ऐसे हो जाएँ कि इन अनूदित स्रोतों को पढ़ पाएं और देख पाएं कि इनमें कितनी घृणा व हिंसा भरी हुई है, तो वो अपने होठ चबा लेंगे और अपने आप से कह उठेंगे: "मैं अपने शत्रु की सच्ची प्रकृति से अनजान था, और यह मेरी सबसे बड़ी विफलता थी।"

सितम्बर 11 की घटनाओं के पश्चात् मैंने एक अमरीकी जनरल की प्रेसवार्ता देखी थी, यद्यपि अभी मुझे उन जनरल का नाम ध्यान नहीं आ रहा है। उस प्रेसवार्ता में उन्होंने कहा कि उन्होंने दो बार कुरआन पढ़ी है, तब एक संवाददाता ने उनसे पूछा, "उसे पढ़कर आप किस निष्कर्ष पहुंचे?" उन्होंने बोलने से पहले कुछ क्षण अपना सिर झुकाया और कहा, "हमें अपनी रक्षा करनी है।" अब मुझे पूछना है, "श्रीमान् पॉवेल, आप क्यों नहीं खड़े होंगे, जिस देश से प्रेम करते हैं उसकी और हमारी रक्षा क्यों नहीं करेंगे?"

राष्ट्रपति ओबामा ने घोषित किया है कि वह मुसलमान नहीं हैं और मैं उनकी बात का विश्वास करती हूँ; किंतु यदि वह मुसलमान रहे होते, तो स्थितियां दूसरी होतीं और मेरा व अन्य निष्ठावान अमरीकियों का दृष्टिकोण भिन्न होता। इस्लामी शिक्षाओं में तक़िया का विचार सम्मिलित होता है। तक़िया का शाब्दिक अर्थ तो "सतर्कता, विवेक" होता है, परंतु यह मुसलमान को यह अनुमति देता है कि जब उसके आसपास के अ-मुस्लिम शक्तिशाली व प्रभावशाली स्थिति में हों, तो वह अपनी वास्तविक भावना को छिपा कर रखे और अपने मजहब को संजोए रखे, साथ ही गुप्त ढंग से

अपने बड़े उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए काम करते रहें जिससे कि जब उपयुक्त समय आए तो अ-मुस्लिमों (गैर मुसलमानों) पर हमला कर सकें। स्वाभाविक रूप से, सभी मुसलमान इस सिद्धांत में विश्वास नहीं करते हैं अथवा इस सिद्धांत के अनुसार कार्य नहीं करते हैं, किंतु पीड़ादायी सच यही है कि पश्चिम को अपनी रक्षा करनी ही पड़ेगी और सूक्ष्मता से प्रत्येक मुसलमान का परीक्षण करना होगा, विशेष रूप से उन मुसलमानों की जांच अवश्य होनी चाहिए जो विश्व के इस सबसे शक्तिशाली देश के नेतृत्वकर्ता होने के प्रत्याशी हों।

कोई व्यक्ति सच्चा मुसलमान और सच्चा अमरीकन एक साथ नहीं हो सकता। इस्लाम एक मजहब भी है और एक राज्य भी है। मुसलमान होने के लिए आपको इस्लाम में धर्म और राज्य दोनों के रूप में विश्वास करना होगा। कोई सच्चा मुसलमान अमरीकी संविधान को कभी मान्यता नहीं देगा, और जहाँ तक उसके इस संविधान के अधीन रहने का संबंध है तो वह वही तकिया है जो अमरीकी संविधान के स्थान पर इस्लामी शरिया विधि थोपने तक की यात्रा में न टाला जा सकने वाला पग है।

कुरआन कहती है: "मोमिनो, यहूदियों या ईसाइयों को अपना मित्र न बनाओ। वे एक-दूसरे के मित्र हैं। तुममें से जो भी उनसे मित्रता करेगा, वह उन्हीं में से होगा। अल्लाह अधर्मियों को मार्ग नहीं दिखाता है" (5:51)। क्या कोई मुसलमान प्रत्याशी जो यह मानता है कि यहूदी और ईसाई उनके मित्र या संरक्षक होने के लिए उपयुक्त नहीं है, वह यहूदियों और ईसाइयों में विश्वास रख पाएगा? यह प्रश्न मैं कॉलिन पॉवेल के लिए छोड़ती हूँ कि वह इसका उत्तर देंगे, तब मैं आश्वस्त होऊंगी कि अमरीका सुरक्षित हाथों में है।

4 नवंबर, 2008 को कठिन यत्न के पश्चात् अमरीकन लोगों ने बराक ओबामा को अपना राष्ट्रपति चुन लिया। उसी दिन मेरी बेटी फराह को प्रसव पीड़ा हुई, अपना मतदान करने के पश्चात् मैं उसे चिकित्सालय लेकर भागी। प्रसव वार्ड में मैं पूरे दिन वाह्य संसार से कटी रही, और वह रात

ऐसी लग रही थी मानो समाप्त ही नहीं होगी। मैं चिकित्सालय के बिछौने पर अपनी बेटी का हाथ पकड़कर बैठी थी और उसकी पीड़ा बांटने का प्रयास कर रही थी।

अगले दिन 5 नवंबर को मेरी पहली पोती जैजलिन का जन्म हुआ, एक ओर मेरी नवजात पोती के स्वर गूंज रहा था और दूसरी ओर वहीं मेरे बेटी के उस कक्ष में लगी टीवी पर ओबामा का स्वर भी उभर रहा था और ये दोनों स्वर एक-दूसरे में मिल गए। उस क्षण के उत्साह में समाचार वाचक के शब्द कुछ यूं थे: "यह अमरीका में ही हो सकता है" और जब तक ओबामा का स्वागत भाषण चलता रहा, यह वाक्य मेरे मस्तिष्क में गूंजता रहा। यह सच है, अमरीका में ही हो सकता है कि कोई अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों द्वारा चुना जाए।

यह अमरीका में ही हो सकता है कि कोई बेटी मिश्रित जाति से जन्मे और उसे उसकी उत्पत्ति से तनिक भी जोड़े बिना नई नागरिकता दे दी जाए। अमरीका सपनों की धरती है- और इससे भी अधिक सच यह है कि यह वो देश है जहाँ प्रत्येक सपना साकार हो सकता है।

हो सकता है कि आने वाले चालीस वर्षों में मैं अमरीकी टेलीविजन समाचार वाचकों को विश्व को यह बताते हुए सुनूं: "वफा सुल्तान की बड़ी पोती जैजलिन अमरीका की चुनी हुई राष्ट्रपति बन गई हैं।"

कौन जानता है? सपना तो कोई भी देख सकता है, है न?

और क्या पता कि उसी वर्ष सीरिया के मीनारों से मुसलमान घोषणा करें: "वफा सुल्तान का प्रयासों को सफलता का उपहार मिला, और एक नए ईश्वर का जन्म हुआ है: एक ऐसा ईश्वर जो प्रेम करता है।

तब तक, मैं आशा करूंगी, प्रार्थना करूंगी तथा संघर्ष करती रहूँगी, और हां, मैं छोटा ही सपना देखती हूँ।